निवेदन

पू० विनोबाजी के गत साढ़े पाँच वर्षों के प्रवचनों में से महत्त्वपूर्ण प्रवचन तथा कुछ प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश चुनकर यह संकलन तैयार किया गया है। संकलन के काम में पू० विनोबाजी का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ है। पोचमपल्ली १८-४-'५१ से भूदान-गंगा की धारा प्रवाहित हुई। देश के विभिन्न भागों में होती हुई यह गंगा सतत बह रही है।

भूदान-गंगा के दो खण्ड पहले प्रकाशित हो चुके हैं। पहले खण्ड में पोचमपल्ली से दिल्ली, उत्तरप्रदेश तथा बिहार का कुछ काल यानी सन् ५२ के अन्त तक का काल लिया गया है। दूसरे खण्ड में बिहार के शेष २ वर्षों का यानी सन् ५३ व '५४ का काल लिया गया। इस तीसरे खण्ड में बंगाल और उत्कल की पद-यात्रा का काल यानी जनवरी ५५ से सितंबर '५५ तक का काल लिया गया है। इसी तरह अन्य अन्य प्रान्तों की यात्राओं के खण्ड क्रमशः प्रकाशित किये जायेंगे।

संकलन के लिए अधिक-से अधिक सामग्री प्राप्त करने की चेष्टा की गयी है। फिर भी कुछ अंश अप्राप्य रहा।

भूदान आरोहण का इतिहास, सर्वोदय विचार के सभी पहलुओं का दर्शन तथा प्रश्नों का समाधान आदि दृष्टियों को ध्यान में रखकर यह संकलन किया गया है। इसमें कहीं-कहीं पुनरुक्ति भी दिखेगी। किन्तु इस हानि न हो इस दृष्टि से उसे रखना पड़ा है।

संकलन का आकार सीमा में रहे, इसकी ओर भी ध्यान देना पड़ा है। यद्यपि यह संकलन एक दृष्टि से पूर्ण माना जायगा

तथापि इसे परिपूर्ण बनाने के लिए जिज्ञासु पाठकों को कुछ अन्य भूदान-साहित्य का भी अध्ययन करना पड़ेगा। सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित १ कार्यकर्ता-पाथेय २ साहित्यिकों से ३. सर्वोदय के आधार ४ संपत्तिदान-यज्ञ ५. ग्रामदान-ग्राम ६. शिक्षण-विचार और सस्ता साहित्य-मण्डल की ओर से प्रकाशित १ सर्वोदय का घोषणा-पत्र २ सर्वोदय के सेवकों से जैसी पुस्तकों को इस संकलन का परिशिष्ट माना जा सकता है।

संकलन के कार्य में यद्यपि पू० विनोबाजी का सतत मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, फिर भी विचार-समुद्र से मौक्तिक चुनने का काम जिस करना पड़ा वह इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य थी। त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना।

—निर्मला देशपांडे

अनुक्रम

—छह—

बंगाल

[१ जनवरी '५५ से २५ जनवरी '५५ तक]

दूसरा प्रकार है, कानून से जमीन की बाप और गरीबों को बाँटी जाय। किन्तु कानून से जमीन तो मिल सकती है, पर लोगों के दिल नहीं मिल सकते। इसके विपरीत इस आन्दोलन में सिर्फ जमीन का बँटवारा नहीं होता प्रेम का भी बँटवारा होता है। अगर इसके बजाय जमीन कानून से ली जाय, तो सरकार कहती है कि उसे चार लाख एकड़ से ज्यादा भूमि नहीं मिलेगी और हम तो कुल जमीन का छठा हिस्सा पाने की उम्मीद रखते हैं। कानून पर विश्वास रखनेवाले लोग पूछते हैं आप छठा हिस्सा माँगते हैं, लेकिन आपको उसे देने कौन बैठा है? इस पर हम जवाब देते हैं कि जब भगवान् हमें माँगने की हिम्मत देता है, तो वह लोगों को देने की बुद्धि भी जरूर देगा। आपने देखा कि अभी तक हक के तौर पर जमीन माँगनेवाला कोई नहीं निकला था। अब एक शख्स ऐसा निकला जिसे भगवान् ने जमीन माँगने की प्रेरणा दी। परिणाम यह हुआ कि ऐसे मनुष्य को पागल समझकर याँची भेजने के बदले लोगों ने ११ लाख एकड़ जमीन दे दी। कितने आश्चर्य की बात है कि एक ऐसे शख्स को, जिसके हाथ में सत्ता नहीं और न जिसकी अपनी कोई संस्था ही है, लोग लाखों एकड़ जमीन दे रहे हैं। अवश्य ही हमें सभी दलवाले और सर्व सेवा-संघ मदद देते हैं पर हमारा किसी संस्था पर अधिकार नहीं है। जिसका कोई अधिकार नहीं है जिसके हाथ में कोई सत्ता नहीं आखिर उसे लोग जमीन इसीलिए देते हैं कि भगवान् ऐसा चाहता है। इस तरह लोगों को काम देना लाजिमी है। हमारा विश्वास है कि इसका पैगाम जब लाखों के कानों तक पहुँचेगा तो लोग लाखों हाथों से देने लगेंगे। फिर इससे छिपा भी न रह सकेगा।

'वन्दे मातरम्' का अर्थ क्या?

यह जो काम हमने उठाया है, वह बंगाल के लिए नया नहीं है। यह बात तो बंगाल से ही निकली है ऐसा हम कहते हैं। आप जानते हैं कि ऋषि बंकिम ने एक मंत्र दिया जो सारे हिन्दुस्थान में फैल गया। उसीके परिणामस्वरूप हिन्दुस्थान को राजनैतिक आजादी मिली। हम यहाँ इतने दिनों के बाद बंगाल

में आये हैं फिर भी हमें यह मंत्र गाँव-गाँव सुनने को मिलता है। वह मन्त्र है, 'वन्दे मातरम्'। हम यही कहते हैं कि 'वन्दे मातरम्' का अर्थ समझ लीजिये। 'माता भूमि है और हम सभी उसके पुत्र हैं'—यह तो वेदों ने कहा था और यही बात ऋषि बंकिम के मुँह से भी निकली। माता का उसके संतान के साथ संयोग न रहकर वियोग रहे, तो वह कितनी दुःखी होगी यह सोचने की बात है। हम कहते थे 'माता भूमि' पर आज बात करते हैं भूमिपति की। यह कितनी बेहूदा और बेढब बात है कि जिसे हम माता कहें, उसीके स्वामी बन बैठे हैं। हम तो कहते हैं कि 'भूस्वामी' या 'भूपति' बदतर गाली है। अगर भूमि माता है, तो उसे वंदन करना चाहिए। हम 'वन्दे मातरम्' कहते हैं तो उसकी सेवा करने का मौका हरएक को मिलना ही चाहिए। यहाँ बैठे हुए कुछ बच्चों में भूमिहीन बच्चे हों तो क्या उन्हें माता के स्तनपान का अधिकार नहीं मिलना चाहिए? हम यह बड़ा अधर्म और नास्तिकता समझते हैं कि लोग भूमि की मालकियत पकड़ बैठे हैं। इसलिए फौरन सबको भूमि बाँट देनी चाहिए।

'वन्दे भ्रातरम्' भी आवश्यक

लोग पूछते हैं कि हमारे यहाँ जमीन की कमी है, हम दरिद्र हैं, तो गरीबी बाँटने से क्या लाभ होगा? अगर लक्ष्मी बहुत होती हम लक्ष्मीवान् होते, तो उसे बाँटने में मजा भी आता। कुछ लोग कहते हैं कि 'हिंदुस्तान में दौलत बढ़ने दो, फिर बाँटने की बात निकालो।' लेकिन ऐसी बात हम परिवार में तो नहीं करते। परिवार में अगर दूध कम हो, तो उसे माँ पी ले और बच्चे से कहे 'दूध कम है इसलिए मैंने पी लिया जब बढ़ेगा तो सबको मिलेगा' तो आप उसे मा कहेंगे या राक्षसी? निश्चय ही यह आसुरी विचार है कि लक्ष्मी बढ़ने के बाद बँटवारा होगा। हमारे पास जो है उसका बँटवारा करो तभी लक्ष्मी बढ़ेगी। अगर हम श्रीमान् हों, तो लक्ष्मी बाँटेंगे शक्तिमान् हों तो शक्ति बाँटेंगे और अगर दरिद्र हों तो दारिद्र्य भी बाँटेंगे। बाँट करके हम भोग करेंगे। यह धर्म है कि हम पड़ोसी से प्यार करके ही जी सकते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि हम वन्दे मातरम् तो कहते हैं लेकिन जरूरत है 'वन्दे भ्रातरम्' की। अगर हम पड़ोसी को खिला नहीं

करते अपने भाई पर प्यार नहीं करते और सारे देश, दुनिया का विश्व के प्रेम की बातें करते हैं तो उसमें कोई सार नहीं है। संसार में प्रेम भावना की कोई कमी नहीं परन्तु बात यही है। लोगों के हृदय में प्रेम तो है, लेकिन उसके अनुसार कोई कार्यक्रम नहीं बनाया गया है।

शान्ति का सस्ता सौदा

प्रेम का निष्कासन होता है तभी उसमें ताकत आती है। हमारे इस समाज में प्रेम की नदियाँ बही हैं पर उन नदियों से खेती को काम नहीं पहुँचा। अब इस प्रेम भावना और भक्ति भावना को क्रिया का रूप देने का मौका मिला है। किसी माता को पुष्टिकारक खुराक मिले, तो उसके स्तन में दूध ज्यादा रहता है और किसीको वह न मिले, तो स्तन में दूध कम रहता है। फिर भी जिसे दूध विशेष हो वह अपने बच्चे को पिलाती है और जिसे कम है, वह भी पिलाती है; क्योंकि छाती में प्रेम रहने पर पिलाये बगैर रहा नहीं जाता। इसलिए हम कहते हैं कि जिसके पास ज्यादा जमीन है वह ज्यादा दान देगा और जिसके पास कम है वह कम देगा। लेकिन अपने पास जो है, उसका छठा हिस्सा देना ही होगा। शान्ति का इतना सस्ता सौदा कहीं नहीं होगा। दुनिया में जो भी शान्ति आयी वह खोट करोड़ करके ही आयी। लेकिन यह शान्ति सिर्फ छठा हिस्सा लेकर प्राप्त हो जाना चाहती है। मान लें कि हर घर में पाँच पाण्डव हैं। तो हमने कहा कि उन पाँच पाण्डवों के साथ एक छठा भी है और उसे उसका हिस्सा देना चाहिए। आप जानते होंगे कि पाण्डव पाँच नहीं थे, एक छठा भी था जिसका नाम 'कर्ण' था। लेकिन उसकी परवाह नहीं की गयी। फलस्वरूप महाभारत का बड़ा भारी युद्ध हुआ। हम हर घरवाले से कहते हैं कि 'पाण्डवो! तुम्हारा छठा भाई है, पर वह तुम्हें नहीं दीखता। उसे भी तुम दो और उसकी परवाह करो। अगर उस भाई की परवाह करोगे, तो गाँव की शक्ति बढ़ेगी।'

दारिद्र्य मिटाकर नारायण की प्रतिष्ठा

'दरिद्रनारायण' यह शब्द भी इसी भूमि में पैदा हुआ है। स्वामी विवेकानन्द

की वाणी से ही इसका उद्गम हुआ। फिर इसी शब्द का उपयोग देशबन्धु चित्तरञ्जनदास ने किया। बाद में इसे गांधीजी ने उठा लिया और हिन्दुस्थान के घरों में पहुँचा दिया। अब यह शब्द घर घर पहुँच गया है। पर इसके अनुसार काम करना बाकी है। अगर हम उस मनोभाव से दरिद्रनारायण की सेवा करेंगे तो 'नारायण' बाकी रहेगा और 'दारिद्र्य' मिट जायगा। तब जो लोग रहेंगे वे सभी नारायण-रूप होंगे। सब समान होंगे। यह सब करने का जो तरीका है वह है भारतीय संस्कृति का तरीका दान का तरीका प्रेम का तरीका।

बंगाल को अहिंसायुक्त कर्मयोग आवश्यक

यहाँ वैष्णवों ने भक्तिभाव पैदा किया पर उसमें निष्क्रियता थी। इसलिए जरूरत है कि देश में सक्रियता निर्माण हो, कर्मयोग की प्रेरणा हो। यह बात बंगाल में पहले किसीको भी नहीं सूझी ऐसी बात नहीं। यहाँ सक्रियता तो आ गयी, पर वह हिंसक थी और उसने अत्याचार का रूप लिया। वैष्णवों की भक्तिभावयुक्त निष्क्रियता से काम बनता न देखकर बंगाल के तरुणों ने हिंसक कार्यक्रम शुरू किया। इससे एक दोष तो मिट गया पर नया दोष आ गया। निष्क्रियता तो मिट गयी पर अहिंसा के बदले हिंसा आ गयी। मेरा मानना है कि इस हिंसावाद से शक्ति बढ़ने के बजाय क्षीण ही हो गयी। अब हमें वैष्णवों की अहिंसा और तरुणों की सक्रियता दोनों लेकर 'अहिंसायुक्त कर्मयोग' चलाना होगा। भूदान का यह आन्दोलन अहिंसायुक्त कर्मयोग है। इससे सारे बंगाल की चित्तशुद्धि होगी और प्राणशक्ति बढ़ेगी। चित्तशुद्धि करने और प्राणशक्ति बढ़ाने का यह काम कोई कानून नहीं कर सकता। यह तो जनशक्ति से, प्रेम प्रचार द्वारा ही होगा।

लोग बार-बार हमसे पूछते हैं और आज भी पूछा गया कि अगर कानून से जमीन का बँटवारा हो जाय तो नाहक इतना श्रम की जरूरत नहीं है। लेकिन यह ध्यान में रखिये कि कानून या दण्डशक्ति में कोई जादू या ताकत नहीं है। समाज में कोई भी क्रान्तिकार्य न तो कभी कानून से हुआ और न होनेवाला ही है। क्रान्ति पहले जनशक्ति से होती है और फिर उसके अनुसार कानून बनता है।

इस समय हिन्दुस्तान को [illegible] शांति की जरूरत है। उससे कम चीज से काम न चलेगा।

दान से दौलत बढ़ेगी

बंगाल में करीब-करीब १५ लाख एकड़ जमीन है। हम कबूल करते हैं कि जनसंख्या के हिसाब से वह ज्यादा नहीं है। लेकिन यह हालत सिर्फ बंगाल की ही नहीं उत्तर बिहार की भी यही हालत है। सारे सारन जिले में हर वर्ग मील के पीछे एक हजार से अधिक जनसंख्या है। इसका अर्थ यह हुआ कि हर मनुष्य के पीछे आधा एकड़ जमीन है। लेकिन हम कहते हैं कि इस डेढ़ सौ लाख एकड़ जमीन में से पचीस लाख एकड़ हमें दे दीजिये। आप पूछेंगे कि 'मान लीजिये किसीके पास छह एकड़ जमीन है उसका वह एक एकड़ दे दे तो उसका कैसे चलेगा?' किन्तु हम कहते हैं कि जमीन का रकबा घट गया इतने से फसल घटने का कोई कारण नहीं है। किसान जानता है कि अगर छह में से एक एकड़ दे दिया तो पाँच एकड़ में उतनी खाद डालने और उतना ही परिश्रम करने से छह एकड़ की फसल की जा सकती है। जापान में हिन्दुस्तान से भी कम जमीन है। फिर भी वहाँ हर एकड़ से दुगुनी फसल पैदा होती है। इसलिए हार खाने की जरूरत नहीं है। 'हरिनाम ले, अपना कुछ हिस्सा दान दे दे' तो भगवान् की कृपा से दौलत बढ़ेगी ही। यह भी समझने की जरूरत है कि गाँव में प्रेम बढ़े और देन लेनेवाले एक हो जायें तो मजदूर अधिक प्रेम से काम करेंगे। हमने बिहार में देखा कि जहाँ मजदूरों के पास थोड़ी जमीन है, वहाँ भी इतनी फसल होती है, जितनी बड़े-बड़े खेतों में भी नहीं होती। कारण मजदूरों को जमीन मिलने पर तो वहाँ वे खुद काम करते हैं और उनकी औरतें और लड़के-बच्चे भी काम करते हैं।

जमीनवाले कानून बनने के लिए तैयार हों

लोग पूछते हैं कि 'हम जमीन देंगे, तो हमारी जमीन पर काश्त कौन करेगा' तो हम भी पूछते हैं कि लोगों को जमीन से वंचित रखकर क्या आप यह विश्वास करते हैं कि कायम के लिए आपको मजदूर मिलेंगे? अनुभव तो यह

है कि उसे अगर जमीन मिलती है तो वह अपनी जमीन पर तो काम करता ही है और आपकी भूमि पर भी काम करेगा। उसे मजदूरी में हिस्सा भी देना पड़ेगा। पर उसे प्यार से देगा, तो वह आपकी जमीन पर भी अत्यन्त कृतज्ञता से काम करेगा।

लेकिन एक बात हम कबूल करते हैं कि कायम के लिए, रोजे कयामत तक आपके खेत पर मजदूर काम करने के लिए आये—यह नहीं होगा। आपको अपने लड़के को खेती का काम, खेती की उपासना सिखानी होगी। आज लोग जमीन के मालिक बनते और शहर में रहते हैं। जमीन गाँव में पड़ी है उसे देखते भी नहीं। हम कहते हैं कि अगर वे जमीन का दान करेंगे तो सभी दृष्टियों से कल्याण होगा। जब मजदूर दूसरों के खेतों में जाते हैं, तो उन्हें पूरी मजदूरी नहीं मिलती। इसलिए वे काम भी पूरा नहीं करते। मुश्किल से ८ घंटे में ४ घंटे का काम करते हैं। मजदूरों के हाथ में काम है, तो वे काम की चोरी करते हैं और मालिक के हाथ में दाम है तो वह दाम की चोरी करता है। दोनों एक दूसरे को ठगते और दोनों मिलकर देश को ठगते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे देश की पैदावार कम होती है। हमारा कहना है कि भूदान से हिंदुस्तान में लक्ष्मी बढ़ेगी प्रीति बढ़ेगी। जहाँ लक्ष्मी, शक्ति, प्रीति तीनों आ जायें, वहाँ दुनिया में और कौन सी चीज प्राप्त करने को रह जायगी?

बलसुरेपा
७-१ '५५

अहिंसा के तीन अर्थ : २ :

आज दुनिया में हिंसा की शक्तियाँ बढ़ रही हैं और बहुत सारे देश हिंसक शस्त्रास्त्र बढ़ाने में प्रवृत्त हैं। ऐसी हालत में हमें क्या करना चाहिए? या तो हम भी शस्त्रास्त्र बढ़ाने लग जायँ या दूसरी ओर शक्ति निर्माण करें जो शस्त्रशक्ति से बढ़कर हो। अगर हम भी शस्त्रास्त्र सज्जित हो जायँ और शस्त्र शक्ति बढ़ाने में ही देश की सारी ताकत लगा दें तो हमें सेना पर करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। अमेरिका या रूस को गुरु बनाना होगा। उनके चरणों में बैठकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करना होगा। जैसे वे नचायेंगे वैसे नाचना होगा। हमें यहाँ के दरिद्र लोगों की परवाह या उनके उत्थान की चिन्ता न करनी होगी, बल्कि सारा ध्यान सेना की तरफ लगाना होगा। फिर भी इस देश में अपार दारिद्र्य है इसलिए अपनी शक्ति से दुनिया के साथ टक्कर देनेवाली सेना हम तैयार नहीं कर सकेंगे। तब दूसरे देशों का आश्रय लेना होगा जिसका अर्थ यह होगा कि हम नाममात्र के स्वतन्त्र रहेंगे। वास्तव में हमें पराधीन, परतन्त्र या गुलाम बनकर ही रहना होगा। अगर हिंसा की ताकत पर ही हमारा विश्वास है, तो हमें यही करना होगा। किन्तु यदि यह सब भयानक मालूम होता हो तो हम दूसरी नयी शक्ति बढ़ानी होगी और वह होगी अहिंसा की शक्ति।

अहिंसा के तीन अर्थ

आजकल हम अहिंसा का अर्थ यही समझते हैं कि 'हिंसा न करना'। किन्तु उसका इतना ही 'निगेटिव' (अभावात्मक) अर्थ नहीं। उसके तीन अर्थ हैं। पहला अर्थ है, निर्भयता या निडर बनना, दूसरा है प्रेम और सहयोग करना तथा तीसरा अर्थ है, रचनात्मक काम में लगा रहना। अगर हम निर्भय बनते हैं, आत्मशक्ति पर विश्वास करते हैं, प्रेम और सहयोग से सारे समाज को एकत्र करते तथा रचनात्मक काम में लगते हैं तभी सच्चे अर्थ में हमारी ताकत बढ़ेगी। इसलिए ये तीनों बातें हमें करनी होंगी।

हम न किसीसे डरेंगे न किसीको डरायेंगे

हिंसा में विश्वास रखनेवाले सदा भयभीत रहते हैं। वे शरीर को ही आत्मा समझते हैं। शरीर को कोई मारे या पीटे, तो उसकी शरण आ जाते हैं। बाप जब बच्चों को पीटता या गुरु जब शिष्य की ताड़ना करता है, तो वह उसे हिंसावश होने की तालीम देता है। यह सच है कि बाप बेटे को पीटता है, तो उसकी भलाई के लिए पीटता है लेकिन उससे वह उसे डरपोक ही बनाता है। वह कहता है कि तेरे शरीर को कोई पीड़ा दे, तो उसकी शरण में चले जाओ। यह तालीम भयभीत बनाती है। अगर भयभीत बनाकर कोई अच्छा काम हो जाय, तो उसमें कोई सार नहीं निर्भय होकर ही सदा आगे बढ़ना चाहिए। अगर हम अपनी अहिंसा की शक्ति बढ़ाना चाहते हैं तो यह व्रत लेना होगा कि 'हम न तो किसीसे डरेंगे और न किसीको डरायेंगे ही। जो दूसरों को डरायेगा, धमकायेगा, वह खुद भी डरेगा। इसलिए हम दूसरों को डरायेंगे नहीं और न दूसरों से डरेंगे ही। हम शिक्षाक्रम और विद्याक्रम में यही तालीम देनी होगी। गुरु शिष्य से कहेगा कि तुम्हें कोई डरा-धमकाकर तालीम दे, तो मत मानो। बाप भी बेटे से कहेगा कि कोई धमकाकर या डंडा लेकर पीटता है, तो मत मानो अगर विचार से समझाता हो तो मानो। कोई मारे पीटे या कत्ल कर दे तो मत मानो। कारण तुम शरीर नहीं शरीर से भिन्न आत्मा हो। शरीर तो मरनेवाला ही है। जो दूसरों को दवा पिलाता है, उस डाक्टर का भी शरीर उसे छोड़ ही जाता है। इसलिए शरीर की आसक्ति मत रखो। आत्मा की भूमिका में रहो। आत्मा, कोई मुझे मार नहीं सकता पीट नहीं सकता दबा नहीं सकता या धमका नहीं सकता—यह जो समझेगा वही दूसरों को भी न धमकायेगा न दबायेगा और न डरायेगा ही। इसीका नाम 'अहिंसा' है।

निर्भयता दो प्रकार की होती है : (१) दूसरे को न पीटना न डराना और (२) दूसरे से न डरना। अंग्रेजों के राज्य में हम इतने डर गये थे कि साहब का नाम लेने से ही काँपते थे। पर इधर अंग्रेजों से डरते थे, तो उधर हरिजनों को दबाते भी थे। एक ओर खुद सिर झुकाते थे, तो दूसरी ओर दूसरों का सिर झुकवाते थे। इधर

डरते थे तो उनसे डरते थे। जैसे बिल्ली चूहे को डराती है तो कुत्ते से डरती है। तो हमें डरना और डराना ये दोनों बातें छोड़नी चाहिए। देश को यही शिक्षण देना चाहिए। इसीको 'वेदान्त' या 'आत्मविद्या' कहते हैं। यही हमारा भारतीय दर्शन है। हम अपने को शरीर नहीं समझते। ऐसे पचासों शरीर हमने लिये और ऐसे पचासों शरीर छोड़े और छोड़ेंगे। शरीर की हमें कोई कीमत नहीं है। उसे हम एक कपड़ा-मात्र समझते हैं। फट गया तो फेंक दिया और दूसरा पहन लिया। जाड़े के दिन हों तो कपड़ा पहन लिया और गर्मी के दिन हों तो फेंक दिया। हम देश को समझाना चाहते हैं कि हम निर्भय बनें। न तो किसीको भय दिखायें और न किसीसे भयभीत हों। यह अहिंसा का विचार है। अन्य देशों में यह विचार नहीं है। वहाँ तो बम है, 'डेटरेंट' (युद्ध-रोध) बनाते हैं। किन्तु जब हम निर्भय बनेंगे, तभी समझेंगे कि हमारी रक्षा होगी और तभी हम सुरक्षित होंगे। मैं मद्रास के नवयुवकों से कहता हूँ कि अगर हम भारत की शक्ति बढ़ाना चाहते हैं तो निर्भयता के आधार पर ही बढ़ा सकते हैं। 'टेररिज्म' (आतंकवाद) एक ऐसा शस्त्र है कि अगर कोई बलवान् आयेगा तो हमें 'टेरोराइज' (आतंकित) कर देगा। इसलिए उसे छोड़कर हमें निर्भय बनना चाहिए।

प्रेम और सहयोग बढ़ायें

हमें प्रेम और सहयोग भी बढ़ाना चाहिए। हमारे देश में यूरोप से 'डिमोक्रेसी' का गणतन्त्र आया है। वास्तव में यह 'गणतन्त्र' नहीं, 'बाहुल्यतन्त्र' है। उसने सारी दुनिया में 'मैजॉरिटी' और 'माइनॉरिटी' ये दो पक्ष पैदा किये हैं। एक पक्ष का राज्य चलता है तो दूसरे का विरोध होता है और दोनों के विरोध से आग पैदा होती है। हमारे देश में यों ही भाषा-भेद, प्रान्त-भेद, जाति-भेद आदि तरह-तरह के भेद हैं। इनमें पार्टी का और एक भेद दाखिल हो गया है। पार्टी याने 'पार्ट' याने टुकड़ा। वास्तव में मैं पूर्ण हूँ, अखण्ड हूँ, टुकड़ा नहीं हूँ। 'पूर्णमिदं पूर्णमदः'। किन्तु जब मैं कहता हूँ कि मैं सोशलिस्ट हूँ, कम्युनिस्ट हूँ, कांग्रेसी हूँ, हिन्दू हूँ, मुसलमान हूँ, रामानुजमती हूँ, माध्वमती हूँ, फलाना हूँ और फलाना नहीं हूँ, तब मैं टुकड़ा बन जाता हूँ। यह जब चलता है, तब सहयोग और

भ्रम नहीं करता। मैं मानव से भिन्न नहीं सिर्फ मानव हूँ। मुझे कोई लेबुल चिपका नहीं है ऐसी वृत्ति होनी चाहिए। हमें ऐसी 'डिमोक्रेसी' बनानी है, 'सर्वोदय' के अनुसार माने को सबकी राय से चले। तभी 'निष्पक्ष तंत्र' या 'पक्षविहीन तंत्र' होगा। इसे ही विकसित करना है नहीं तो आप देखेंगे कि हिंदुस्तान की ताकत इलेक्शन में खतम हो जायगी। मैंने एक श्लोक (ख्याति) बनाया है : "यत्र यत्र इलेक्शनम् तत्र कार्यं न विद्यते" याने जहाँ-जहाँ इलेक्शन चलेगा वहाँ कार्य नहीं होगा कार्यनाश होगा। परस्पर प्रेम न रहेगा मनमुटाव और मनोमालिन्य होगा। दिल जुड़ेंगे नहीं टूटेंगे। हमने तो कहा है कि भारतवर्ष में आर्यो, अनार्यो, सब आओ : "एसो हे आर्य एसो अनार्य शुचिकर मन।" किन्तु इतनी ही शर्त होगी कि मन शुचि (पवित्र) करो। सब आओ, हमारा सब पर प्यार है, यह प्रेम-विचार भारत के महान् ऋषि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने दिया है। उन्होंने कहा है कि परस्पर सहयोग से रहो प्रेम से रहो, तभी हम आगे बढ़ेंगे। उन्होंने इस तरह पक्षभेद, पन्थभेद आदि भेदों पर जोरदार प्रहार किया है। हम भी 'भेदासुर' का नाश करेंगे। यहाँ दुर्गा की उपासना चलती है। वह भेदासुर मर्दिनी है। उसे 'महिषासुर मर्दिनी' कहा जाता है। हमें भेदरूपी महिषासुर का मर्दन करना है। दुर्गा भारत की देवता है, जिसके लिए हमने 'वन्दे मातरम्' मन्त्र निर्माण कर दिया है। हम चाहते हैं कि यही दुर्गा 'भेदासुर-मर्दिनी' हो जाय।

गणतन्त्र नहीं गुणतन्त्र

हम अगर मानव मानव में कोई भेद निर्माण न करेंगे तो यह 'गणतन्त्र' 'गुणतन्त्र' सद्गुणतन्त्र हो जायगा। तब सद्गुणों की कीमत की जायगी सिर्फ संख्या की नहीं। आज ५१ के विरुद्ध ४९ प्रस्ताव पास किये जाते हैं। इस 'गणतन्त्र' को तो हम 'अवगुणतन्त्र' कहते हैं। ४९ और ५१ मिलकर १०० हो जाते हैं और हम चाहते हैं कि सौ मिलकर काम करो। हमारे यहाँ पहले 'ग्राम-पंचायत' होती थी। वह इस देश की बहुत बड़ी देन है। आज दुनिया में जो राजनैतिक विचारधाराएँ चलती हैं उन सबमें हिन्दुस्तान की ग्राम-पंचायत अपनी एक विशेषता रखती है। इसमें 'पंच बोले परमेश्वर' की बात चलती थी। उन

भजन से और विध्वंस के कार्य को रचनात्मक कार्य से जीतना होगा। हमें ऐसी रचनात्मक श्रद्धा रखनी चाहिए। सारांश निर्भयता, प्रेमयुक्त सहयोग और रचनात्मक काम में श्रद्धा ये तीनों जब इकट्ठे होते हैं तभी अहिंसा की शक्ति बढ़ती है। यह शक्ति हम इस देश में विकसित करेंगे, तभी हम दुनिया का मुकाबला कर सकेंगे।

बाँकुड़ा
५-१-'५५

भूदान-यज्ञ सामाजिक समाधि का कार्य : ३ :

[जहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस की समाधि लगी थी उस स्थान पर बैठकर विनोबाजी ने निम्नलिखित उद्गार प्रकट किये।]

आज हम ऐसे स्थान पर बैठे हैं जहाँ हम सब लोगों की समाधि लगनी चाहिए। महापुरुषों के जीवन के अनुभवों को सामाजिक रूप देना हम जैसे सेवकों का काम है। जैसे समाधि में कोई क्लेश नहीं रहता वैसे ही सामाजिक समाधि में भी कोई क्लेश न होना चाहिए। आज हमारे समाज और दुनिया में कई प्रकार के क्लेश संघर्ष और झगड़े चल रहे हैं। अगर हम उन झगड़ों से मुक्ति पायें तो हमें सामाजिक समाधि का समाधान मिल सकता है।

रामकृष्ण संग्रह को पाप मानते थे

जैसे पूँजीवादी समाज में एक जगह पूँजी रहने पर उससे समाज का काम नहीं बनता उसके हरएक घर पहुँचने पर ही समाज का कल्याण होता है वैसे ही व्यक्तिगत समाधि से मार्गदर्शन तो मिलता है, पर जब उसका समाज को लाभ हो, तभी समाज का स्तर ऊपर उठ सकता है। रामकृष्ण परमहंस कांचन को छूते नहीं थे। जहाँ उनके हाथों को कांचन का स्पर्श हुआ वहीं उन्हें ऐसी वेदना

होती, मानो विष्णु ने प्यार किया। कांचन बेचारा निर्दोष है। चूँकि परमेश्वर का रूप सारी दुनिया में भरा है तो कांचन में भी परमेश्वर का ही रूप है, इसलिए वह निर्दोष है। फिर भी रामकृष्ण को कांचन का स्पर्श सहन नहीं होता था। वाने वे सम्पत्ति के संग्रह या स्वत्व को पाप मानते थे, इसीलिए उन्हें उससे वेदना हुई।

वितरित कांचन परमेश्वर की विभूति

अगर किसी आदमी को जंगल में एक सेर सोने का पत्थर मिल जाय तो वह जिन्दगीभर बिना परिश्रम के खायेगा। उसकी जिन्दगी बिना किसी काम के चलेगी। इस तरह कांचन से आदमी को उत्तेजन ही मिलता है और समाज की सम्पत्ति एक जगह एकत्रित हो जाने से समाज को तकलीफ होती है। लेकिन अगर कांचन वितरित हो जाय तो हर घर में उसका काम मिले और उससे हानि खत्म हो जाय। वितरित कांचन परमेश्वर की विभूति होगी। उसमें आप परमेश्वर का रूप देखेंगे। फिर उसका स्पर्श विष्णु का नहीं नारायण का होगा।

हम लोगों ने वित्त को 'द्रव्य' कहा है। 'द्रव्य' के मानी है बहनेवाला द्रवरूप पदार्थ। जैसे पानी का स्रोत बहता रहे, तो वह स्वच्छ निर्मल होगा, वैसे वित्त भी द्रवरूप धारण करने पर स्वच्छ-निर्मल होगा। पानी का बहना बंद हो जाय और वह गड्ढे में भरा रह जाय तो गन्दगी फैलेगी। ऐसे ही कांचन भी बहकर और जगह पहुँचे तो वह गंगा नदी के समान पवित्र हो जायगा।

शायद इस तरह इस एक महापुरुष (रामकृष्ण परमहंस) ने अपने जीवन से हमें सिखाया है कि किस तरह एकत्रित सम्पत्ति सम्पन्न है और किस तरह कांचन के स्पर्श से हम बच सकते हैं। हमारा दावा है कि हम सामाजिक कांचन-निर्मूलन तथा समाज में सम्पत्ति और लक्ष्मी वितरित करने का यही काम कर रहे हैं। इसलिए हमें भगवान् रामकृष्ण का परम मंगल आशीर्वाद अवश्य प्राप्त होगा।

विष्णुपुर
१०-१-'५५

अभी यहाँ एक पत्रक सुनाया गया जिसमें यहाँ के वैष्णव-भाइयों की ओर से दुःख प्रकट किया गया है। बंगाल में ही नहीं हिन्दुस्तान-भर वैष्णव-समाज ने भक्ति-भाव की गंगा बहा रखी है। बंगाल में तो उसकी एक विशेष वृत्ति ही प्रकट हुई, जिसके बारे में मैंने कुछ बातें कहीं। इससे यहाँ के वैष्णव-समाज को दुःख हुआ दीखता है। सम्भव है, बंगाल के अन्य स्थानों में भी ऐसा ही कुछ असर हुआ हो। इसलिए उत्तर देने से पूर्व मेरा पहला काम यही होगा कि वैष्णव समाज से क्षमा माँगूँ।

भक्ति और विवेक की भाषा

आप लोगों को मालूम होना चाहिए कि जब मैंने बंगाल में प्रवेश किया तो पहले ही दिन के व्याख्यान में कहा था : "मैं बुद्ध भगवान् की भूमि छोड़कर अब चैतन्य महाप्रभु की भूमि में आ रहा हूँ।" इसलिए मैं यहाँ के वैष्णव-समाज को विश्वस्त कर देना चाहता हूँ कि उनमें चैतन्य महाप्रभु के लिए जो आदर है, उसमें मैं भी साथ हूँ। मैं तो अपने को उनके चरणों की रेणु समझता हूँ। यद्यपि मैं किसी व्यक्ति को परिपूर्ण नहीं मानता तो भी चैतन्य महाप्रभु के लिए मेरे मन में अत्यन्त आदर है। मुहम्मद पैगम्बर के अनुयायी (मुसलमान) मानते हैं कि मुहम्मद पूर्ण पुरुष थे और उनमें किसी तरह की पूर्णता का विकास बाकी नहीं रह गया था। ईसामसीह के अनुयायी (ईसाई) भी समझते हैं कि ईसा परिपूर्ण मानव थे। इस तरह भिन्न भिन्न महापुरुषों के अनुयायियों में यह खयाल होता है कि वे महापुरुष परिपूर्ण थे, करीब करीब परमेश्वर-स्वरूप ही थे। किन्तु इस तरह शिष्य के मन में गुरु के लिए पूज्यभाव रहता है तो मैं उसका अर्थ समझ पाता हूँ। छोटे बच्चे के मन में अपनी माता के लिए ऐसी ही परिपूर्णता का आभास होता है और उसके लिए यह शोभा भी देता है। इस बारे में इकबाल ने जो बातें कहीं वे मुझे बहुत महत्त्व की लगीं। वे कहते हैं कि मुहम्मद एक मानव

थे, उसे ईश्वर की पदवी प्राप्त नहीं हो सकती। ईश्वर एक अद्वितीय है। उसकी बराबरी में कोई मानव नहीं आ सकता।

'ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मद रसूलुल्लाह।'

यानी अल्लाह एक ही है, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। मुहम्मद पैगम्बर भी उसका पैगाम पहुँचानेवाला रसूलमात्र है, सेवकमात्र है। लेकिन हमारे भारत में जो गुरु-परम्पराएँ चलीं, उनमें ये मान्यताएँ रहीं कि उस-उस परम्परा के गुरु सब तरह से परिपूर्ण और ईश्वर ही थे। यह भक्ति की भाषा है। इस्लाम में जो भाषा बोली गयी, वह विवेक की भाषा है। मैं उस विवेक की भाषा को प्रधानता देता हूँ और भक्ति की भाषा को गौण स्थान। मुझे गांधीजी के भी अनुयायी मिले हैं, जिनका विश्वास है कि परिपूर्ण मानवता गांधीजी में भी प्रकट हो गयी थी। इससे अधिक उत्कर्ष का कोई मौका ही उनमें नहीं रह गया था। मैं कबूल करता हूँ कि इस तरह किसी मानव को अत्यन्त परिपूर्ण मानने के लिए मेरी बुद्धि तैयार नहीं। फिर भी एक शिष्य के नाते, एक भक्त के नाते मैं अपने गुरु को, अपनी माता को परिपूर्ण मानने के लिए तैयार हूँ। एक परिपूर्णता का आरोप हम पत्थर में भी करते हैं और उसे भगवान् की मूर्ति समझकर पूजते हैं। फिर कोई महान् मनुष्य में परिपूर्णता का आरोप करते हैं, तो उसका विरोध करने की मुझे कोई जरूरत नहीं मालूम होती।

विचार उत्तरोत्तर विकासशील

इतनी सफाई करने के बाद मैं कहना चाहता हूँ कि महाप्रभु ने जो बात बतायी, वह गंगा के समान पवित्र है। लेकिन गंगा की धारा होना एक बात है और समुद्र होना दूसरी बात। गंगा की धारा भी समुद्र होने का दावा नहीं कर सकती। इसलिए दुनिया में जो भी जीवन-विचार प्रकट होता है, उसमें उसके एक-एक पहलू का विकास होता और दूसरे कुछ पहलू विकास के लिए रह जाते हैं। अगर किसी एक चिन्तन-धारा या किसी एक पंथ में विचार का परिपूर्ण विकास हो जाता, तो मानव के लिए कोई काम ही शेष न रहता। मानव-समुदाय शुष्क हो जाता और समाज मिट जाता। यही कारण है कि बुद्ध भगवान् के उपदेश के बाद

भी चैतन्य महाप्रभु की गरज मालूम हुई। अगर बुद्ध भगवान् में सम्पूर्ण परिपूर्णता होती तो चैतन्य महाप्रभु की जरूरत ही नहीं थी। इसलिए समझना चाहिए कि समाज में उत्तरोत्तर विचारों का विकास हो रहा है। एक एक अंग के विकास की परिपूर्णता करने की कोशिश की जा रही है। आज भी किसी विचार में परिपूर्णता आ गयी हो ऐसा नहीं। इस बारे में वैज्ञानिकों की वृत्ति बहुत कुछ विचारणीय और अनुकरणीय है। वैज्ञानिक मानते हैं कि विज्ञान अनन्त है और उसका बहुत थोड़ा हिस्सा हमें मालूम है। आज के उत्तम-से उत्तम वैज्ञानिकों के पास भी विज्ञान का एक अंश ही है। आत्मानुभव के बारे में भी यही न्याय लागू होता है। इसलिए यह समझने की जरूरत नहीं कि आत्मानुभव अपने सब पहलुओं के साथ परिपूर्ण हो गया और अब उसमें कोई प्रगति या विकास होने की आवश्यकता नहीं है।

भक्ति के आधार से मुक्ति सम्भव

मैं कबूल करता हूँ कि भक्ति भावना का आश्रय लेकर अन्तिम सीमा तक पहुँचा जा सकता है। जैसे नदी समुद्र से मिलने पर समुद्ररूप हो अन्तिम सीमा तक पहुँच जाती है, वैसे ही मनुष्य चिन्तन धारा में बहकर एक पूर्णता पर पहुँच सकता है। इसलिए मैं मानता हूँ कि अगर किसीके जीवन में कीर्तन की भी परिपूर्णता आ जाय तो वहां इन्द्रिय-निग्रह और योग भक्ति अपनी दीखेगा। वहाँ ज्ञान का उत्तम अनुभव होगा और कर्मयोग भी अर्धामर्ति प्रकट होगा। इसी लिए अगर कोई कहे कि मुझे केवल नाम-संकीर्तन ही पर्याप्त है तो मैं उसे कबूल कर सकता हूँ। लेकिन नाम-संकीर्तन पर्याप्त है ऐसा जब कहा जायगा तो उसके माने यह होंगे उस व्यक्ति के जीवन में सिवा नाम-संकीर्तन के दूसरी कोई बात न रहेगी। वह भोजन करेगा तो नाम खायेगा पानी पीयेगा तो नाम पीयेगा और सोयेगा भी तो नाम पर ही सोयेगा। उस मनुष्य के जीवन में किसी प्रकार का माया मोह और आसक्ति न होगी। वह जिस किसका दर्शन पायेगा उसमें हरि का रूप देखेगा। उसे कड़ुआ रस पिलाया जायगा तो कहेगा कि मैं नाम-रस पी रहा हूँ और मीठा रस पिलाया जायगा तब भी कहेगा कि 'नाम

रम पी रहा हूँ। अगर उस पर अपमान की वर्षा हुई, तो समझेगा कि 'हरि कृपा की वर्षा' हुई और उसे मान सम्मान दिया जाय तो भी समझेगा कि हरि कृपा की वर्षा हो रही है। सचमुच ऐसा पुरुष परम धन्य है और उसके लिए हमारी सिवा पूज्य भावना के और कोई भावना नहीं हो सकती।

ज्ञान भक्ति, कर्म के समन्वय से समाज का उत्थान

लेकिन जहाँ सारे समाज के उत्थान की बात होती है वहाँ किसी-न-किसी एक विचार या गुण को सामने रखने से काम नहीं चलता। एक गुण के विकास से सारे समाज में एकांगिता आती है। मैंने कहा था कि भक्ति-भाव में मस्त होकर अपने को भूल जाना और कीर्तन में तल्लीन होकर रहने से जीवन परिपूर्ण नहीं बनता। समाज में उसका पुरुषार्थ रूप में प्रत्यक्ष प्रकाशन भी होना चाहिए। यह बात मैंने पहली बार कही या कोई नयी कही सो नहीं। उपनिषदों में भी कहा है कि ब्रह्मज्ञानी परिपूर्ण और सबसे श्रेष्ठ पुरुष है। फिर भी उसने इस प्रसंग में एक ऐसे अद्भुत वाक्य का प्रयोग किया है कि उसीमें उसकी परम बुद्धि दीख पड़ती है। वहाँ कहा गया है कि ब्रह्मज्ञानी में भी जो क्रियावान् है वह श्रेष्ठ है "क्रियावान् एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः।" तात्पर्य, ज्ञानयोगी भी अपूर्ण होगा, अगर उसमें फल-त्याग की रुचि और उसके ज्ञान की कर्मयोग में परिणति न दीख पड़ती हो। ज्ञान विहीन केवल भक्ति मिथ्या या जड़ बन सकती है। केवल भक्ति-विहीन ज्ञान रूखा, रुक्ष और क्रिया विहीन हो सकता है। यदि कोई मुझसे पूछे कि 'आप क्रियाशीलता की इतनी महिमा बखान रहे हैं तो क्या जो क्रियाशील हो, वह परिपूर्ण होगा?' तो मैं कहूँगा नहीं। क्रियाशील मनुष्य भी अगर भक्तिमान और ज्ञाननिष्ठ न हो तो उसमें अहंकार और आसक्ति आ सकती है। उस क्रियाशीलता में परिपूर्णता नहीं अपूर्णता हो रहेगी।

युरप को ज्ञान-भक्ति की आवश्यकता

इसकी मिसाल यूरप में देखने को मिलती है। वहां क्रियाशीलता बहुत बढ़ रही है। [illegible] का दर्शन तो नहीं मिलता। [illegible] इस ज्यादा

पाने समय धन है। वे प्रत्येक क्षण का कर्म में उपयोग करते हैं। फिर भी अमेरिकन और यूरोपियनों की यह क्रियाशीलता अहंकारमय बन गयी है, क्योंकि उसमें भक्ति की नम्रता नहीं है और न आत्मज्ञान की निष्ठा ही है। परिणाम यह है कि अमेरिकन दुनिया को बचाने की बात बघारते हैं। अमेरिका का प्रेसिडेण्ट कहता है कि एशिया के राष्ट्रों को बचाने और उनकी स्वतन्त्रता कायम रखने की जिम्मेवारी हम पर है। मानो दुनिया में परमेश्वर है ही नहीं और सारी दुनिया के संचालन की जिम्मेवारी यूरोप और अमेरिका पर ही है। मानो एशियाई देशों को अक्ल ही नहीं है सारी अक्ल का भण्डार या तो रूस को या अमेरिका को ही परमेश्वर ने दे रखा है। सारांश केवल क्रियाशीलता से विकास नहीं होता बल्कि जीवन एकांगी और विकृत बनता है। अगर मैं यूरोप-अमेरिका में घूमता और मुझे बोलने का मौका मिलता तो मैं वहाँ वैराग्य-धर्म और आत्मनिष्ठा की बहुत महिमा गाता। लेकिन मैं उस देश में घूम रहा हूँ, जहाँ भक्तिधारा बह चुकी और आत्मज्ञान का भी कुछ विकास हुआ है। इसलिए यहाँ और जो न्यूनता है उसीकी ओर ध्यान देना-दिलाना मेरा काम है।

चैतन्य का युगानुकूल महान् कार्य

अभी एक श्लोक में कहा गया कि कलियुग में हरिकीर्तन से ही काम बन जाता है : 'कलौ तद् हरिकीर्तनात्'। इसका अर्थ यही है कि कलियुग दुर्बलता का युग है। जिस युग में दुर्बलता और आसक्ति पैठी है उसमें कीर्तन के द्वारा आसक्ति से मुक्त होना है। दुर्बल मनुष्यों से कहा गया कि 'भाइयो, इस युग में और कुछ नहीं कर सकते तो कोई चिन्ता नहीं लेकिन कीर्तन करो। उसके साथ और भी बातें बन जायेंगी। इसके मानी हैं यह हमें एक आश्वासन दिया गया। इसका यह अर्थ कभी न करना चाहिए कि भिन्न भिन्न युगों के लिए गुणों का बँटवारा किया गया है। कलियुग में यह गुण है और द्वापर के लिए यह गुण है, ऐसा बँटवारा कभी न करना चाहिए। इसका अर्थ इतना ही है कि समाज की स्थिति देखकर किसी-न-किसी गुण को महत्त्व दिया जाता है। जिस युग में अभ्यास की

बलवान होती है, उस युग में उसीको महत्व दिया जाता है। जिस युग में हमारे देश में जिधर देखो, उधर लोग भोग-विलास में मग्न थे, शृंगार-रस सबसे श्रेष्ठ माना गया और उसके चलते सभी लोग निर्वीर्य हो गये, उस युग में उन्होंने उसे राधा-कृष्ण की दृष्टि से पवित्र कर बहुत बड़ा काम किया। जिनको हिन्दुस्तान के साहित्य का परिचय है, उन्हें मालूम है कि मध्ययुग में संस्कृत-साहित्य में जितनी अश्लील धारा बही, उतनी अश्लील-धारा हमें और किसी भाषा में खोजना मुश्किल है। उस परिस्थिति में जिन्होंने शृंगार की भाषा को ही भक्ति की भाषा का रूप दिया, उन्होंने मध्ययुग मानव को बचा लिया। जिस जमाने में सर्वत्र उच्च-नीचता की 'ब्राह्मण श्रेष्ठ और शूद्र कनिष्ठ' जैसे भेद-भाव या जातिभेद पड़े थे और उस पर इस्लाम का हमला हो रहा था, उस जमाने में भक्ति के नाम से समत्व स्थापित करनेवालों ने मध्ययुग मानव पर उपकार किया। मानव मनुष्य को भक्ति की प्रेरणा देने और ऊँच-नीच भावना रखनेवालों को समता की दृष्टि देने का यह महान् कार्य चैतन्य महाप्रभु ने मध्ययुग में किया। हिन्दुस्तान देश पर उनका यह बहुत बड़ा उपकार है।

मामनुस्मर युध्य च

जो उत्तम गुण हमें चैतन्य महाप्रभु ने दिये, उन्हें अच्छी तरह पकड़कर आगे उनका विकास करना चाहिए। पूर्वजों ने जो कमाई हमें दी, उसके आधार पर हमें और अधिक कमाई करनी चाहिए। आप लोगों ने गीता का यह वाक्य सुना होगा। वैष्णव भी गीता को मानते हैं। गीता कहती है: "मामनुस्मर युध्य च" यानी मेरा स्मरण कर और लड़ता रह। इस तरह उसने परमेश्वर स्मरण के साथ युद्ध को कर्मयोग को जोड़ दिया। कोई कहेगा कि ईश्वर स्मरण ही सब है, उसमें सब कुछ आ जाता, तो उसे व्यक्तिगत तौर पर मैं मानने को तैयार हूँ। लेकिन सारे समाज के सामने कोई चीज रखनी हो, तो यही कहना होगा कि ईश्वर स्मरण के साथ ही ईश्वर ने जो हमें बुद्धि दी है, उसका भी उपयोग करना चाहिए, उद्यम करना चाहिए। और यह भी गीता ने कहा ही है: "सततं कीर्तयन्तो मां" भक्त सतत कीर्तन करते रहते हैं। इतना कहकर ही

गीता चुप नहीं हुई, आगे उसने यह भी जोड़ दिया : "सततस्य सततता" यानी जो अत्यन्त सततापूर्वक प्रयत्न करते हैं पुरुषार्थ करते हैं। अगर नारद मुनि मेरे सामने आ जायें और कहें कि 'यह क्या बोल रहा है मैं सतत कीर्तन करता हूँ, तो क्या यह पर्याप्त नहीं है ?' तो मैं उनके चरणों पर प्रणाम करूँगा और कहूँगा कि 'यह आपके लिए पर्याप्त है। मैं नारद को यह कहने की धृष्टता करूँगा कि अगर सारे समाज के सामने कीर्तन रखना है, तो उसके साथ-साथ कर्मयोग जोड़ दीजिये। मुझे विश्वास है कि नारद मेरी बात मान लेगा।

भक्ति मार्ग के चिन्तन में संशोधन आवश्यक

जब हम समाज जीवन की बात करते हैं, तब उनके गुणों का समन्वय करना होगा। केवल एक ही गुण की प्रबलता से व्यक्ति का तो चलेगा पर समाज का नहीं चल सकता। जब लोग कहते हैं कि 'क्या केवल कीर्तन बस नहीं ? तो मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि फिर आप कीर्तन करते हैं तो खाते क्यों हैं ! कीर्तन ही करिये। अगर कीर्तन के साथ खाना जरूरी है, तो क्या खिलाना भी जरूरी नहीं ? वैष्णव कीर्तनमय होते हैं तो मैं उनसे पूछूँगा कि फिर आप शादी क्यों करते हैं ? अगर कीर्तन के साथ शादी भी होती है, तो संयम की भी जरूरत नहीं है ? मैंने ऐसे कीर्तन करनेवाले देखे हैं जो भक्ति में नाचते और गाते हैं। लेकिन मैं जब दान माँगता हूँ तो ऐसे कंजूस बन जाते हैं कि उनके हाथों से दान ही नहीं छूटता।

यह केवल हिन्दुस्तान की ही बात नहीं। जितने भक्ति-सम्प्रदाय हैं तमीम यह बात देखी गयी है। यूरोप में भी ऐसे ईसाई देखे गये हैं जो कहते हैं कि ईसा की शरण जाने से ही मुक्ति मिलती है आप लोगों को नहीं मिल सकती। मैंने उनसे पूछा कि ईसा की शरण जाने में ही ऐसी क्या खूबी है कि मुक्ति मिल जाती है और दूसरे की शरण जाने से वह नहीं मिलती ? इस पर वे कहते हैं कि जो ईसाई नहीं होते उन्हें सतत पुण्य का आचरण करते रहना चाहिए। और जो ईसाई होते हैं वे पाप करते जायें तो भी उन्हें पुण्य मिलेगा। दुनिया के सभी पापों के लिए ईसामसीह ने बलिदान दिया है। इसलिए उनके अनुयायियों

को पुण्याचरण का प्रयोजन नहीं है। इसीलिए वह पाप करता रहेगा तो भी मुक्ति पायेगा। इस तरह बंगाल में यह चिन्तन-दोष समस्त भक्ति-मार्ग में आ गया है, सिर्फ बंगाल की भक्ति-धारा में आया है सो नहीं। इसलिए मैं नम्र निवेदन करता हूँ कि आज भक्ति-मार्ग के चिन्तन में संशोधन करने की जरूरत है।

कलियुग में कीर्तन करने के लिए जो कहा गया है, वहाँ 'कीर्तन' का अर्थ है 'कृति की प्रेरणा'। 'कृति' शब्द से ही 'कीर्ति', 'कीर्तन' शब्द बने हैं। जिस किसीको प्रेरणा होगी, वह कीर्तन करता है। कीर्तन के साथ कर्मयोग भी करना चाहिए। कीर्तन करने से हमें कृति की प्रेरणा मिलेगी। आपने देखा ही है कि चैतन्य महाप्रभु का जीवन कितना पवित्र था। वे हिन्दुस्थान में जगह-जगह घूमकर चित्तशुद्धि करने के लिए जाते और सतत काम करते हुए आत्मप्रसन्न हो गये। इसलिए मेरी नम्र राय और प्रार्थना है कि हमें हिन्दुस्थान के संतों को यह जो पाथेय मिला है, जो सम्पत्ति मिली है, वह यद्यपि समृद्ध है, फिर भी इसमें संशोधन की जरूरत है।

सभी गुणों का विकास कर्तव्य

गीता में कहा है: "श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात्।" लोग कुछ यम, नियम, प्राणायाम करते रहते हैं। उससे ज्ञान श्रेष्ठ होता है। आसन, प्राणायाम से व्यायाम हो जाता है। यह सात्त्विक व्यायाम है, अच्छा व्यायाम है। पर इतने भर से बुद्धि की जड़ता दूर नहीं होती। इसीलिए कहा गया है कि उससे ज्ञान श्रेष्ठ है। लेकिन जहाँ ज्ञान का नाम लिया जाता है, वहाँ मनुष्य निष्क्रिय बन जाता है। वह तर्कप्रधान हो जाता है, उसमें शुष्कता और पाण्डित्य आ जाता है। इसलिए ज्ञान से भी ध्यान आगे है। "ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते।" किन्तु ध्यान में मनुष्य मग्न रहता है, तो निष्क्रिय बनता है और जहाँ ध्यान छूट जाता है, वहाँ क्रिया करनी ही पड़ती है। गीता आगे कहती है: "ध्यानात् कर्मफलत्यागः।" इसलिए ध्यान से भी फलत्यागयुक्त कर्मयोग श्रेष्ठ है। मैं कबूल करता हूँ कि श्रेष्ठ कनिष्ठ की यह भाषा बोलना अच्छा नहीं है। बेहतर भाषा यही है कि

अनेक गुणों का विकास करना चाहिए। आत्मा में अनेक शक्तियाँ भरी हैं। इसलिए हमें एक ही गुण का विकास नहीं करना है।

अपने को सम्पत्ति के मालिक माननेवाले अवैष्णव

आज सुबह रामकृष्ण के समाधि-स्थान पर मैंने कहा था कि रामकृष्ण परमहंस को काञ्चन का स्पर्श सहन न होता था। उन्हींके मार्ग का अनुसरण करते हुए मैं सामूहिक 'काञ्चनमुक्ति' का प्रयोग कर रहा हूँ। इसलिए मैंने दावा किया था कि भगवान् रामकृष्ण का आशीर्वाद हमारे इस काम को प्राप्त होगा। यही दावा मैं चैतन्य महाप्रभु के लिए भी कर रहा हूँ। उनका भी आशीर्वाद इस काम के लिए प्राप्त होगा। अगर उनकी प्रेरणा न होती, तो बंगाल में इतने सारे भाई मेरी बात सुनने के लिए न आते। इसलिए जिन वैष्णवों के चित्त को मेरे शब्दों से दुःख हुआ होगा उनसे मैं दुबारा क्षमा माँगता हूँ और आशा करता हूँ कि वे भूदान यज्ञ में पूरा सहयोग देकर अपनी वैष्णवता सिद्ध करेंगे। मैं कहना चाहता हूँ कि जो अपने को जमीन के और सम्पत्ति के मालिक मानते हैं, वे ईश्वर की जगह लेते हैं। इसलिए वे अवैष्णव हैं। वैष्णव तो वे होंगे जो सबको विष्णुमय समझकर किसीसे कोई चीज न रोकेंगे। वे सदैव यही समझेंगे कि हमारी सभी चीजें भगवान् की हैं, विष्णु की और समाज की हैं।

विष्णुपुर
१-१-'५५

अखबार पढ़नेवालों को मालूम है कि आज दुनिया में अगर सबसे अधिक किसी शब्द का उच्चारण होता है तो वह 'शान्ति' ही है। किन्तु यह शब्द हमारे लिए नया नहीं। भारत के अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में इसकी मिलता है। हम जितने भी सत्कार्य या धर्म-काम करते हैं उन सबके आरम्भ और अन्त में 'शान्ति, शान्ति, शान्ति' का तीन बार जयकारा लगाते आ रहे हैं। लेकिन इन दिनों केवल धर्म-कार्य करते हुए ही शान्ति का उच्चारण नहीं होता बल्कि अधर्म-कार्य करते हुए भी वह होने लगा है।

शस्त्रास्त्रों से शान्ति-स्थापना की कोशिश

आज शस्त्रास्त्र बढ़ाने के लिए राष्ट्र के राष्ट्र तत्पर हैं। वैज्ञानिकों की खबर है ऊँचे ऊँचे शस्त्र खोजे जा रहे हैं और इन सबके लिए 'शान्ति' का नाम लिया जा रहा है। इस तरह शस्त्र की होड़ में लगे देशों के नेता जो कि साथ में 'शान्ति' का भी नाम लेते हैं ढोंगी हैं—ऐसा हम नहीं कहते। वास्तव में यह पुराना भ्रम है और आश्चर्य की बात है कि विज्ञान के इस युग में यह बना हुआ है। आज भी समझा जाता है कि शान्ति के लिए शस्त्रास्त्र बढ़ाने की जरूरत है। आज भी लोगों के मन में यह विश्वास है कि बकरों के बलिदान का तरह असुरों का संहार हो जायगा पर शेर का बलिदान न होगा। इसलिए शेर की शक्ति प्राप्त करनेवाला ही बचेगा।

लेकिन अनुभव तो यह है कि जैसे बकरों का बलिदान होता है, वैसे शेरों का नहीं होता पर उनकी शिकार तो होती ही है। आज शेर, फिर भी मनुष्य की करुणा के कारण ही बचे हुए हैं। नहीं तो ऐसी स्थिति आती कि उनकी जाति ही विच्छिन्न हो जाती। वास्तव विज्ञान के जमाने में हिंसा-शक्ति बढ़ाने का मतलब केवल समाज-नाश ही हो सकता है। इसलिए यह भ्रम न होना चाहिए था। लेकिन कहते हैं कि पुरानी आदत और पुराने भ्रम जल्दी नहीं बदलते।

इसीलिए यह भ्रम है कि राष्ट्रों के बीच शान्ति तभी बनी रहेगी जब सारे राष्ट्र अस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और बलवान् हो जायेंगे।

वास्तव में यह तो सर्वथा विरुद्ध बात है कि शान्ति के लिए अशान्तिजनक और निर्ममता के लिए भय पैदा करनेवाली चीजें बनायी जायें। आज अमेरिका के प्रेसिडेण्ट को यह भ्रम है तो पुराने जमाने में परशुराम को भी ऐसा ही भ्रम था। ब्राह्मण होते हुए भी उसने क्षत्रियों का अन्याय मिटाने के लिए क्षत्रियत्व का ही आश्रय लिया। लेकिन शान्ति-स्थापन का वह प्रयोग उसे सध न सका और आखिर उसे शस्त्र त्याग कर जमीन से फसल पैदा करने का ही काम हाथ में लेना पड़ा। इसलिए जब परशुराम जैसे ज्ञानी को भी यह भ्रम रहा तो अमेरिका के प्रेसिडेण्ट और पाकिस्तान के मिनिस्टर को यह हो इसमें आश्चर्य नहीं। लेकिन आश्चर्य इसी बात का है कि यह भ्रम इन दिनों विज्ञान के कारण मिटना चाहिए था। पर विज्ञान के बावजूद यह नहीं मिटा। शास्त्र हिंसा से अहिंसा की स्थापना का यह प्रयत्न पचासों बार निष्फल हुआ है। आगे भी न केवल वही निष्फल होगा बल्कि सारी मानवता को भी निष्फल बना देगा।

अविश्वास से शान्ति सम्भव नहीं

इसीलिए शान्ति के निमित्त दूसरा भी प्रयत्न चल रहा है। कुछ राष्ट्रों के नेता शान्ति के निमित्त सलाह मशविरा करने के लिए टेबुल के आमने-सामने बैठते और आपस में चर्चा करते हैं। इसे 'यू० एन० ओ०' कहते हैं। अवश्य ही दिशा से अहिंसा की स्थापना का यत्न जितना 'पंचसूत्री का यत्न' कहा जायगा उतना यह नहीं। लेकिन आमने-सामने बैठकर चर्चा करनेवाले इन लोगों में एक बड़ी कमी यह रहती है कि वे आपस में एक दूसरे के प्रति विश्वास नहीं रखते। अविश्वासपूर्वक चर्चा करते रहने से भी शान्ति कभी सम्भव नहीं होती। पहले तो वहाँ कुछ ही गिने हुए राष्ट्रों को स्थान मिला है। चीन जैसे बड़े राष्ट्र को भी वहाँ स्थान नहीं क्योंकि उस पर विश्वास ही नहीं है। और जिन्हें स्थान दिया गया है और जो वहाँ बैठे हैं वे भी एक-दूसरे को चूव और कम

न उगायेंगे इतने भर से काम नहीं चलता। उसके लिए तो विधायक या रचना त्मक निर्माण के कार्य ही करने होंगे। विधायक (पाज़िटिव) शक्ति ही निर्मित करनी होगी। उसके बिना केवल अभावात्मक (निगेटिव) शक्ति से काम न चलेगा। इसका मतलब यह हुआ कि उनके पास निर्भय तो है, पर शक्ति-मत्ता नहीं।

देश के विकास के लिए शान्ति जरूरी

कुछ शान्तिवादी कहते हैं कि दुनिया में अनेक राष्ट्रों को आज शान्ति की जरूरत है क्योंकि उसके बिना उनका विकास नहीं हो सकता। इसीलिए वे दुनिया में शान्ति चाहते हैं। इनके आन्दोलन को 'जागतिक शान्ति आन्दोलन' (वर्ल्ड पीस मूवमेण्ट) कहते हैं। यूरोप में कई ऐसे देश हैं जहाँ कम्युनिस्टों का बहुत जोर है, फिर भी वे शान्ति ही चाहते हैं। कारण शान्ति-स्थापना के बिना उनका विकास न होगा। वैसे चीन भी शान्ति चाहता है पाकिस्तान शान्ति चाहता है और भारत भी शान्ति चाहता है। लेकिन ये लोग कहते हैं कि हमें शान्ति की बहुत अधिक जरूरत है; क्योंकि अपने देश का हमें जीवन मान बढ़ाना है दरिद्रता मिटानी है। किन्तु इतने से शान्ति नहीं हो सकती क्योंकि उन्हें शान्ति की स्वतन्त्र कीमत नहीं है। शान्ति की कीमत इतनी ही है कि वे दूसरे काम के लिए उसे चाहते हैं। देश के विकसित होने और उसकी सम्पत्ति बढ़ाने के लिए शान्ति चाहते हैं। यह तो सभी देश चाहते हैं और इस दिशा में सभी देशों में प्रयत्न हुए हैं।

शान्ति की स्वतन्त्र प्यास चाहिए

लेकिन शान्ति पानी की तरह है। उसके दो उपयोग हो सकते हैं : (१) फसल उगाने के लिए पानी की जरूरत होती है और (२) पानी से ही मानव की प्यास भी बुझती है। जिसे प्यास लगी हो उस पानी की हमेशा जरूरत है और उसे पानी की स्वतन्त्र कीमत है। देश को समृद्ध बनाने के लिए या देश का जीवन मान बढ़ाने और मानसिक समाधान होने के लिए भी शान्ति का उपयोग

हो सकता है। जिसे फसल के लिए पानी चाहिए, वह फसल उग जाने पर कह सकता है कि अब पानी नहीं चाहिए। इसी तरह जिसे समृद्धि के लिए शान्ति की जरूरत है वह समृद्धि पा जाने पर कह सकता है कि अब हमें शान्ति नहीं चाहिए। किन्तु जिसे प्यास मिटाने के लिए पानी चाहिए, वह हमेशा पानी चाहता है। इसी तरह जब तक मानवमात्र को शान्ति की स्वतन्त्र प्यास नहीं लगेगी तब तक दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

भूदान के बारे में जब हम कहते हैं तो लोग पूछते हैं : 'आप लोगों को समझाते हैं यह अच्छा काम है। लेकिन कानून बन जाय तो यह काम जल्दी हो जायगा!' इस पर हम उनसे यही कहते हैं कि 'हम तो कानून को रोकते नहीं। आप कानून बनाइये जिन्हें आपने अपना वोट दिया है उनसे बनवाइये। किन्तु ध्यान रहे कि हमारा यह भूदान का प्रयत्न सिर्फ जमीन प्राप्त कर उसे बाँटने के लिए नहीं चल रहा है। हम यह प्रयत्न इसीलिए कर रहे हैं कि शान्ति का एक नूतन शस्त्र निर्माण हो। लोग शान्ति का स्वतन्त्र मूल्य समझें और अपने मसले, जमीन के और अन्य भी मसले शान्ति से ही हल करें। शान्ति का स्वतन्त्र मूल्य स्थापित करने के लिए आज भारत को बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है।

शान्ति-शक्ति की उपासना

जब हमने आजादी का आन्दोलन चलाया तब हम हिंसा से आगे बढ़ ही नहीं सकते थे। क्योंकि हमारे सामने ऐसी सल्तनत थी जिसके पास बहुत भारी शस्त्रास्त्र थे। इसीलिए हमने शान्ति का अहिंसा का उपयोग किया। लेकिन वह अहिंसा लाचारी की थी। इसके बावजूद आज भारत चाहे तो शस्त्र-बल बढ़ा सकता है। जैसा पाकिस्तान ने किया वैसा यह भी कर सकता है, अपने बल से या दूसरों की मदद से। इस तरह आज हिन्दुस्तान शान्ति-शक्ति या शस्त्र-शक्ति बढ़ाने का निर्णय करने के लिए स्वतन्त्र है। वह बुद्धिपूर्वक चाहे जो निर्णय ले सकता है। किन्तु भारत ने शान्ति का जो रास्ता अपनाया वह ईश्वर की उस पर कृपा ही है। सौभाग्य से उसे अच्छा नेतृत्व भी प्राप्त है।

लेकिन हममें इतनी ही भावना न होनी चाहिए कि हमारा देश सब तरह से पिछड़ा है और शान्ति के बिना काम न होगा इसलिए देश के विकासार्थ ही हम शान्ति का मन्त्र जप रहे हैं। अगर हम इसी तरह सोचते जायेंगे तो शान्ति की शक्ति न बनेगी। वह केवल व्यावहारिक साधनमात्र बनेगी। केवल व्यावहारिक साधन के तौर पर हम शान्ति का मन्त्र जपेंगे, तो हमारा देश दुनिया पर नैतिक प्रभाव न डाल सकेगा। यह तो सारी दुनिया जानती है कि हिन्दुस्तान में दारिद्र्य है शस्त्रबल बढ़ाने के लिए उसके पास पैसा नहीं है। लेकिन मान लीजिये कि वह कितना भी बल बढ़ा ले, समृद्ध बने या शस्त्रास्त्र बढ़ाने की शक्ति उसमें आ जाय तो भी वह यदि शान्ति ही चाहे और शस्त्र न उठाये, तभी शान्ति का नैतिक प्रभाव दुनिया पर पड़ेगा। भौतिक शक्ति हासिल कर और समृद्ध बनकर भी शान्ति की उपासना न छोड़ने की यह निष्ठा हममें तभी आयेगी जब अनुभव से हमें यह मालूम होगा कि शान्ति में एक स्वतन्त्र शक्ति है और उसीसे पेचीदे मसले हल हो सकते हैं।

कहा जाता है कि 'हमने शान्ति से स्वराज्य प्राप्त किया' पर यह पूर्ण सत्य नहीं है। अगर यह पूर्ण सत्य होता तो आज हमें शान्ति की शक्ति का अवश्य अनुभव होता। हममें शान्ति के लिए श्रद्धा होती और आज जिस तरह देश की दुर्दशा हुई, वह न होती। आज के पक्षभेद परस्पर अविश्वास और जमात-जमात में स्पर्धा यह सब नहीं दीख पड़ता। हमने यह जो शान्ति का रास्ता अपनाया था वह निश्चय ही लाचारी का था। गांधीजी लाचारी नहीं सिखाते थे, पर हम लोग लाचारी से उनके पीछे गये और इसीलिए उन्होंने उस पर जो अमल किया वह बिलकुल टूटा-फूटा रहा। किन्तु इतने पर भी यश मिला क्योंकि दुनिया की हालत ही ऐसी थी कि अंग्रेज भारत को अपने हाथ में नहीं रख सकते थे। इसलिए जरूरी है कि भारत का कोई भी मसला हो, हम शान्ति से ही हल करें। तभी हमारा शान्ति-शक्ति पर विश्वास बैठेगा।

शान्ति-शक्ति के बिना भारत अशक्त

मान लीजिये हम कानून के जोर या दूसरे किसी दबाव से लोगों से छीन

में। पर मैं जानता हूँ कि इस तरह लोगों में जमीन बाँटने की शक्ति आज की सरकार में उपलब्ध नहीं है, क्योंकि यह सरकार ऐसे लोगों से बनी है, जिनमें भूमिवाले बहुत हैं। जिस शाखा पर वे बैठे हैं, उनके द्वारा उसी शाखा का काटना सम्भव नहीं। पंजाब सरकार ने यह कानून बनाया है कि सवा सौ एकड़ में से केवल चार एकड़ जमीन हासिल करें। इसका मतलब यही है कि समाज की आज की स्थिति वे जैसी की-तैसी रखनेवाले हैं। इसका कारण उनके पास यही है कि जमीन ज्यादा है या नहीं। इसलिए वह जिसके हाथ में पड़ी है, वहीं रहना अच्छा है। इस तरह वे सबको जमीन नहीं दे सकते। फिर जिन लोगों की बुद्धि इस तरह काम कर रही है, वे जमीन का बँटवारा क्या करेंगे? वे गाँव की कुल भूमि गाँव की कर देंगे, यह संभव नहीं। फिर भी मान लें कि सरकार कानून के जरिये सब भूमि जैसे बाँटनी चाहिए, बाँट देगी। फिर भी दिल से दिल न जुड़ेंगे। करुणा निर्माण होगी, क्रान्ति नहीं। इस तरह भले ही भूमि की समस्या हल हो जाय, पर अगर वह क्रान्ति शक्ति के जरिये न हुई, तो मामला अधूरा ही रहेगा। क्रान्ति का स्वतन्त्र महत्त्व समाज को महसूस न होगा, तब तक क्रान्ति नहीं हो सकती, दुनिया से हिंसा न टलेगी। भूदान का जो आन्दोलन शुरू हुआ है, वह तो आरम्भ ही है। पर चार साल में भी काम मिला है, वह बहुत बड़ा है। लेकिन यह जो अल्प स्वल्प काम हुआ, उसके पीछे एक महान् विचार है और वह है क्रान्ति शक्ति की स्थापना करने का।

भेरिया (मेदिनीपुर)
१०-१-५५

आप भाषा देवी ने पूछा है कि आध्यात्मिक साधना कहाँ से आरम्भ हो और प्राथमिक महत्त्व किस चीज को दिया जाय इस बारे में मैं कुछ कहूँ। इस प्रश्न का उत्तर तो अलग अलग प्रकार से दिया जा सकता है। सबके लिए एक ही उत्तर नहीं हो सकेगा। जो हो सकेगा वह मैं पीछे बताऊँगा।

आत्म-परीक्षण

आरम्भ में मैं यह कहना चाहता हूँ कि हरएक को अपने मन का परीक्षण करना चाहिए। हममें किन गुणों की न्यूनता है या किन दोषों का प्रभाव हमारे चित्त पर ज्यादा है यह हम देखना होगा। शरीर की प्रकृति की चिकित्सा होती है और फिर उसके बाद निर्णय किया जाता है कि इस शरीर में यह कमी है या अमुक रोग है। तब उस कमी की पूर्ति के लिए काम करना होता है। वैद्य यह काम करता है। वैसे ही अपने मन के दोष और न्यूनताएँ क्या हैं यह हर मनुष्य देखे। इस काम में दूसरों की मित्रों की भी मदद हो सकती है। परन्तु निर्णय का काम तो उस मनुष्य का खुद का होगा। जो न्यूनताएँ दीख पड़ेंगी उनका निवारण करना ही उसकी साधना का पहला कदम होगा।

मान लीजिये, अपने में अहंकार दीख पड़ा तो उसके त्याग के लिए जो साधना जरूरी है वह करनी होगी। अगर अपने में क्रोध की मात्रा अधिक दीख पड़ी तो दया क्षमा आदि के प्रसंग अधिक प्राप्त हों ऐसी कोशिश करनी चाहिए और उन गुणों का ध्यान करना चाहिए। इसलिए सबके लिए इस प्रश्न का एक ही उत्तर नहीं हो सकता। परन्तु सर्वसाधारण में कुछ खामियाँ होती हैं। इसलिए एक साधारण धर्म बन जाता है और एक साधारण उपदेश दिया जाता है। किन्तु, जिस भक्त का जो ध्यान होता है उसके अनुसार वह काम करता है। जिसे जो बात जँचती है उस दृष्टि से वह उस उपासना को स्वीकार करता है। जिन 'उपासना'

शब्द का प्रयोग किया है। उपासना में गुण का विकास आता है। अगर हममें क्रोध है, तो हमें दया-गुण का विकास करने की कोशिश करनी चाहिए।

त्रिविध कार्यक्रम

यह त्रिविध काम है : (१) अगर हममें क्रोध अधिक है तो दयालु स्वरूप में हमें ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। जैसे इस्लाम में ईश्वर को 'रहीम' और 'रहमान' कहा गया है, उस रूप की उपासना करनी होगी। ईश्वर में तो अनन्त गुण होते हैं; लेकिन हममें उसकी कमी है। इसीलिए हम 'रहीम' की उपासना करते हैं। इसी तरह अगर हममें निर्दयता हो, तो हमें दयालु परमेश्वर की ओर सत्य की कमी हो तो सत्यमय परमेश्वर की उपासना करनी होगी। (२) हम सृष्टि का निरीक्षण करें। यह निरीक्षण हम इस ढंग से करें कि सृष्टि में जो दया दीखती है उसका चिन्तन हो। इस तरह अपने में जिस गुण की न्यूनता है, उसके विकास के लिए सृष्टि की मदद ली जाय। इसे 'शास्त्र' कहते हैं। परमेश्वर ने सृष्टि में दया की क्या योजना की है इस दृष्टि से उसका निरीक्षण करें। इसे 'ज्ञान-मार्ग' कहते हैं। ईश्वर ने सृष्टि में जो प्रेम-योजना की है, उसका चिन्तन करें। और (३) हम अपने में वह गुण लाने की कोशिश करें। इसे 'कर्म-योग' कहते हैं। इस तरह त्रिविध कार्यक्रम होगा।

उपासना के विभिन्न मार्ग

कुछ सम्प्रदाय प्रेम पर जोर देते हैं। जैसे ईसामसीह ने कहा था : "गाड इज लव" याने प्रेम ही परमेश्वर है। इस्लाम ने कहा है। परमेश्वर 'रहीम' और 'रहमान' है। उपनिषदों में कहा "सत्यं ज्ञानमनन्तम्"। इस तरह उपनिषदों ने सत्य पर जोर दिया। बापू ने सत्य और अहिंसा पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि सत्य और अहिंसा को एक ही समझो। इस तरह उपासना के भिन्न भिन्न मार्ग माने जाते हैं। अक्सर मनुष्य में क्रोध की मात्रा अधिक होती है। इसलिए क्षमा का उपदेश चलता है और परमेश्वर की उदारता का चिन्तन करने के लिए कहा जाता है। इसी तरह मनुष्य में क्रोध हो तो उसे परमेश्वर की दया का

चिन्तन करना चाहिए। जिसमें काम की मात्रा अधिक हो, तो उसे संयम की साधना करनी चाहिए और परमेश्वर की योजना में किस तरह कानून बने हैं, कैसे नियमन होता है, इसका मनन करना चाहिए। इस तरह काम, क्रोध, लोभ आदि से मुक्त होने की जो सर्वसाधारण दृष्टि है, वह मैंने आपके सामने रखी।

मुख्य दोष : असत्य

लेकिन अपनी दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व मैं जिस चीज को देता हूँ और उसके लिए जो चीज मुझे अत्यन्त जरूरी लगती है, वह मैं अभी आपके सामने रखूँगा। हीरालाल शास्त्री* हमसे मिलने आये थे। उनसे हमारी पन्द्रह दिन तक रोज चर्चा चलती थी। उनसे मैंने यह बात छेड़ी। मैंने कहा कि आज जो सामाजिक मूल्य चलते हैं, उनमें बड़ा भारी फर्क करने की जरूरत है। आज कुछ 'महापातक' माने जाते हैं, जैसे, सुवर्ण की चोरी करना, शराब पीना, व्यभिचार करना, खून करना आदि। इन सबकी 'महापातकों' में गणना होती है और बाकी के सब 'उपपातक' माने जाते हैं। लेकिन हमें लगता है कि हमारी साधना तब तक आगे नहीं बढ़ेगी, जब तक हम यह न समझेंगे कि दुनिया में जितने दोष होते हैं, जैसे, खून, व्यभिचार आदि, और जिन्हें दुनिया बहुत बड़ा दोष मानती है—वे सब दोष गौण हैं और मुख्य दोष है 'असत्य'। असत्य ही एक नैतिक दोष है और बाकी के सारे व्यावहारिक दोष हैं। अगर यह वृत्ति समाज में स्थिर हो जाय, तो हम आज की झंझटों से मुक्त हो सकेंगे।

मानसिक रोग

मान लीजिये कि कोई आदमी बीमार पड़ता है। वह उस बीमारी को प्रकट करता है, छिपाता नहीं है, क्योंकि प्रकट करने से रोग डाक्टर की समझ में आता है और फिर डाक्टर की उसे मदद मिल सकती है, जिससे वह बीमारी से मुक्त हो सकता है। किन्तु अगर किसीने कोई गलत काम किया, जिसकी दुनिया में निन्दा होती है, तो वह उस काम को छिपाता है। इस तरह मनुष्य अपनी मानसिक बुराइयों को छिपाता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसका निवारण

* वनस्थली (जयपुर) विद्यापीठ के अधिष्ठाता।

का रास्ता उसे नहीं मिलता और उसमें से दूसरे की मदद भी नहीं मिलती। इसलिए हम चाहते हैं कि समाज में यह विचार पैठ जाय कि जितने पाप माने जाते हैं, वे सब शरीर के स्थूल रोगों के समान ही मानसिक रोग हैं।

रोगी दया का पात्र

हम रोगी से घृणा नहीं करते बल्कि उसकी ओर दया की निगाह से देखते हैं, यद्यपि यह जाहिर है कि मनुष्य को बहुत-से रोग दोषों के कारण ही होते हैं। सारे रोग ऐसे ही होते हैं, यह तो मैं नहीं कहूँगा क्योंकि ऐसी निरपवाद बात नहीं कही जा सकती। कुछ ऐसे भी रोग हो सकते हैं, जो मनुष्य के दोषों के कारण नहीं होते। लेकिन मैं अपनी बात कहूँगा। शिशुत्व बचपन की तो नहीं क्योंकि उस समय के बारे में मैं नहीं जानता लेकिन जब से मुझे ज्ञान हुआ, उसके बाद की बात करता हूँ। तब से मैंने देखा है कि मुझे जो रोग हुए, वे सब मेरे दोषों के ही कारण हुए। कोई रोग हुआ तो सोचने पर मुझे मालूम हो जाता है कि यह अमुक दोष के कारण हुआ। मुझे जो जब तक दोष मालूम नहीं होता, तब तक चैन नहीं लेता और सोचने पर कोई-न-कोई दोष मिल ही जाता है। कदाचित् मैं जो कुछ भ्रमस्वरूप भी बन लीन जाती है। इसलिए रोग के लिए रोगी ही जिम्मेवार होता है। फिर भी हम उसे दोषी नहीं समझते बल्कि दया का पात्र ही समझते हैं।

घृणा का दुष्परिणाम

अस्पताल में किसी रोगी को भरती किया जाता है तो उसका रोग गम्भीर होने पर भी क्यों न हम लोग उसकी ओर घृणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि दया की दृष्टि से ही देखते हैं और मानते हैं कि हमें उसकी सेवा करनी है। साथ ही वह भी अपना रोग छिपाता नहीं है। वैसे ही हम चाहते हैं कि मानसिक बुराइयों के बारे में भी हो। जहाँ जरूरत न हो वहाँ उन्हें प्रकट न किया जाय। आज तो आम जनता के सामने उन्हें प्रकट करने की प्रेरणा या हिम्मत मनुष्य को नहीं होती क्योंकि आज समाज में उनकी निन्दा होती है और उन बुराइयों की ओर घृणा की निगाह से देखा जाता है। कुछ रोगों की ओर भी घृणा की निगाह

से देखा जाता है तो मनुष्य उन्हें भी छिपाने की कोशिश करता है जैसे—कोढ़। मेरे घर में कैन्सर है, तो मैं उसे छिपाता नहीं उसे प्रकट कर देता हूँ। लेकिन किसीको कोढ़ हुआ तो वह उसे छिपाने की कोशिश करता है। इससे उसका रोग दुरुस्त नहीं हो सकता। लेकिन उसका परिणाम यह होता है कि उस मनुष्य का रोग बढ़ता जाता है और चूँकि वह समाज में सबके साथ खुलेआम व्यवहार करता है, इसलिए उसका रोग दूसरों को भी लगने का खतरा रहता है। तो, इसमें सब तरह से खतरा है।

मूल्य बदलना जरूरी

इसी प्रकार आज समाज में मानसिक दोषों के प्रति घृणा है, इसलिए मनुष्य उन्हें प्रकट नहीं करता। होना तो यह चाहिए कि आज समाज में जितने भी दोष गिने जाते हैं—शराब पीना, व्यभिचार करना आदि—वे सब मामूली दोष हैं और नैतिक दोष एक ही है, 'छिपाना' 'असत्य'। अगर यह मूल्य स्थापित हो जाय तो समाज जल्दी सुधरेगा। इसलिए सत्य और अहिंसा में फर्क किया जाता है। विशेष हालत में किसीने हिंसा कर डाली, तो उसका वह दोष होगा। किन्तु असत्य ही तो मूल नैतिक दोष है और बाकी के सारे शारीरिक या मानसिक दोष हैं यह मूल्य समाज में स्थिर होना चाहिए।

दोष प्रकट करें

इसलिए मैं चाहता हूँ कि हमें बेधड़क अपने दोषों को प्रकट कर देना चाहिए। कुछ लोगों को भय लगता है कि इससे तो दोष बढ़ेंगे। तभी तो वे कहते हैं कि लोक-निन्दा की जरूरत है और इसीलिए लोक-निन्दा को विकसित किया गया है। लेकिन आज इस पर इतना जोर दिया गया है कि उससे कुछ दोष तो कम होते हैं, पर उनके पीछे असत्य फैलता है। असत्य बहुत बड़ा दोष है। इस तरह छोटे दोषों के बदले कोई बड़ा दोष आये तो नुकसान पैदा होता है। आज बच्चे अपना अपराध छिपाते हैं। लेकिन अगर उन्हें तालीम दी जाय कि अपराध छिपाना ही सबसे बड़ा अपराध है, सबसे बड़ा दोष है तो वे ऐसा न करेंगे। इन दोषों को तरह देखने की समाज की आज जो दृष्टि है, वह बदलेगी। आज हम जिन दोषों को भयानक पाप मानते हैं, उन्हें वैसा न मानें, तो उन

पापों से समाज की मुक्ति हो सकती है। लेकिन उन्हें छिपा करके तो हम मुक्ति का रास्ता ही बन्द कर देते हैं। इसलिए सबसे प्रधान मुख्य सत्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से सोचनेवाले के लिए यही मुख्य वस्तु है।

सत्य बुनियादी गुण

महापुरुषों में कुछ दोष होते हैं। हमने सुना है कि ऋषि क्रोध करते थे। लेकिन कोई झूठा हो और फिर भी महापुरुष हो, ऐसा नहीं हो सकता। सत्य तो बुनियादी चीज है। प्राचीनकाल से आज तक इसे मान्य किया गया और बुनियादी चीज माना गया है। लेकिन बुनियादी चीज मानने का मतलब महत्त्व देना भी होता है। और बुनियादी माने मामूली चीज, ऐसा भी एक अर्थ माना जाता है। जैसे, बुनियादी शाला माने प्राथमिक शाला। इसी दृष्टि से सत्य को बुनियादी गुण मानते हैं और समझते हैं कि यह तो मामूली गुण है, पहले दर्जे का गुण है, कालेज का गुण नहीं है। इसलिए जो लोग असत्य को अपने जीवन में स्थान देते हैं, जिनका सारा व्यवहार असत्य पर खड़ा है वे भी यह चाहते हैं कि अपने बच्चों को स्कूलों में सत्य ही सिखाया जाय असत्य नहीं। क्योंकि सत्य तो बचपन का गुण है, ऐसा वे मानते हैं। शायद वे यह भी सोचते होंगे कि बच्चे कॉलेज में जाने पर असत्य सीख लेंगे। परन्तु प्राथमिक शाला में तो सत्य चाहिए ही, ऐसा उन्होंने माना है। इस तरह अभी हमने सत्य केवल बच्चों के लिए, सन्यासियों के लिए ही रखा है। बाकी सबके लिए अपवाद रखे हैं। वे अपवाद इतने ज्यादा हैं कि संस्कृत व्याकरण में जैसे नियम से भी ज्यादा अपवाद होते हैं और उनकी लम्बी फेहरिस्त बनती है, उसी तरह सत्य का जहाँ उपयोग न किया जाय, इसकी लम्बी फेहरिस्त बन जाती है। राजनीति में, व्यापार में, अदालत में और शादी में भी असत्य चलता है और यह भी दलील पेश की जाती है कि उसे असत्य ही न कहा जाय। याने वे लोग असत्य की व्याख्या ही बदलना चाहते हैं।

सत्य ही एकमात्र साधना

सत्य को मौलिक (Elementary) गुण माना गया है, इतना ही बस नहीं है। सत्य ही एक नैतिक तत्त्व है और बाकी के सारे नैतिक गुण नहीं हैं, सामान्य गुण या दोष हैं यह विचार नीतिशास्त्र में स्पष्ट हो जाय तो समाज में

सुधार होगा और आध्यात्मिक साधना में उससे मदद मिलेगी। जहाँ मनुष्य दोष को छिपाता है वहाँ दंड से बचने के लिए छिपाता है। उसका छिपाना भी दुर्बलता मानी जाती है। इसलिए हम चाहते हैं कि दोषों के लिए दंड ही न होना चाहिए, बल्कि उनकी दुरुस्ती होनी चाहिए। कोई बीमार पड़ता है तो हम उसे सजा थोड़े ही देते हैं। हाँ उसे उपवास करने के लिए कहते हैं, कड़वी दवा पिलाते हैं और कभी-कभी ऑपरेशन भी करते हैं। अगर इन्हींको दंड कहना हो तो कहिये। परन्तु वह तो 'ट्रीटमेंट' है उपचार है सेवा है। इसलिए समाज में जितनी बुराइयाँ हैं, उन सबके लिए उपचार ही होना चाहिए, दंड नहीं। यह चीज समाज में रूढ़ हो जाय तो आसानी से मन दुरुस्त हो सकता है और समाज बदल सकता है। कुछ लोगों को इसमें खतरा मालूम होता है। वे कहते हैं कि अगर यह डरवाली व्यवस्था मिट जायगी तो मनुष्यों के दोष खुलेआम फैलेंगे। लेकिन यह विचार गलत है। आज डर के मारे सब दोषों को दबाने या छिपाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। उससे अन्तःशुद्धि नहीं होती और परिणामस्वरूप बुराइयाँ फैलती हैं। इसलिए मेरी यह मान्यता है कि सब लोगों को और खासकर आध्यात्मिक साधना करनेवालों को तो सत्य को कभी छिपाना ही न चाहिए। यही सर्वोत्तम साधना होगी। यही प्राथमिक बीच की और आखिरी साधना होगी। यही एकमात्र साधना होगी।

उपनिषदों में ऋषि कहता है

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

यानी 'सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढँका हुआ है। मैं सत्य धर्मा हूँ इसलिए हे प्रभु वह आवरण का पर्दा दूर कर दो।'

आरम्भ कहाँ से हो?

इसलिए यही सर्वोत्तम या सत्यतम साधना है। इसका आरम्भ स्कूल में और घर में हो। आज तो यह होता है कि लड़के माता-पिता से अपने दोष छिपाते और मित्रों में प्रकट करते हैं। जिसमें आश्चर्य की बात है कि जो माता-पिता उन पर इतना प्यार करते हैं, उनके लिए त्याग करते हैं, उनकी सेवा करते हैं, उन्हींसे

बात छिपाने की प्रवृत्ति बच्चों में होती है और जिनके साथ वे खेलतेकूदते हैं, उन मित्रों के सामने दिल खोलकर वे उन्हें प्रकट कर देते हैं। वे बतानेवाले तो नहीं गलानेवाले होते हैं। फिर भी माता-पिता के पास प्रकट नहीं करते, क्योंकि माता पिता ने कभी उन्हें पीटा होगा, डराया होगा, धमकाया होगा।

बच्चे जानते हैं कि माता-पिता उन पर अत्यन्त प्यार करते हैं। लेकिन यह जानते हुए भी बच्चे उनसे बात छिपाते हैं। जहाँ बच्चे माता-पिता से बात छिपाते हैं, वहाँ वे सबसे छिपायेंगे। क्योंकि अगर हम अपनी बात सबसे अधिक किसीके पास खोल सकते हैं, तो माता पिता के ही पास। माता-पिता जितने प्रेममय होते हैं, समाज में दूसरे लोग उतने प्रेममय नहीं होते। इसलिए जो लड़का माता पिता से बात छिपायेगा वह सारी दुनिया से छिपायेगा। कभी कभी ऐसे लड़के मित्र के सामने बात प्रकट करते हैं, लेकिन वह अज्ञानवश होता है। अगर उन्हें मालूम हो जाय कि वे मित्र उनकी निन्दा करते हैं, तो फिर वे उनके सामने भी उसे प्रकट न करेंगे। इसलिए सत्य का आरम्भ स्कूल से और घर से होना चाहिए। स्कूल में भी दण्ड देना, ताड़न करना न होना चाहिए।

अगर किसीसे कोई दोष हुआ तो कुछ हुआ ही नहीं ऐसा मानना चाहिए। किसीकी नाक गन्दी है, तो हम उसे साफ करते हैं, उसे दोषी नहीं मानते। कोई बीमार हुआ तो हम कहते हैं कि दो रोज मत आओ। वैसे ही किसीसे दोष हुआ तो कुछ भी नहीं हुआ ऐसा मानना चाहिए और उससे कहना चाहिए कि दुबारा ऐसा मत करो। इस तरह की उदार-वृत्ति रहनी चाहिए। उस दोष से क्या नुकसान होता है, यह उसे समझाना चाहिए। जिस तरह रोग-निदान में मनुष्य को रोग हुआ, तो हम उसे समझाते हैं कि कौन-सा रोग है, तो फिर वह बच जाता है। इसी तरह घर में शिक्षा में, नीतिशास्त्र में और अध्यात्म में सत्य होना ही चाहिए। नीतिशास्त्र और अध्यात्म, दूसरे पचासों गुणों पर जोर देता है? परन्तु उन्हें यह कहना चाहिए कि सत्य ही मुख्य वस्तु है।

सत्य क्या है ?

कभी-कभी 'सत्य की व्याख्या क्या है' ऐसा सवाल पूछा जाता है। लेकिन यह पूछना ही गलत है। एक बार एक भाई ने पूछा कि 'सत्य क्या है ?' मैंने

सकते। इसलिए निर्भयता को महत्त्व देना पड़ता है। बापू ने भी उसे महत्त्व दिया था और गीता ने तो 'अभय' को सब गुणों का सेनापति बनाया है। पर बारीकी से देखा जाय, तो अभय सत्य की रक्षा के लिए एक युक्ति ही है। अभय के बिना सत्य की रक्षा नहीं हो सकती, इसलिए अभय को स्थान मिला। समाज की आज जो हालत है, वह यदि न होती, तो अभय को इतना महत्त्व का स्थान न मिलता।

भय और अभय

वस्तुतः जीवन में भय और अभय दोनों की जरूरत होती है। सिर्फ अभय ही अभय चले, तो मूर्खता होगी। अगर कहीं साँप पड़ा है और उससे हम डरें नहीं, तो वह गलत होगा। जहाँ डरने की जरूरत है, वहाँ डरना चाहिए और जहाँ डरने की जरूरत नहीं है, वहाँ नहीं डरना चाहिए। रेल आती और हम पटरी पर से चल रहे हैं और डरते नहीं, तो वह मूर्खता होगी। इसलिए कुछ कामों पर भय की भी जरूरत होती है और बच्चों को इस तरह का भय सिखाया जायगा, वह ज्ञान ही होगा। ज्यादा खाओगे, तो तकलीफ होगी, अग्नि पर पाँव रखोगे, तो पाँव जल जायगा, पानी में जाओगे, तो डूब जाओगे, यह सब सिखाना ज्ञान की प्रक्रिया ही है। इसलिए उस प्रक्रिया में यह भी होता है कि कौन से काम करने से खतरा पैदा होगा, यह सब सिखाना चाहिए। यह डर भी ज्ञान-स्वरूप है। इस दृष्टि से सोचा जाय, तो भय और अभय दोनों की जीवन में जरूरत होती है। गीता ने भी कहा है कि कहाँ डरना, कहाँ नहीं डरना, यह दोनों मालूम होना चाहिए।

सत्य ही सर्वप्रथम गुण

लेकिन आज तो उल्टा होता है। माता-पिता से नहीं डरना चाहिए, पर बच्चे उन्हीं से डरते हैं। बुरे मित्रों से डरना चाहिए, पर बच्चे उनसे नहीं डरते और उनके पास अपने दिल की बात खोल देते हैं। यानी समाज में सब उल्टा ही चलता है। आज अभय को जो इतना सार्वभौम महत्त्व मिला है, उसका कारण यही है कि आज के समाज में उसके बिना सत्य की रक्षा नहीं हो सकती। अभय को सर्वप्रथम गुण माना गया है, परन्तु वास्तव में सत्य ही सर्वप्रथम गुण है।

हासन, मेदिनीपुर
१५-१-५५

उत्कल पुरी-सम्मेलन तक

[२६ जनवरी '५५ से ३१ मार्च '५५ तक]

आज मुझे इस बात की बहुत खुशी हो रही है कि आखिर इस वीर-भूमि में मेरा प्रवेश हो गया। यह वह भूमि है जिसने चक्रवर्ती अशोक को अहिंसा की दीक्षा दी थी। जिसने 'चण्ड अशोक' का परिवर्तन कर उसे 'धर्म अशोक' बना दिया। गांधीजी कहते थे कि दरिद्रों की सेवा के लिए कहीं दौड़े जाना है तो उत्कल में जाना है। लेकिन मैंने देखा कि भारत में अन्य भी ऐसे प्रदेश हैं, जो दारिद्र्य में उत्कल के साथ मुकाबला कर सकते हैं।

स्वराज्य के दो अंश

मुझे इस बात की विशेष खुशी हो रही है कि आज स्वराज्य की प्रतिज्ञा का दिन है और इसी दिन हमारा यहाँ आना हुआ है। इस दिन हिन्दुस्तान ने स्वराज्य की प्रतिज्ञा ली थी और आज इसका एक अंश पूरा हुआ है। लेकिन जो अंश पूरा हुआ है, वह छोटा-सा है और जो पूरा करने का बाकी है वह बहुत बड़ा अंश है। हम किसीका जुल्म सहन नहीं कर सकते यह स्वराज्य का एक अंश है और किसी पर जुल्म नहीं करते यह दूसरा अंश है। हम न किसीसे दबेंगे और न किसीको दबायेंगे हम न किसीसे डरेंगे और न किसीको डरायेंगे। ये दो अंश मिलकर निर्भयता और स्वराज्य होता है। बाघ या शेर जुल्म नहीं सहन करता लेकिन वह स्वतन्त्रता का प्रेमी नहीं है। क्योंकि वह दूसरे जानवरों पर जुल्म करता है। इसीलिए स्वातन्त्र्यप्रेमी मनुष्य की व्याख्या मैं यह करता हूँ कि जिसके घर तोता पिंजरे में हो वह स्वतन्त्रता का प्रेमी नहीं।

अस्पृश्यता मिटानी चाहिए

अंग्रेजों की सत्ता तो हमने यहाँ से हटा दी, फिर भी पूरी तरह से आजादी प्राप्त हुई, ऐसी बात नहीं। आज भी यहाँ गुलामी के अनेक प्रकार हैं। इसलिए

आज हम सब लोगों को यह प्रतिज्ञा दोहरानी है, फिर से प्रतिज्ञा करनी है कि इस देश में किसी प्रकार की गुलामी हम न रहने देंगे। आज मुझे विशेष रूप से स्मरण होता है अपने हरिजन भाइयों का। कितना छूत-अछूत भेद हमने अभी तक छोड़ा नहीं है। हमें प्रतिज्ञा करनी है कि इस भारत देश में अस्पृश्यता की कमबख्त प्रथा हम एक दिन भी न चलने देंगे। जो भी अधिकार दूसरे सब लोगों को हैं, वे सभी हम हरिजन भाइयों को देंगे तभी पूरे आजाद होंगे। यह तो सामाजिक गुलामी का एक नमूना है, जो सबसे बदतर है।

मालकियत मिटानी है

दूसरा आर्थिक गुलामी का नमूना है, भूमिहीन मजदूर और शहरवाले फैक्टरी के मजदूर। आप जानते हैं कि इस आन्दोलन को कितने लोग भूदान-यज्ञ-आन्दोलन कहते हैं, मैंने 'मजदूरों का आन्दोलन' माना है। उनके दारिद्र्य निरसन के लिए हमने अभी तो भूदान-यज्ञ और सम्पत्तिदान-यज्ञ का काम शुरू किया है, लेकिन यह तो आरम्भमात्र है। हमें करना तो यह है कि भारत में कोई भी मालकियत का नाम नहीं लेगा। मालिक एक भगवान् होगा। भगवान् ही मालिक और स्वामी है, हम तो सारे उसके सेवक हैं, उसकी प्रजा हैं। हमें सम्पत्ति की जमीनों की मालकियत मिटानी है। सारे समाज की सम्पत्ति समाज भर व्यापी रहेगी और सबको उसका समान रूप से लाभ मिलेगा यह हमें करना है। हमारे देश में स्त्री पुरुषों के बीच भी काफी असमानता है। उसे भी हमें मिटाकर स्त्रियों को पूरी आजादी देनी है, तभी स्वराज्य का एक अंश पूरा होगा। हमें इस बात की खुशी हो रही है कि इस देश में यह शब्द निकल पड़ा है कि हमें यहाँ 'अहिंसक समाजवादी रचना' करनी है। हिन्दुस्तान के समाजवाद में हम लोगों ने विचार कर निर्णय किया है कि इसमें मनुष्यों के साथ गायों और बैलों का भी समावेश होगा। इसलिए इस देश में अपने जानवरों पर भी हमें बहुत प्यार करवाना चाहिए। उन पर कोई अन्याय नहीं होना चाहिए। आदिवासियों को हमें दूसरे लोगों के स्तर पर लाना होगा। ये सब प्रतिज्ञाएँ हमें अभी पूरी करनी हैं। इसलिए आज के दिन का महत्त्व ज्यादा है।

मैं तो और गहराई में जाकर यह भी कहना चाहता हूँ कि हमारी इन्द्रियाँ और मन सब हमारे वश में रहेंगे हम उनके गुलाम न रहेंगे। इसलिए प्राचीन काल में वैदिक ऋषि ने मंत्र दिया था : यतेमहि स्वराज्ये—हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें। इस तरह गुलामी के सभी प्रकारों को हमें मिटाना है और उसके लिए भूदान-यज्ञ प्रतीक मात्र है। इतना सारा काम बिना अहिंसक क्रांति के नहीं हो सकेगा इसलिए हमने अहिंसक क्रांति का उद्घोष किया है। भूदान-यज्ञ में जो जमीन मिलेगी उसका कम-से-कम एक तिहाई हिस्सा हरिजनों में बँटेगा ऐसा हमने बहुत पहले से जाहिर कर दिया है।

भूदान-यज्ञ और सामाजिक, आर्थिक विषमता

आज के दिन हम सब प्रतिज्ञा करें कि हम अपने देश में किसी भी प्रकार की सामाजिक और आर्थिक गुलामी न रहने देंगे। हर मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का और अपनी भूमि का छठा हिस्सा देना ही चाहिये। सम्पत्ति जमीन गाँव-गाँव बँटेगी और सारे गाँवों में गोकुल स्थापित होगा। इसलिए हम सब अपना परम भाग्य समझते हैं कि राजनैतिक स्वतंत्रता या समता इस देश के साथ ही यह काम करने का मौका भगवान ने हमें दे दिया। आप सब कह भाग्यवान् हैं कि ऐसा काम करने धर्म-कार्य में हाथ बँटाने का मौका मिला है। पहले कदम के तौर पर आज हम छठा हिस्सा मांगते हैं लेकिन आखिर हमें पूरा जमीन गाँव की बनाना है।

सम्भलनाथ रोड

१६ १ ५५

बढ़ाना चाहते हैं, लेकिन लोग जानते ही नहीं। हम संग्रह तो बढ़ाना चाहते हैं, पर उसे घर-घर में बाँटना भी चाहते हैं। हम नहीं चाहते कि किसीका शरीर मजबूत रहे और किसीका कमजोर। हम चाहते हैं कि हर मनुष्य का शरीर मजबूत रहे। हम नहीं चाहते कि समाज में हाथ के पाँच और पैर का नमूना हो। हर एक का शरीर सम्पन्न रूप से मजबूत होना चाहिए। प्रत्येक अवयव में शक्ति आनी चाहिए। सारांश अपरिग्रही समाज में लक्ष्मी खूब बढ़ेगी। कारण अपरिग्रह याने अनन्त संग्रह लेकिन वह बँटा हुआ।

निकम्मी चीजों का संग्रह न होगा

तीसरी बात यह है कि किसी निकम्मी चीज का संग्रह न रहेगा। असंग्रह के तौर पर हम सिगरेट जैसी चीजों को होली में जलाना चाहते हैं। निकम्मी चीज का संग्रह समाज में न होगा। इस तरह 'असंग्रह' के तीन अर्थ हुए। पहला अर्थ यह है कि समाज में लक्ष्मी खूब बढ़े। दूसरा अर्थ यह कि वह लक्ष्मी घर-घर बँटे। और तीसरा यह कि निकम्मी चीजों का संग्रह न करें। शराब की बोतलें और सिगरेट का बण्डल लक्ष्मी नहीं है।

क्रमयुक्त संग्रह

अथवा अपरिग्रह में चौथी बात यह होगी कि अच्छी चीजों में भी क्रम देखना पड़ेगा। आज तो क्रम का कोई मान ही नहीं रहता और लोग मादक चीजें बढ़ाते चले जाते हैं। यह क्रम इस प्रकार रहेगा :

(१) खाना उत्तम मिलना चाहिए।
(२) हरएक को कपड़ा मिलना चाहिए।
(३) अच्छे घर मिलने चाहिए।
(४) औजार मिलने चाहिए।
(५) ज्ञान के साधन याने पुस्तक आदि उत्तम मिलनी चाहिए।
(६) मनोरंजन के साधन संगीत आदि भी उपलब्ध होने चाहिए।

जिस तरह चीजों का क्रम बताया गया है उसीके अनुसार चीजें बढ़नी चाहिए। एक भाई ने कहा था कि समाज में जो लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर

आते हैं इसलिए अब दारिद्र्य नहीं रहा। किन्तु हम कहते हैं कि दारिद्र्य भी है और अकल भी कम है। शहरों की यह हालत है कि खाने को नहीं मिलता पर लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं। घी नहीं मिलता लेकिन 'डालडा' खाते हैं। कई घरों में खाने की चीजें पूरी तरह मुहैया नहीं हैं, लेकिन कपड़े पड़े हैं। टूथ ब्रश, पेस्ट, लिपस्टिक आदि हैं और हारमोनियम भी है। अरे भाई! बाजा बजाओ लेकिन पहले खाओ फिर बजाओ। इस तरह कौन सी चीज पहले और कौन-सी चीज बाद में हासिल करनी चाहिए, यह देखना होगा। मान लीजिये कि हमारे घर में पूरा दूध नहीं घी नहीं है तो पहले हम उन्हें ही लायेंगे। तात्पर्य 'अपरिग्रह' का मतलब हुआ क्रमयुक्त संग्रह।

पैसा कम-से-कम रहेगा

अपरिग्रही समाज में पैसा कम-से-कम रहेगा। पैसा लक्ष्मी नहीं पिशाच या राक्षस है। वास्तव में पैसा धान्य, तरकारी अनाज, यही लक्ष्मी है। यह पैसा तो नासिक के छापाखाने में पैदा होता है कागज से बनता है। जैसे किसीको रिवाल्वर दिखाकर पैसे ले जाना चोरी डकैती है, वैसे ही पाँच रुपये का नोट दिखाकर घी ले जाना भी डकैती है। पैसा तो राक्षसों का औजार है लेकिन लक्ष्मी देवता है। वह विष्णु भगवान् के आश्रय में रहती है। "उद्योगिनं पुरुष-सिंहमुपैति लक्ष्मीः।" उद्योग करनेवाले को लक्ष्मी मिलती है और पैसा तो छापखाना चलाने से मिलता है। 'कराग्रे वसते लक्ष्मीः'। लक्ष्मी हमारे हाथ की अंगुलियों में रहती है। भगवान् ने जो दस अंगुलियाँ हमें दी हैं, उनमें परिश्रम करने पर लक्ष्मी मिलेगी। तात्पर्य अपरिग्रही समाज में सबसे कम चीज होगी पैसा।

कारण पैसे से चोरी सुलभ हो जाती है। वह रात में भी नहीं करनी पड़ती दिन में ही हो जाती है। यह शाप पैसा लोगों के पास पहुँचा और उसीने लोगों को भ्रम में डाल दिया है। आज जो दरिद्र है वह लक्ष्मीवान् बना है और जो लक्ष्मीवान् है, वह दरिद्र बन गया है। जिसके पास घी दूध तरकारी, अनाज है, वह कहलाता है 'गरीब' और जिसके पास इनमें से कोई भी चीज नहीं सिर्फ पैसा है, उसे 'श्रीमान्' या 'धनी' कहा जाता है। ये श्रीमान् लोग बेचारे श्रमिकों

के पास जाते हैं और पैसा देकर उनसे चीजें लेते हैं। इस तरह संग्रह यानी पैसे का संग्रह और वह अपरिग्रही समाज में कम-से-कम होगा। इसीलिए हम उसे 'अपरिग्रही-समाज' कहते हैं। इस तरह अपरिग्रही समाज के पाँच लक्षण हुए : (१) इस समाज में लक्ष्मी लूट जायेगी याने उसका प्रादुर्भाव होगा। (२) लक्ष्मी घर-घर बँटी रहेगी याने उसका समान वितरण होगा। (३) निरर्थक वस्तुओं का संग्रह न होगा। (४) श्रम-युक्त संग्रह होगा और (५) पैसा कम-से-कम रहेगा।

ग्रामसभा (बाकेश्वर)
२१।१।'५५

भारतीय श्रीमान् बापू की अपेक्षाएँ पूरी करें : ६ :

आप सभी जानते हैं कि आज महात्मा गांधीजी का श्राद्ध-दिन है। वह घटना तो दिल्ली की प्रार्थना-सभा में हुई थी और उस दिन मैं पवनार के आश्रम में था। घटना होने के दो घण्टे के बाद मुझे उसकी जानकारी करायी गयी। सुनते ही मेरे मन में यही अनुभव हुआ कि 'अब बापू अमर हो गये' और उस क्षण से आज इस क्षण तक मेरा सतत यही अनुभव रहा है। बापू जब देह में थे, तो उनसे मिलने उनके पास पहुँचने के लिए कुछ समय लगता था। लेकिन आज उनसे मुलाकात करने के लिए तो एक क्षण की भी जरूरत नहीं पड़ती। जब आँख बंद करके सोचते ही मुलाकात हो जाती है। वे 'बापू-जी' कहलाते थे और वह संज्ञा उनके लिए सब तरह से योग्य है। हम सब भारत-वर्ष के लोग और दुनिया के भाग्यशाली उन्हें 'बापू' नाम से पहचानते थे। 'बापू' का अर्थ 'पिता' होता है।

व्यापक ईश्वर में सन्तों का स्वतन्त्र स्थान

अब तक प्रार्थना में हमारे भजन गाना हुए—यह भजन मराठी में बने हुए। किन्तु मन में एक क्षण के लिए भी कभी यह विचार न हुए कि हम किसी पुरुष-विशेष का भजन कर रहे हैं। हम एक परमेश्वर का नाम लेते हैं, तो उनके

साथ दूसरा कोई नाम लेना बाकी ही नहीं रहता। परमेश्वर इतना व्यापक स्वरूप धारण किये हुए है कि उसमें असंख्य सत्पुरुष छुपे हैं, जैसे अनार के फल के अन्दर अनार के असंख्य बीज होते हैं। इसी कारण जब मैं परमेश्वर का स्मरण करता हूँ तो उसके अंदर 'बापू' का भी स्मरण आ जाता है। मैं मानता हूँ कि ईश्वर के सामने इस तरह की बात बोलना एक हँसी-खेल है। एक उसीकी हस्ती है और दूसरी कोई हस्ती ही इस दुनिया में नहीं है। फिर भी हमारे भक्तिमय हृदय को भास होता है कि संतों का भी अपना अलग स्थान है। भले ही उनकी शक्ति ईश्वर की शक्ति में हो पर उनका एक स्वतंत्र स्थान अवश्य है।

भूदान-यज्ञ संपत्ति-दान-यज्ञ श्रमदान-यज्ञ आदि काम चलते-चलते आखिर उनमें से जीवन-दान निकल पड़ा। इस कार्यक्रम से मेरे हृदय को अपार आनन्द होता है। हमेशा यह समाधान होता है कि मैं निरंतर बापू के साथ रह रहा हूँ। – – –
आज मुझमें लोगों को कुछ उपदेश देने की वृत्ति नहीं है। जो कुछ बोलूँगा मानो अपने ही साथ बोल रहा हूँ इस तरह से बोलूँगा। वैसे व्याख्यान में तो मुझे भाषा सहज ही सूझती है, लेकिन आज शायद मेरे शब्द इतने माकूल या सहज न निकलें।

भारत के श्रीमानों से अपील

आज सात साल के बाद मुझे यह कहने में खुशी हो रही है कि देश आहिस्ता आहिस्ता बापू के उपदेश के नजदीक आ रहा है। आप लोगों ने सुना होगा कि हमारी सबसे बड़ी संस्था 'कांग्रेस' अब बोल उठी है कि 'हिन्दुस्थान के गरीबों का उत्थान ही हमारा उद्देश्य होगा और हम समाजवादी रचना करेंगे। मैं तो 'साम्ययोगी समाज' यह शब्द सबसे अधिक पसन्द करता हूँ। यह 'साम्यवाद' से तो भिन्न पड़ता है लेकिन उसका सार इसमें आ जाता है। 'समाजवादी रचना' कहने में भी नेताओं का यही तात्पर्य दीखता है, क्योंकि उन्होंने उसके साथ 'अहिंसा' भी जोड़ दी है। आखिर 'अहिंसक समाजवाद' कहने का मतलब 'साम्ययोगी समाज' ही होता है और उसीके माने हैं 'सर्वोदय'। लेकिन 'साम्ययोग' शब्द मुझे उससे बेहतर मालूम होता है क्योंकि उसके अन्दर किसी प्रकार का विचार-दोष नहीं आता।
देखता हूँ कि 'समाजवादी रचना' कहने से लोगों के मन में भ्रम पैदा होने

है कि उसमें व्यक्तिगत क्षेत्र (प्राइवेट सेक्टर) के लिए क्या स्थान रहेगा ? इस पर यह उत्तर दिया जाता है कि इसमें खानगी प्रकल्प के लिए भी काफी अवकाश रहेगा। पूँजीपतियों को यह डर-सा लगता है कि 'समाजवाद' शब्द के उच्चारण से शायद कोई दूसरी ही सूरत मन में उत्पन्न हो। लेकिन आज के पवित्र दिन मैं यह जाहिर कर देना चाहता हूँ कि अगर भारत के श्रीमान् भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति दान-यज्ञ में योग देंगे, तो उनके लिए कोई भय जो उन्हें मालूम होता है, नहीं रहेगा। अगर ये लोग 'सर्वोदय' का विचार समझ लें तो 'प्राइवेट' और 'पब्लिक सेक्टर' का भेद ही मिट जायगा। इसलिए जिनके पास कुछ सम्पत्ति है, उनसे मेरी आज अपील है कि वे सर्वोदय के विचार से अपने जीवन में परिवर्तन कर लें। मैं इसी आशा से पैदल घूम रहा हूँ कि इस उत्पादन के परिणामस्वरूप जो कि आज मेरा पक्ष रहा है, जमीनवाले और सम्पत्तिवाले इस आन्दोलन को खुद ही उठा लेंगे और इसे अपना ही आन्दोलन समझेंगे। कारण उनके हृदय में सद्भावना रहने की श्रद्धा मुझमें न होती तो इस आन्दोलन पर मेरा विश्वास ही न होता। गत चार वर्षों का अनुभव मेरी इस श्रद्धा को दृढ़ करता आ रहा है और मैं देख रहा हूँ कि सम्पत्तिवाले और जमीनवाले धीरे-धीरे इस आन्दोलन के अनुकूल हो रहे हैं।

तीन अपेक्षाएँ

आज हिंदुस्तानगर के जलसे श्रीमान् मिलों से मेरी अपील है भारत के सभी बड़े-बड़े मालिकों से मेरी प्रार्थना है कि वे तीन बातें करें तो समाज तेजा या बहुत बड़ा श्रेय उनके हाथ आयेगा। पहली चीज जो मैं उनसे चाहता हूँ यह है कि वे मुनाफाखोरी और ब्याज को छोड़ दें। इसमें वे कुछ भी खोयेंगे नहीं बल्कि बहुत इज्जत पायेंगे। दूसरी बात यह है कि वे अपनी सम्पत्ति का उपयोग एक ट्रस्टी के नाते करने की जिम्मेदारी उठा लें और जैसा देश के सामने जाहिर कर दें। मेरी तीसरी माँग यह है कि वे प्रेम चिह्न या सर्वोदय विचार की मान्यता के तौर पर सम्पत्ति दान में अपनी सम्पत्ति का हिस्सा दिया दें ताकि गरीबों और भूमि हीनों को थोड़ा मदद पहुँचे। अगर वे ये तीन बातें करेंगे तो उन्हें 'समाजवाद' शब्द से डरने का कोई भी कारण न रहेगा। इससे उन्हें काफी प्रतिष्ठा मिलेगी।

पड़ेगा और सुख भी प्राप्त होगा। मैं यह नहीं मानता कि बड़े लोग पूँजीवादी हिन्दुस्तान पर प्यार नहीं करते। यह भी नहीं मानता कि मध्यवित्त लोग देश का प्रेम नहीं समझते या आम जनता जो कि सख्त परिश्रम करती हुई उत्पादन में लगी है, देश के लिए ममत्व नहीं रखती। इस तरह यहाँ सबके मन में देश का प्रेम मौजूद है और हमें परमेश्वर की कृपा से स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अपना समाज बनाने का मौका मिला है, तो मैं आशा करता हूँ कि सब लोग इसे उठा लेंगे।

प्रेम, दुनिया को बचायें

अब तक करीब छब्बीस लाख एकड़ जमीन भूदान में मिली है। उसमें कितनी ऐसी है, जिसे हमें तोड़ना और पानी का इन्तजाम करना पड़ेगा। अगर हमारे पूँजीपति इस काम को उठा लेते हैं, तो हम मानते हैं कि अपने उस आचरण से वे सारे हिन्दुस्तान के प्रेमपात्र बन जायेंगे। उसका यह भी परिणाम होगा कि अहिंसा पर सारी दुनिया की श्रद्धा बढ़ेगी। आज सारी दुनिया भयभीत है। किस दिन क्या होगा पता नहीं चलता। हम रोज का अखबार पढ़ते हैं, तो कभी ऐसी खबर मिलती है, जिससे लगता है कि शायद अब दुनिया में शान्ति होगी। पर इतने में ही एक दिन ऐसी खबर आती है कि उससे लगता है कि अब शायद अशान्ति होगी। इस दुनिया की बीमार जैसी हालत हो गयी है। ज्वर का बुखार बढ़ गया है, पर बीच-बीच में घटता भी जाता है। कभी-कभी डाक्टर जाहिर करता है कि आज इसकी हालत अच्छी है, तो कभी कहता है, आज मामला जरा बिगड़ा हुआ है। ऐसे खतरनाक रोगी जैसी हालत आज दुनिया की हो गयी है। उसे बिना प्रेम, बिना अहिंसा और बिना बलिदान के आरोग्य-लाभ नहीं हो सकता। अगर हिन्दुस्तान के बड़े लोग हमारा सर्वोदय का काम उठा लेते और आज को अपने प्रेम से कुछ राहत दे देते हैं, तो हम समझते हैं कि वे तो सब बापू के ही देश और दुनिया की बचेंगी।

हम गांधीजी की श्रद्धा के योग्य बनें

आज गांधीजी के प्रयाण के दिन हम अपने उन पुराने मित्रों से प्रेमपूर्वक

जैसे-जैसे भूदान यज्ञ आगे बढ़ा वैसे ही वैसे हमने सोचना शुरू किया कि सम्पत्ति वालों को भी यह मौका मिलना चाहिए कि वे अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा समाज के लिए समर्पित करें। एक धर्म के तौर पर और जब कि लाखों एकड़ जमीन दान में मिल रही है, तो अब सम्पत्ति की भी जरूरत महसूस पैदा हुई है। क्योंकि सम्पत्ति के मदद के बिना लाखों एकड़ जमीन में फसल पैदा करना कठिन है। इस तरह भूदान-यज्ञ की सफलता के लिए सम्पत्ति-दान-यज्ञ आवश्यक हो गया है। इसके अलावा सम्पत्ति का अपना भी एक स्थान है। चूँकि सम्पत्ति सारे समाज के सहयोग से ही पैदा होती है इसलिए उस पर मालकियत समाज की यानी परमेश्वर की होनी चाहिए।

अहिंसक समाजवाद कैसे आयेगा ?

कांग्रेस ने जाहिर कर दिया है कि इसके आगे हम हिन्दुस्तान की रचना समाजवादी ढंग से करेंगे और हमारा समाजवाद अहिंसक रहेगा। हम महसूस करते हैं कि जहाँ 'समाजवाद' शब्द का उच्चारण होता है वहाँ उसके साथ-साथ कई प्रकार के विचार पैदा होते हैं, क्योंकि समाजवाद यूरोप में अपने-अपने ढंग का चला है। इसलिए कहना पड़ा कि यहाँ जो समाजवाद आयेगा, वह भारत के अपने ढंग का होगा, अहिंसा के जरिये ही लाया जायगा। 'समाजवाद' का एक अर्थ लोग यह समझते हैं कि सारे कारखाने और धन्धे सरकार के या स्टेट के हो जायें। अगर 'समाजवाद' का इतना ही अर्थ किया जाय तो इसके माने हुए कि सरकारी पूँजीवाद या स्टेट कैपिटलिज्म हो जायगा। खानगी लोगों के पूँजीवाद से सरकारी पूँजीवाद लोगों के लिए निश्चय ही कल्याणकारी होगा यह हम नहीं कह सकते। यह ठीक है कि सरकारी पूँजीवाद पर लोगों का अंकुश ज्यादा रहेगा और व्यक्तिगत पूँजीवाद पर उतना नहीं। फिर भी समाजवाद की असलियत तो यही है कि हरएक व्यक्ति की सब समाज को समर्पित हो और व्यक्ति को विकास का पूरा मौका मिल जाय। केवल समाज की सत्ता या सरकारी सत्ता बन जाने से समाजवाद पूरा नहीं होगा। समाजवाद के लिए यह धर्म भावना जरूरी है कि सभी व्यक्ति खुशी से अपनी सब शक्तियाँ जो कि भगवान् की देन हैं, समाज की सेवा में लगाना अपना धर्म समझें।

इसके अलावा समाज की तरफ से हरएक व्यक्ति को उसकी बुद्धि और आत्मा का विकास करने का पूरा मौका मिलना चाहिए। व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई आघात नहीं पहुँचना चाहिए। सबको विकास का मौका देने का मतलब है (१) हरएक की बुद्धि की स्वतंत्रता मान्य करना और (२) सब मनुष्यों को बराबर-बराबर मौका देना। आज सरकार के हाथ में कई ताकतें हैं, पर हम देखते हैं कि हर ताकत का अच्छा ही उपयोग होता हो ऐसा नहीं। फिर उनमें धन्धों की भी ताकत सरकार को दे दें तो उसका कल्याणकारी ही उपयोग होगा यह कैसे कहा जा सकता है? आजकल की सरकारें जो कि लोकतान्त्रिक सरकारें मानी जाती हैं जब तक केन्द्रित शक्ति से बनी हैं, तब तक उन पर लोगों का अंकुश नहीं पड़ता। इसलिए सरकारी सत्ता विभाजित होकर वह गाँव-गाँव में जानी चाहिए। तभी अहिंसक समाजवाद बनेगा।

अहिंसक समाजवाद में पूँजीवादियों का भी कल्याण

अहिंसक समाजवादी रचना में पूँजीवादियों को कोई खतरा न रहेगा अगर वे अपनी सारी पूँजी बुद्धि योजना शक्ति समाज को समर्पण करने को तैयार हो जायें। इस पर लोग हमसे कहते हैं कि पूँजीवाले पूछ सकते हैं कि अगर हमारे हाथ में मालमिल्कियत न रहे तो हमें कारखानों का काम बढ़ाने उसका उत्कर्ष करने में प्रेरणा कहाँ से मिलेगी? कुछ-न-कुछ स्वार्थ की लालच होने पर ही मनुष्य को उसे बढ़ाने में अपना पूरा श्रम लगाने की प्रेरणा होती है, तभी वह अपनी पूरी ताकत उसमें लगायेगा। लेकिन स्वार्थ की भावना के बिना सेवा की या उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा न मिलेगी यह धारणा ही गलत है। उसमें मानव स्वभाव के स्वरूप पर ध्यान नहीं दिया गया है। हम तो मानते हैं कि मनुष्य में जितनी स्वार्थ की भावना है उससे बहुत ज्यादा त्याग की भावना है। हर रोज हर परिवार में हर मनुष्य त्याग कर ही रहा है। कितनी माताएँ और कितने पिता अपने बच्चों के लिए, कितने भाई अपने भाइयों के लिए और घर के लिए मर मिटते हैं। इसलिए करने की बात तो इतनी ही है कि आज जो उनकी त्याग-भावना एक परिवार तक ही सीमित है, उसे गाँवभर फैला दिया जाय। किसान

रोकमय अलग-अलग घर में रहता है। हाँ इतना ही होता है कि वे 'मालिक' कहलाये जाते हैं, इसलिए उन्हें अपने मकान की चिन्ता करनी पड़ती है और पेड़ 'मालिक' नहीं कहलाता जाता, इसलिए उसे चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जब नित्य नये घर का भाग करने का मौका मिलता है, आनन्द की वृद्धि होगी और चिन्ता नहीं रहती तो क्या बिगड़ता है! इसलिए हम कहते हैं कि जो लोग आज धन्धों के मालिक कहलाये जाते हैं, वे अगर अब धन्धों के 'सेवक' और 'व्यवस्थापक' बनें, तो उनका आनन्द कम नहीं होगा, बल्कि और बढ़ेगा। उनकी चिन्ता कम होगी और चिन्तन बढ़ेगा।

पाकिस्तान में बाबा बीमार हुआ, तो कुछ डाक्टर उसे देखने आये। बाबा पहले दवा लेने से इनकार करता था, इसलिए हमारे डॉक्टर दुःखी होते थे। लेकिन जब बाबा ने दवा लेना कबूल किया, तो सब डाक्टरों को बाबा का उपचार मालूम हुआ। उन्होंने प्रेम से दवा दी और बाबा से एक कौड़ी भी नहीं ली। लेकिन आज अगर कोई पूँजीपति होता और बीमार पड़ता, तो बिना फीस लिये कोई डाक्टर उसे देखने के लिए नहीं आता। उसकी बीमारी में उसकी धन तक की कमाई हुई आधी स्टेट खतम हो जाती। इसलिए जो मालिक न रहेंगे, वे कुछ खोयेंगे नहीं। चिन्ता कम होगी और चिन्तन शक्ति बढ़ेगी। इससे पूँजीपतियों को लाभ होगा, समाज और देश को भी लाभ होगा। फिर यह कहने की जरूरत ही नहीं कि आज उनकी जितनी मान प्रतिष्ठा है, जितनी कीर्ति है, उससे बहुत ज्यादा मान और कीर्ति उसे मिलेगी। इसलिए सर्वोदय की भाषा में, जिसे 'आर्थिक समानता' नाम दिया जा रहा है, जिसमें कोई खतरा नहीं है। उससे उनको आनन्द ही प्राप्त होगा।

वेतन का समान वितरण

हम तो कहते हैं कि जो बाप अपने बेटे के हाथ में बनी ज्यादा रकम रखेगा, वह बाप अपने बेटे का प्रथम शत्रु होगा। उसे बेटे को तो उत्तम शिक्षण देकर कहना चाहिए कि अब तू समाज की सेवा कर अपना गुजर निर्वाह कर ले। अगर बाप ऐसा करता है, तो वह बेटे का मित्र है। बाबा के बाप ने बाबा के

लिए कोई इस्टेट नहीं रखी। इसलिए बाबा की बुद्धि काम कर रही है। लेकिन अगर बाबा के पिता उसके लिए इस्टेट रखे होते तो बाबा मेस्क्यूफ निकलता और बाबा मूर्ख न माँगता। इसामसीह ने लिख रखा है कि 'चाहे सूई के छेद में से ऊँट जा सकेगा लेकिन सम्पत्ति के मालिकों का भगवान् के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता।' यही बात उपनिषदों ने भी कही है: 'अमृतत्वस्य नास्ति वित्तेन।' अर्थात् पैसे के आधार पर जो अमृतत्व चाहेंगे वे तो मुर्दा बनेंगे।

यहाँ मैंने उपनिषद् का नाम लिया, वहीं लोग यह मानने लगेंगे कि बाबा तो हमें वैरागी बना रहा है। लेकिन हम किसीको वैरागी नहीं बना रहे हैं, सबको ऐश्वर्यसम्पन्न बनाना चाहते हैं। किन्तु यह अवश्य चाहते हैं कि सबको समान मात्रा से ऐश्वर्य प्राप्त हो। आज तो हिन्दुस्तान के चन्द लोगों को ही खाना नहीं मिलता। लेकिन मान लीजिये कल सब लोगों को खाना न मिले और सभी भूखे रहें, तो बाबा यह नहीं कहेगा कि 'अब तो साम्ययोग हो गया।' सब समान भूखे रहें, यह कोई साम्ययोग नहीं। साम्ययोग तो यही है, जिसमें सब लोग समान भाव से पोषणयुक्त अन्न खायें। इसलिए उपनिषदों और ईशा का नाम लेने का अर्थ इतना ही है कि हम सबको समान रूप से ऐश्वर्यसम्पन्न बनाना चाहते हैं। अगर हम सब लोग एक साथ सोचेंगे तो यह बात सम्भव है और थोड़े ही दिनों में हो भी जायगी।

इस पर अगर लोग पूछें कि जब भगवान् ने सबको अलग-अलग अक्ल दी है, तो सबको समान ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो सकता है? तो हम कहते हैं, जो एक ही परिवार में रहते हैं, क्या उन्हें अलग-अलग अक्ल नहीं होती? फिर भी वे समान खाना खाते और समान ऐश्वर्य का उपभोग करते ही हैं। इसलिए बुद्धि अलग-अलग होने पर भी अगर प्रेम समान होता है, तो समान ऐश्वर्य हो सकता है। हमारा यह कहना नहीं कि हम सबकी बुद्धि समान बना देंगे। यह तो ईश्वर के हाथ की बात है। अवश्य ही हम यह आशा करते हैं कि अगर हरएक को तालीम का अच्छा मौका देंगे तो आज बुद्धि में जितनी विषमता है उतनी नहीं रहेगी। फिर भी यह कबूल करते हैं कि बुद्धि में फर्क रहेगा लेकिन अगर सारे समान रूप से एक-दूसरे पर प्यार करते हैं तो समान ऐश्वर्य भी रहेगा।

के इस युग में इस परिवार भावना को व्यापक बनाने के लिए बाहरी परिस्थिति भी बहुत अनुकूल हो गयी है। धर्म-दृष्टि तो व्यापक भावना के लिए पहले से ही अनुकूल है। इस तरह धर्म-दृष्टि कहती है और विज्ञान भी कहता है कि 'सारे गाँव का एक व्यापक परिवार बनाओ। छोटे-छोटे परिवार बनाने के बजाय एक ही परिवार बनाओ।' आज मानव की तैयारी उसीके लिए हो रही है।

आज हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े पूँजीवादी दावा करते हैं कि हम जन-सेवा के लिए ही काम कर रहे हैं, हम हिन्दुस्तान की सम्पत्ति के वारिस हैं। हम उन्हें समझाते हैं कि सर्वोदय-विचार में हम आपकी बुद्धि का पूरा उपयोग लेना चाहते हैं। हम सिर्फ आपकी सम्पत्ति का ही बँटवारा नहीं चाहते, बल्कि यह भी चाहते हैं कि आपकी बुद्धि का भी बँटवारा हो। लोगों में यह ख्याल है कि अच्छा काम करने के लिए कुछ बाहरी प्रेरणा भी चाहिए। इसीलिए भारत-सरकार भी सोचती है कि अच्छे काम करनेवालों को पदवियाँ दी जायँ। राजाजी को ही लीजिये, वे सारी जिन्दगी निष्काम कर्म में बिता चुके हैं। उनकी जिन्दगी में सेवा के सिवा दूसरी कोई चीज ही नहीं रही। अब इतने बुढ़ापे में, सारी जिन्दगी निष्काम सेवा में बिताने के बाद भारत-सरकार उन्हें "भारत-रत्न" की उपाधि देती है, तो उससे उन्हें सेवा की अधिक प्रेरणा तो न मिलेगी। फिर भी सरकार उन्हें तमगा देती है और वे नम्र होकर उसे स्वीकार भी करते हैं। इससे सरकार की ही इज्जत बढ़ती है। किन्तु क्या सरकार यह नहीं समझती? क्या वह राजाजी को उत्तेजन देने के लिए दिया जा रहा है? नहीं। सरकार तो हिन्दुस्तान के बच्चों को ही यह उत्तेजन देना चाहती है कि आप भी राजाजी जैसी सेवा करेंगे तो आपको 'भारत-रत्न' का तमगा मिलेगा। लेकिन अब सवाल यह पैदा होता है कि राजाजी भारत रत्न की कोई उपाधि मिलने की प्रेरणा से तो राजाजी नहीं बने हैं। उन्हें ऐसा कोई अन्दाज ही नहीं था। फिर नये बच्चों को भी भारत-रत्न की उपाधि के लालच से क्या राजाजी बनने की प्रेरणा मिल सकती है? फिर भी जैसे हम बच्चों को समझते हैं, वैसे ही जनता को भी समझते और उसे उत्तेजन देते हैं। हम पूँजीवादियों से भी कहते हैं कि आपको 'भारत-रत्न' बना देंगे अगर आप अपनी पूँजी जनता की सेवा में लगायें। सारांश यह मानना कि उद्योग बंद न हो जाने पर तो पूँजीवादी आज

अपना दिमाग उद्योगों में अच्छी तरह लगा रहे हैं, उन्हें प्रेरणा न रहेगी सरासर गलत है।

मालकियत छोड़ने से आनंद-वृद्धि और चिन्ता-मुक्ति

हमारा सर्वोदय-विचार बहुत ही आगे बढ़ा हुआ समाजवाद है। उसमें सिर्फ सम्पत्ति की ही मालकियत मिटाने की बात नहीं है। हम तो बुद्धि की भी मालकियत भगवान् को अर्पण कर देना चाहते हैं। इसीलिए हम तो भगवान् से प्रार्थना करते हैं—अपने गायत्री मन्त्र में हम उनसे कहते हैं—कि भगवन्, हमारी बुद्धि को प्रेरणा दें। भगवान् की सेवा करने के खयाल से जो प्रेरणा मिल सकती है उससे ज्यादा प्रेरणा मालकियत के खयाल से कैसे मिलेगी? हमने भगवान् का नाम लिया तो घबड़ाने की जरूरत नहीं है। भगवान् तो जनता के रूप में हमें प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है। माता के अपने बच्चे में आत्म-दर्शन होता है, तो उसे आनन्द होता है। उसे तो सारी प्रेरणा उसीसे उस आनन्द में से मिलती है। यह जो एक माँ की अपने बच्चे के लिए प्रेम-प्रेरणा है, हमें वैसी ही प्रेम-प्रेरणा जन-सेवा में भी होती है। जन-सेवा के काम में बुद्धि काम न करेगी यह मानना गलत है।

मुख्य बात इतनी है कि जिसे हम 'मुनाफाखोरी' कहते हैं, उसे छोड़ देना होगा। मान लीजिये कि बिड़ला और टाटा को आज अपने धन्धों का मालिक कहा जाता है। पर इसके बदले 'व्यवस्थापक या 'सेवक' कहा जाय तो क्या बिगड़ेगा। इसमें तो उन्हें बेहतर पदवी मिलती है। आज भी वे ही समाज की तरफ से धन्धों का विकास करते हैं। उसके लिए वे अगर मजदूरों जैसा ही वेतन पाना चाहें तो उनकी बुद्धि मन्द पड़ेगी यह मानना गलत है। जहाँ मनुष्य अपने धन्धे या सम्पत्ति का ट्रस्टी होता है, वहाँ उसके आनन्द की वृद्धि होती है और कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। आज रोज-रोज धूमना और उसे रोज-रोज नया घर मिलता है। वह अपने को उस घर का मालिक नहीं कहलाता। फिर भी किसी मालिक को इतने घरों का उपभोग नहीं मिलता। हमने बड़े-बड़े पूँजीपति देखे हैं। उनके हिन्दुस्तान में १-२ जगह पर बँगले होते हैं। कभी वे अपने दिल्ली के घर में रहते हैं, कभी कलकत्ते के, कभी बनारस के कभी बम्बई के। लेकिन बाबा तो

रोजमर्रा अलग-अलग घर में रहता है। हाँ, इतना ही होता है कि ये 'मालिक' कहलाये जाते हैं इसलिए उन्हें अपने मकान की चिन्ता करनी पड़ती है और ये न 'मालिक' नहीं कहलाया जाता इसलिए उसे चिन्ता नहीं करनी पड़ती। घर जिस तरह घर का भोग करने का मौका मिलता है, आनन्द की वृद्धि होती और चिन्ता नहीं रहती तो क्या बिगड़ता है? इसलिए स्पष्ट है कि जो लोग आज धन्धों के मालिक कहलाये जाते हैं, वे अगर अब धन्धों के 'सेवक' और 'व्यवस्थापक' बनें तो उनका आनन्द कम नहीं होगा, बल्कि और बढ़ेगा। उनकी चिन्ता कम होगी और चिन्तन बढ़ेगा।

चांडिल में बाबा बीमार हुआ तो कई डॉक्टर उसे देखने आये। बाबा पहले दवा लेने से इनकार करता रहा, इसलिए बेचारे डॉक्टर दुःखी होते थे। लेकिन जब बाबा ने दवा लेना कबूल किया, तो सब डॉक्टरों को बाबा का उपकार मालूम हुआ। उन्होंने प्रेम से दवा दी और बाबा से एक कौड़ी भी नहीं ली। लेकिन बाबा अगर कोई पूँजीपति होता और बीमार पड़ता, तो बिना फीस लिये कोई डॉक्टर उसे देखने के लिए नहीं आता। उसकी बीमारी में उसकी अब तक की कमाई हुई आधी इस्टेट खतम हो जाती। इसलिए जो मालिक न रहेंगे, वे दुःखी होंगे नहीं। चिन्ता कम होगी और चिन्तन-शक्ति बढ़ेगी। इससे पूँजीपतियों को लाभ होगा, समाज और देश का भी लाभ होगा। फिर यह कहने की जरूरत ही नहीं कि आज उनकी जितनी मान-प्रतिष्ठा है, जितनी कीर्ति है, उससे बहुत ज्यादा मान और कीर्ति उसे मिलेगी। इसलिए सर्वोदय की माँग में, जिसे 'व्यक्तिगत समाजवाद' नाम दिया जा रहा है, किसीको कोई खतरा नहीं है। उसमें उनका आनन्द ही प्राप्त होगा।

वैभव का समान वितरण

हम तो कहते हैं कि जो बाप अपने बेटे के हाथ में धनी-कमाई इस्टेट रखेगा वह बाप अपने बेटे के पुरुषार्थ का शत्रु होगा। उसे बेटे को तो उत्तम शिक्षा देकर कहना चाहिए कि अब तू समाज की सेवा कर अपना उदर निर्वाह कर ले। अगर बाप ऐसा करता है तो वह बेटे का मित्र है। बाबा के बाप ने बाबा के

लिए कोई इस्टेट नहीं रखी, इसलिए बाबा की बुद्धि काम कर रही है। लेकिन अगर बाबा के पिता उसके लिए इस्टेट रखे होते, तो बाबा मेम्बर निकलता और आज भूदान न माँगता। ईसामसीह ने लिख रखा है कि 'धागे सुई के छेद में से ऊँट जा सकेगा लेकिन सम्पत्ति के मालिकों का भगवान् के राज्य में प्रवेश नहीं हो सकता।' यही बात उपनिषदों ने भी कही है: "अमृतत्वस्य नास्ति वित्तेन।" अर्थात् पैसे के आधार पर जो अमृतत्व चाहेंगे वे तो मुर्दा बनेंगे।

यहाँ मैंने उपनिषद् का नाम लिया, यहीं लोग यह मानने लगेंगे कि बाबा तो हमें वैरागी बना रहा है। लेकिन हम किसीको वैरागी नहीं बना रहे हैं, सबको ऐश्वर्यसम्पन्न बनाना चाहते हैं। किन्तु यह अवश्य चाहते हैं कि सबको समान भाव से ऐश्वर्य प्राप्त हो। आज तो हिन्दुस्तान के चन्द लोगों को ही खाना नहीं मिलता। लेकिन मान लीजिये कल सब लोगों को खाना न मिले और सभी भूखे रहें, तो बाबा यह नहीं कहेगा कि अब तो साम्ययोग हो गया! सब समान भूखे रहें, यह कोई साम्ययोग नहीं। साम्ययोग तो वही है, जिसमें सब लोग समान भाव से पोषणयुक्त बन जायँ। इसलिए उपनिषदों और ईशा का नाम लेने का अर्थ इतना ही है कि हम सबको समान रूप से ऐश्वर्यसम्पन्न बनाना चाहते हैं। अगर हम सब लोग एक साथ सोचेंगे तो यह बात संभाव्य है और थोड़े ही दिनों में हो भी जायगी।

इस पर अगर लोग पूछें कि जब भगवान् ने सबको अलग-अलग अक्ल दी है तो सबको समान ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो सकता है? तो हम कहते हैं, जो एक ही परिवार में रहते हैं, क्या उन्हें अलग-अलग अक्ल नहीं होती? फिर भी वे समान खाना खाते और समान ऐश्वर्य का उपभोग करते ही हैं। इसलिए बुद्धि अलग अलग होने पर भी अगर प्रेम समान होता है, तो समान ऐश्वर्य हो सकता है। हमारा यह कहना नहीं कि हम सबकी बुद्धि समान बना देंगे। यह तो ईश्वर के हाथ की बात है। अवश्य ही हम यह दावा करते हैं कि अगर हरएक को तालीम का अच्छा मौका देंगे तो आज बुद्धि में जितनी विषमता है, उतनी नहीं रहेगी। फिर भी यह कबूल करते हैं कि बुद्धि में फर्क रहेगा लेकिन अगर सारे समान रूप से एक-दूसरे पर प्यार करते हैं, तो समान ऐश्वर्य भी रहेगा।

पूँजीपतियों को दावत

इसलिए हम सम्पत्तिवानों को दावत देते हैं। उनसे प्रार्थना करते हैं कि आप किसी प्रकार का संकोच या डर न रखें और जैसे गांधीजी सुझाते थे ट्रस्टी बनने को राजी हो जायँ। आप 'अहिंसक समाजवाद' के नाम से न डरें। उसमें आपको विकास का पूरा मौका मिलेगा, जैसा आज मिलता है। उसमें आपकी बुद्धि का अच्छा उपयोग होगा। इतना ही नहीं, आज आपको जितना आनन्द, सुख और गौरव मिलता है, उससे बहुत ज्यादा आनन्द, सुख एवं गौरव मिलेगा। और आत्म-समाधान, जो कि आज आपको मुश्किल से प्राप्त होता होगा, विशेष रूप से प्राप्त होगा। इसमें आपका किसी तरह से कोई नुकसान नहीं है। इसलिए आप जल्द-से-जल्द इसमें आइये, तो देश का नेतृत्व आपके हाथ में आ जायगा। अगर आप मालकियत छोड़कर देश की कुछ सेवा करने के लिए आ जाते हैं, तो हम कबूल करते हैं कि आपके पास जो क्षमता (एफीशियेन्सी) है, उसका देश को उपयोग होगा। पूँजीपतियों का अर्थ आप यह मत समझिये कि लक्षा-धीश या कोट्याधीश ही पूँजीपति हैं। जिसके पास जो कुछ है, उसका वह आज मालिक है। इसलिए हरएक से हमारी माँग है कि आपके पास जो कुछ सम्पत्ति होगी—थोड़ी या ज्यादा—उसका छठा हिस्सा जरूर दीजिये। जो छोटे हैं, वे छठा हिस्सा दें और दूसरे छठे हिस्से से भी अधिक दे सकते हैं, इसलिए दिल खोलकर दें।

कसबा (बालेश्वर)
६-११-'५५

धर्म एक होता है और दूसरा मोक्ष जिससे समाज की मुक्ति होती है। इस भूदान-यज्ञ में ये दोनों विचार जुड़े हैं। जहाँ भूदान्या होती है, वहाँ सब प्राणियों में प्रेम और धर्म होता है और जहाँ आत्मा की शक्ति का भान होता है, वहाँ मनुष्य को मोक्ष मिलता है, मुक्ति होती है। यह जो छठे हिस्से का दान हरएक से माँगा जाता है उससे धर्म फैलता है। उसीके साथ मालकियत मिटाने की जो बात हम समझाते हैं, उससे समाज मुक्त होता है। वास्तव में स्वातंत्र्य मुक्ति महत्त्व का विचार है और धर्मनिष्ठा भी महत्त्व का विचार है। दोनों विचार इस आन्दोलन से पेश रहे हैं। लेकिन लोग इनका महत्त्व नहीं समझते और हमारे सामने आर्थिक सवाल ही पेश करते हैं। पर समझने की बात है कि जहाँ आत्मा को अपनी मुक्ति का भान होता और धर्मनिष्ठा बनती है, वहाँ आर्थिक कामना की प्राप्ति होती है यह महाभारत में व्यासदेव का वचन है।

अपनी-अपनी सोचने से ही आर्थिक समस्या

मालकियत की भावना मिट जाय और सबके लिए दया और धर्मनिष्ठा बने, तो सभी लोग बाँटकर खाने की बात सोचेंगे। उससे हिंदुस्तान की दौलत जरूर बढ़ेगी और सबकी वासनाएँ तृप्त होंगी। अगर लोग यह समझ जायें तो आर्थिक सवाल पेश करनेवाले भी रुक जायेंगे और दूरदृष्टि से इस काम में शरीक होना ही पसन्द करेंगे। आज आर्थिक समस्या हरएक के सामने खड़ी है। वह इसलिए खड़ी है कि लोगों ने सबके लिए सोचना छोड़ दिया और हरएक अपने-अपने लिए ही सोचने लगा। जहाँ अपनी-अपनी सोची जाती है और दूसरों की परवाह ही नहीं की जाती वहाँ लक्ष्मी बढ़ाने के साधन हाथ में नहीं आते।

रेणुका

५-२-५५

आज हमसे यह सवाल पूछा गया कि 'भूदान का काम तो अच्छा है। किन्तु मानव में विद्यमान स्वार्थ लोभ और सत्ता हासिल करने की प्रवृत्ति का आप क्या करने जा रहे हैं? उसका उत्तर आपके पास क्या है?' यह बहुत बड़ा और बुनियादी सवाल है। अगर इसका उत्तर ठीक समाधानकारक मिल जाता है तो मनुष्य परोपकार के काम में पूरी ताकत लगा सकता है। नहीं तो वह डाँवाडोल ही रहेगा।

काम-वासना का नियंत्रण

मनुष्य में भोग और ऐश्वर्य की वासना होती है यानी सत्ता की भी रुचि होती है इसमें कोई शक नहीं। यह बात मानी हुई है। गीता ने इसे 'भोगैश्वर्य प्रवृत्ति' नाम दिया है यानी भोग ऐश्वर्य-सत्ता की लालसा। लेकिन गीता ने हार नहीं मानी और इसे रोकने तथा धर्म में लगाने का उपाय भी उसने बताया है। एक ज़माना था जब समाज में विवाह-संस्था मौजूद ही नहीं थी और काम-वासना के अनुकूल जैसे जानवर बरतते हैं, वैसे ही मनुष्य भी बरतते थे। प्राचीनकाल के ऋषि मुनियों की कहानी हम सुनते हैं, तो बड़े बड़े-बड़े ऋषियों पर भी काम-प्रेरणा का परिणाम दीख पड़ता है। लेकिन उस वासना का नियंत्रण करने का विचार भी मनुष्य को सूझा क्योंकि अनियंत्रित वासना से न वासनापूर्ति होती है और न समाज में शांति ही रहती है। उसने इसका भी अनुभव किया और उसके बाद विवाह-संस्था की खोज की।

किन्तु विवाह-संस्था भी क्रमशः विकसित होती गयी है। पहले राक्षस-विवाह और फिर गान्धर्व विवाह जैसे नाना प्रकार के विवाह चले। इस तरह विकास होते-होते आखिर हिन्दुस्तान में ब्राह्म विवाह निश्चित हो गया और उसे शास्त्र-विधि के तौर पर मनुष्य ने मान्यता दे दी। अब वह उस विवाह-विधि के अनुसार भी भोगों के लिए नियमन की बातें सोचने लगा है। एक साथ अधिक पत्नियाँ न

होनी चाहिए, इस तरह का विचार भी मनुष्य में बढ़ रहा है। थोड़े दिनों में आप देखेंगे कि एकपत्नी-व्रत का कानून भी सरकार की तरफ से बन सकेगा, क्योंकि मानवों का विचार उस दिशा में बहुत तीव्र गति से बढ़ रहा है। रामायण में दशरथ की तीन पत्नियाँ और उसके पुत्र का एकपत्नी-व्रत जाहिर है और मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का ही आदर्श समाज के सामने रखा गया है। अभी बहुपत्नीत्व का कानून से निषेध नहीं हुआ है लेकिन थोड़े दिन में हो जायगा। क्योंकि उसके लिए लोगों का मनोभाव तैयार हो रहा है। आज भी किसीकी दो पत्नियाँ हों और उसे पूछा जाय कि क्या आपको दो पत्नियाँ हैं? तो वह शरमिंदा होता है और शरमाते हुए कुछ कारण बता देता है।

जाहिर है कि मनुष्य आज काम-वासना के नियंत्रण में काफी आगे बढ़ा है और पहले के जमाने में समाज की जितनी उच्छृंखल-वृत्ति थी उतनी आज नहीं रही है। यद्यपि व्यक्तिगत तौर पर मनुष्य को काफी आगे जाने की जरूरत है, लेकिन इतना तो मानना ही पड़ेगा कि विवाह-संस्था बनने के पहले का मानव समाज, विवाह-संस्था बनने के बाद का यानी आज का मानव-समाज और विवाह संस्था का अंतिम विकास होने के बाद का मानव-समाज इनमें मानव-स्वभाव बदला है और बदलेगा। यह मिसाल मैंने इसलिए दी कि ध्यान में आ जायगा कि मानव-स्वभाव कोई नियमित और स्थिर वस्तु है ऐसा नहीं। वह सतत विकसित होता चला आया है और आगे भी होता चला जायगा। आगे भी हमें उचित दिशा में कदम उठाना है।

प्राचीन शिक्षा-शास्त्र ताड़न को मानता था, आज का नहीं

दूसरी मिसाल है। पहले यह मानते थे कि बच्चों की तालीम के लिए ताड़ना करनी चाहिए। पाँच साल की उम्र तक उनका लालन करना चाहिए और उसके बाद 'दश वर्षाणि ताडयेत्' यानी दस वर्ष तक ताड़ना करनी चाहिए। तब कहीं विद्या आती है। यहाँ तक कि मनुस्मृति में गृहस्थ के लिए आदेश दिया है कि उसका धर्म अहिंसा है और उसे उस धर्म का पालन करना चाहिए। लेकिन आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वहाँ मनु शिक्षण

है कि बालक को किसीको ताड़ना नहीं चाहिए, मारना-पीटना अच्छा नहीं कहा जा सकता है : "अन्यत्र पुत्रात् शिष्याद् वा शिक्षार्थम् न ताडयेत्" पुत्र और शिष्य को छोड़कर बाकी किसीके लिए ताड़ना न करने का मत होना चाहिए। याने पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए ताड़ना करनी पड़ती है और वह जरूर करनी चाहिए। किन्तु आज के शिक्षाशास्त्री इस विचार को नहीं मानते। बल्कि उलटा मानते हैं कि शिष्य और पुत्र का ताड़ना करने की जरूरत ही नहीं, क्योंकि वे बिलकुल आज्ञाकारी होकर आपके घर में जनमे हैं।

मैं तो कहूँगा कि जब तक पुत्र और शिष्य की ताड़ना जारी है तब तक दुनिया से 'मिलिटरिज्म' का निराकरण नहीं होगा, हिंसाचार जारी रहेगा। मान लीजिये, अपना लड़का कोई गलत काम कर रहा है। आप उसे पीटते हैं और डर से उसने वह गलत काम छोड़ दिया तो भी उसका अत्यन्त नुकसान हुआ है। अगर वह सुबह जल्दी नहीं उठता, इसलिए आपने उसे पीटा। उसके बाद जल्दी उठने लगा याने नियमितता का क्रम आपने उसे सिखाया। लेकिन उसके साथ भयभीतता का दोष भी आपने निर्माण किया। यह दोष उससे ज्यादा भयंकर है। आपने उसे भय की तालीम दी। आपने उसे सिखाया कि तुम्हारे शरीर को अगर तकलीफ होती है, तो तकलीफ देनेवाले की बात मान लेनी चाहिए। फिर वह लड़का या कोई धमकायेगा, उसके वश हो जायगा, क्योंकि आपने उसे भय की तालीम दे दी है। निर्भयता ही सबसे श्रेष्ठ गुण है। इसीलिए गीता ने सद्गुणों की सूची में "अभयं सत्त्वसंशुद्धिः" कहा है। याने अभय को प्रथम स्थान दिया है। 'सत्त्व-संशुद्धि' याने चित्त-संशुद्धि को जो सबसे पहले दर्जे का गुण माना जायगा, द्वितीय स्थान दिया है। क्योंकि उन्होंने सोचा कि यदि निर्भयता मनुष्य में न हो तो किसी भी गुण का विकास न होगा। सत्यनिष्ठा टिक ही नहीं सकेगी और चित्तशुद्धि भी अनिश्चित ही रहेगी। इसलिए लड़के और शिष्य को समझाना ही अपना अधिकार हो सकता है, उसे मारना-पीटना हमारा अधिकार नहीं। ऐसा इस जमाने के सारे शिक्षाशास्त्री मानते हैं।

जब माता-पिता लड़के को पीटते हैं, तो उसके प्रति उनमें द्वेष तो नहीं रहता, सद्भावना से ही वे उसे पीटते हैं, लेकिन पीटने में कितनी मूर्खता है, यह जरा

कहाँ तक ठीक किया ? फिर उन्हें समझाना पड़ता है कि यह रूपक है, वह कोई मनुष्य की कहानी नहीं है। यह एक कामवासना है और उसे विकसित करने का मतलब है, किसी तरह उसका आकर्षण न रहने देना। इतना ही इस कथा का मतलब है।

दुनिया में आज लोगों के मन में फाँसी की सजा रद्द करने की बात उठती है। यद्यपि इसके अनुकूल अभी तक मानव का निर्णय नहीं हुआ है, लेकिन शीघ्र ही हो जायगा और फाँसी की सजा मानवाधीन मानी जायगी।

मानव के मानस-शास्त्र का विकास

एक जमाना था जब कि स्त्रियों को साधारण जड़ वस्तु माना जाता था। पुरुषों की मालकियत की वस्तु में उनकी गिनती थी। इसीलिए जहाँ युधिष्ठिर द्यूत में हार गये, तो उन्होंने द्रौपदी को भी अर्पण कर दिया जैसे अन्य चीजों का अर्पण किया था। फिर जब द्रौपदी को दुःशासन भरी सभा में खींच लाया तो उसने खड़े होकर भीष्म-द्रोण से सवाल पूछा। तो भीष्म द्रोण विदुर निरुत्तर हो गये, उत्तर दे नहीं पा रहे थे। उनके सामने धर्मसंकट खड़ा हुआ। आज के लड़कों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आखिर भीष्म-द्रोण को यह सवाल क्यों कठिन मालूम हुआ ? यह तो बिलकुल आसान सवाल है। इसलिए मानव का मानस शास्त्र बदलता जाता है। उसका विकास हुआ है।

सत्ताविभाजन द्वारा सत्ताभिलाषा का नियन्त्रण

मनुष्य अपनी वृत्तियों का भी उत्तरोत्तर नियन्त्रण करता आ रहा है और करनेवाला है, यह पहली समझने की बात है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य में जैसे भोग ऐश्वर्य की वृत्ति है, वैसे दूसरी वृत्तियाँ भी मौजूद हैं। केवल भोग ही नहीं, धर्म भावना और धर्म-प्रेरणा भी मनुष्य में बड़ी बलवान् होती है। धर्म-प्रेरणा को प्रधान पद देकर वासनाओं को उसके अनुकूल में रखने की समझ मनुष्य को रखनी चाहिए और उसे वह उत्तरोत्तर रखेगी ही। मनुष्य की प्रेरणा ही उससे कहती है कि भोग ऐश्वर्य की मानव में स्थित वृत्ति को प्रधानता न मिलनी चाहिए। उसे विकसित न होने देकर कुंठित करने का रास्ता ढूँढ़ना

चाहिए। आज मनुष्य की सम-बुद्धि का यह रास्ता सूझा है कि सत्ता बाँट दें और भोग सबको समान रूप से मिले। यह ऐसी कोशिश करे, तो भोग-वासना नियन्त्रित और कुंठित हो जायगी। फिर उस सत्ता की आसक्ति भी न रहेगी। ये दोनों बातें आज की सरकार मानती है। इसीलिए उसने हरएक को वोट का अधिकार दिया है। इसका मतलब सत्ता सबमें विभाजित करने का आरम्भ कर दिया है। लोग जिसे चुनेंगे वह नौकरी करेगा और लोगों की सेवा करेगा। जो चाहे, वह सत्ताधारी कहलायेगा पर उसके हाथ में सेवा करने की ही सत्ता रहेगी ऐसा विचार लोकशाही में मान्य हुआ।

लेकिन केवल वोट मिल जाने से सत्ता विभाजित नहीं होती। इसलिए हमारी कोशिश जारी है और वास्तव में सत्ता हरएक मनुष्य में विभाजित हो जायगी। इसके लिए आन्दोलन हो रहे हैं। भूदान-आन्दोलन भी उसीका रास्ता है। हम चाहते हैं, हमारी कोशिश है और सर्वोदय की नींव है कि हर गाँव में सत्ता बँटनी चाहिए। गाँव में क्या बोयेंगे और क्या नहीं बोयेंगे? गाँव में कौन-सी वस्तु लाने देंगे और कौन-सी रोकेंगे इसकी सारी सत्ता गाँव में होनी चाहिए। गाँव को तालीम देने की योजना भी गाँववालों को ही करनी चाहिए। ऊपरवाले सिर्फ सूचनाएँ दे सकते हैं। अधिकार गाँववालों का ही होना चाहिए और कैसी तालीम वे ठीक समझें, दे सकते हैं। गाँव का न्याय गाँव में ही होना चाहिए। गाँव का झगड़ा गाँव के बाहर हरगिज न जाना चाहिए। मेरी तो यहाँ तक राय है कि कोई वकील भी न होनी चाहिए। दो गाँवों के बीच झगड़ा हुआ तो गाँव के बाहर बात चली जायगी। परंतु यदि गाँव के अंदर ही बात हुई, यहाँ तक कि यदि गाँव के अन्दर कोई खून भी हुआ तो भी गाँव के लोगों को ही उसका न्याय करना चाहिए। चाहे उसमें दान में गलती हो, फिर लगे, लेकिन आखिर यह करना ही होगा। वोट का हक तो सत्ता-विभाजन का आरंभ मात्र है, पर इसकी पूर्ति तब होगी जब ग्रामराज्य स्थापित होगा और गाँव के लोग उसमें हिस्सा लेंगे।

स्वाद-नियमन के लिए सुख-साधनों का वितरण

जिस तरह मनुष्य की भोग-वासना का नियमन और मुक्ति करने का रास्ता है सत्ता का विभाजन हो जाना और हरएक का इतना निश्चित वितरण होना

कि सत्ता का एक अंश हमारे पास पड़ा है, उसी तरह हरएक में विद्यमान स्वार्थ-बुद्धि को नियमित और कुंठित करने का उपाय है, मनुष्य के सुख के सामान्य साधन सबको समान रूप से मुहय्या करने का प्रयत्न करना। मनुष्य के सुख-स्वाप का आधार जमीन पर ही रहता है। इसीलिए हमने जमीन से शुरू किया और कह दिया कि हरएक बेजमीन को जमीन मिलनी ही चाहिए। उसका हक मान्य होना ही चाहिए। यह एक बिलकुल बुनियादी विचार है, जो हम समाज के सामने रख रहे हैं।

आज जिनके हाथ में सरकारी सत्ता है, उनका और दूसरों का भी जो उनके खिलाफ अपनी राजनैतिक पार्टी बनाकर खड़े हैं, यह आम विचार चलता है कि जमीन की "सीलिंग" बनायी जाय। ज्यादा-से-ज्यादा कितनी जमीन रख सकते हैं, कानून से उसका नाप निश्चित किया जाय और बाकी का बाँट दिया जाय। कोई २ एकड़ की बात करते हैं, कोई ३ एकड़ की करते हैं, तो कोई ५ एकड़ की बात करते हैं। इसका मतलब यह है कि भूमिहीनों को कोई भूमि न मिले, सब 'मिडिल क्लास' (मध्यम वर्ग) को मिले और गरीब वैसे ही रह जायें। किन्तु हम कहते हैं कि जमीन की काश्त करना जाननेवाला हरएक व्यक्ति अगर काश्त करना चाहता है, तो उसे हिसाब से उसके हिस्से में आनेवाली जमीन देनी ही पड़ेगी। उसके बाद यदि ज्यादा जमीन नहीं बचती तो न बचे। उसकी हम फिक्र नहीं कर सकते। गाँव में जितना कुछ अनाज पैदा हुआ हो उसके प्रमाण में हरएक को कम-से-कम कितना अनाज मिले इसका चिंतन करना चाहिए था। केवल १ एकड़ का सीलिंग बनाकर हिन्दुस्तान की १ करोड़ एकड़ जमीन इस तरह एक करोड़ परिवार में बँट जाय तो हिन्दुस्तान की समस्या हल नहीं होगी। १ - १ एकड़ जमीनवाले अगर एक करोड़ लोग हिन्दुस्तान में हो जायँ, तो हिन्दुस्तान का उत्कर्ष नहीं हो सकता, उससे भूमिहीनों का समाधान नहीं हो सकता। उससे सत्ययुग नहीं आ सकता और न भोगवासना का ही नियमन हो सकता है।

होना तो यह चाहिए कि गाँव में जो भी जमीन है वह गाँवभर में बँट जाय। हरएक को उसके परिवार के मुताबिक जमीन मिले। सब मिलकर खेती करें या अलग-अलग, यह तो गाँववाले ही तय करेंगे, लेकिन मालकियत किसीकी न रहेगी। मालकियत गाँव की ही रहेगी। कोई मनुष्य अपाहिज हो और उसे

पानी मिलने का हक है, तो वह मिलना ही चाहिए। वैसे ही जो जमीन माँगता है, उसे उसके हिस्से की जमीन मिलनी ही चाहिए, बशर्ते वह उस जमीन को काश्त करने को तैयार हो। इस तरह से जमीन से तो प्रारंभ करते हैं, लेकिन बाकी की बहुत-सी वस्तुएँ, जो मनुष्य के लिए जरूरी हैं, सबको समान भाव से मिलनी चाहिए, यह हमारी माँग है। इससे मनुष्य की भोगवासना कुंठित होगी।

धर्मार्थकामा: सममेव सेव्याः

समान भाव से बँटने का मतलब यह नहीं कि गणित की समानता हम चाहते हैं। हम तो बुद्धि की समानता चाहते हैं। इसमें कुछ कम-बेशी होगा, पर जैसे परिवार में होता है वैसे ही होगा। परिवार में १० रोटियाँ हैं और खानेवाले पाँच मनुष्य हैं, तो गणित के हिसाब से सबको दो-दो रोटी नहीं बाँटते। हरएक को जितनी जरूरत होती है, उसी हिसाब से मिलती है, फिर सब मिलकर खाते हैं। परिवार का यह न्याय ही हमें गाँव और समाज को लागू करना है। भोग-वासना को नियमित करने का यही उपाय है। इसलिए यद्यपि हर प्राणी में सत्ता और भोग की इच्छा कुछ-न-कुछ होती है, तो भी उसका निरसन करने की पूरी शक्यता मानव में है।

शास्त्रकारों ने कहा है : 'धर्मार्थकामा: सममेव सेव्याः।" धर्म, अर्थ और काम का सेवन सबको एक साथ मिलकर और समान भाव से करना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि चन्द लोगों को धर्म की तालीम मिले और चंद लोगों को न मिले। सबको धर्म की तालीम मिलनी ही चाहिए। धर्म रत्न की प्राप्ति हरएक को होनी चाहिए और हरएक को गुण-विकास का मौका मिलना चाहिए। धर्म का समान भाव से सेवन करने का मतलब यही है। अर्थ का समान भाव से सेवन करने का मतलब यह है कि हरएक को जीवन की आवश्यक चीजें समान भाव से मिलनी चाहिए। कुछ थोड़ी-सी विषमता रहेगी, परन्तु पाँच अंगुलियों में जितनी विषमता रहती है, उतनी ही, उससे अधिक नहीं। इसी तरह कामवासना का समान रूप से सेवन करने का मतलब है कि हरएक को कामवासना का उचित मर्यादा में भोग करने का अवसर मिलना चाहिए। "धर्मार्थकामा: सममेव सेव्याः" यह सामाजिक जीवन

का सूत्र है। इस तरह धर्म-नियंत्रित अर्थ-लाभ और काम-तृप्ति की ऐसी योजना हो जाय तो समाज की बहुत सारी समस्याएँ हल हो जायँगी। इसके साथ काम-वासना, अर्थ-प्रेरणा का समान रूप से विभाजन करने के बाद समाज को यह तालीम देनी चाहिए कि अर्थ और काम तुच्छ वस्तुएँ हैं, मुख्य वस्तु नहीं है। मुख्य वस्तु तो यह है कि हरएक को आत्मा का दर्शन हो, जिसे हम 'मोक्ष' कहते हैं। वह सबको हासिल हो और सब उसके लिए कोशिश करें।

समाज मोक्षपरायण बने

पहली बात यह है कि समाज को मोक्ष-परायण बनाना चाहिए, धर्मार्थ-काम-परायण नहीं। यानी अंतिम ध्येय धर्मार्थ-काम-सेवन नहीं, मोक्ष-प्राप्ति ही है। इस बात का समाज के सामने हमेशा आदर्श होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि धर्मार्थ काम के समान सेवन की योजना समाज में होनी चाहिए। इन तीनों के सेवन का समान मौका सबको मिलना चाहिए। तीसरी बात यह है कि मानव स्वभाव दिन-ब-दिन बदलता रहा है और हम उसे उचित दिशा में बदल सकते हैं, ऐसी निष्ठा हममें होनी चाहिए और वैसा पुरुषार्थ हमें करना चाहिए।

सामाजिक जीवन के लिए ये तीन प्रकार के आधार आवश्यक सुव्यवस्थित आधार हैं ऐसा हम समझते हैं। स्वराज्य प्राप्ति के बाद हिंदुस्तान को अपना समाज बनाने का मौका मिला है, यह हम लोगों का बहुत बड़ा भाग्य है। हमें अब पुरुषार्थ करने का मौका मिला है, तो किस दिशा में हमें काम करना है, उसका यह एक चित्र हमने आज आपके सामने रखा।

कटोसर
१ १ '५५

गांधीजी के साथियों ने राष्ट्र के सामने यह योजना रखी है कि 'गांधीजी की स्मृति में हिन्दुस्तान का हर व्यक्ति अपने हाथ से कती एक लच्छी सूत समर्पित करे।' उसके अनुसार आज यह १२ फरवरी के दिन जब कि गांधीजी की अस्थियाँ भारत की नदियों में प्रवाहित की गयी थीं हम यहाँ परमेश्वर की प्रार्थनापूर्वक अपनी सूत्रांजलि अर्पण करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। आज मुझे सात साल पहले का वह दिन याद आ रहा है जब कि पवनार में हमारे आश्रम के सामने 'धाम-गंगा' में ये अस्थियाँ प्रवाहित की गयीं और हजारों लोगों के सामने ईश्वर को साक्षी रख कर हमने प्रतिज्ञा की थी कि 'जो आदर्श हमें बापू ने सिखाया तथा जो अपने इस देश के ऋषि मुनियों का तथा दुनिया के सब संतों और पैगम्बरों का आदर्श है हम उस आदर्श पर चलेंगे और उसके अनुसार भारत में सर्वोदय-समाज बनायेंगे।' इस तरह की मानसिक प्रतिज्ञा हमने उसी दिन की थी। उस घटना को अभी सात साल हुए हैं। आज हम इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति में पैदल घूम रहे हैं।

एक के पोषण के साथ दूसरे का शोषण न हो

देखने की बात है कि हमें दुनियाभर में जो समाज बनाना है, उसकी मुख्य वस्तु क्या होगी? जाहिर है कि आज सारी दुनिया में बड़ी कशमकश है, सर्वत्र अशान्ति का डर फैला हुआ है। कभी 'कोल्ड वार' (ठंडी लड़ाई) चलती है, तो कभी 'कोल्ड पीस' (ठंडी शान्ति)। दोनों कोल्ड-डाइजेस्ट हैं और सारी दुनिया एक तरह की तनाव में है जिससे दुनिया में सबको विकास का मौका मिले और शान्ति स्थापित हो। ऐसी भूख आज सारी दुनिया को है। फिर भी आज दुनिया की जितनी [illegible] इच्छा है शायद ही उतनी कभी रही होगी। आखिर इस अशान्ति का मूल कारण क्या है? यह जब हम देखते हैं तो ध्यान में आता है कि मनुष्य ने अपना मूल धर्म नहीं पहचाना है और वह दूसरों के शोषण पर अपना

पोषण करना चाहता है। पर बहुत ही भयानक जीवन की रचना बन जायगी। जैसे जंगल का कोई जानवर दूसरे जानवरों को खाकर जीता है, वैसे ही अगर मानव समाज में भी एक के शोषण पर दूसरे का पोषण चलता रहा, तो वह जंगल की भयानक रचना होगी। फिर वह 'मानव-समाज' नहीं कहा जायगा, पशु-कुल होगा। पशु से भी बदतर उसकी अवस्था होगी। 'मानव-बुद्धि' के साथ जहाँ 'पशु-वृत्ति' आ जाती है, वहाँ दोनों मिलकर समूल नाश ही कर डालेंगे। यह अवस्था बहुत ही खतरनाक होगी। इससे बचने के लिए जीवन का ऐसा तरीका ढूँढ़ना चाहिए, जिसमें किसी मनुष्य के पोषण के साथ दूसरे किसीका शोषण जुड़ा न हो। इसे हमारे शास्त्रकारों ने 'अविरोध' नाम दिया है। उन्होंने हमारे सामने एक सूत्र रखा है। 'सर्वेषाम् अविरोधेन'। किसीके विरोध में न जाकर हमें अपनी जीविका चलानी चाहिए।

अविरोधी उत्पादक श्रम

आजकल राष्ट्र-राष्ट्र के बीच के व्यवहार के लिए Co-existence शब्द चल पड़ा है। उसका अर्थ यही है कि एक के साथ दूसरे का अविरोध हो, एक की 'पुष्टि' में दूसरे को 'तुष्टि' मालूम हो। इसके लिए यही उपाय होगा कि जो भी मनुष्य खाता है, वह उत्पादक परिश्रम, शरीर-परिश्रम करे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि हम सब लोग "डिवाइड" करते हैं, "मल्टिप्लाय" नहीं करते। याने सम्पत्ति का विभाजन तो करते हैं, खाते तो हैं, हर कोई अपनी सम्पत्ति को क्षीण करने में अपना योग दे रहा है, लेकिन सम्पत्ति की वृद्धि में, उसकी पैदावार में कोई भी योग नहीं देता। आप देखेंगे, आज विद्यार्थी बेकार हैं। कहा जाता है कि विद्यार्थी तो 'विद्यार्थी' ही हैं, अध्ययन कर रहे हैं, उन पर उत्पादन की जिम्मेदारी नहीं है। किन्तु धनी भी उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते, व्यापारी भी उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते, पुलिस सिपाही, भिक्षुक, योगी, सन्यासी, यति, भक्त सब-के-सब उत्पादन में हिस्सा नहीं लेते। बीमारों और बच्चों को तो अनुत्पादक जीवन बिताने का अधिकार है ही। इस तरह से कुल मिलाकर बहुत थोड़े लोग रह जाते हैं, जो उत्पादन का भार उठाते हैं और बाकी के लोगों का बोझ उन्हींके

कर्मों पर पड़ता है। इसलिए हम दूसरे-दूसरे उद्योग करते हों तो भी उसके साथ कुछ-न-कुछ शरीर परिश्रम करने का व्रत सबको लेना चाहिए। इसे राष्ट्रीय व्रत और मानवता का व्रत समझना चाहिए। जब कि हम खाते हैं, तो हमें उत्पादन में भी उपासना की बुद्धि से भाग लेना चाहिए। जिस परमेश्वर ने इतना उत्पादन किया सारी सृष्टि और समाज बनाया उसे क्या समर्पण किया जाय? वेदों ने कहा है: "चक्रिम विश्वानि चक्रुषेत। जिसने विश्व का निर्माण किया उसे उत्पादन ही समर्पण किया जा सकता है। वह सारे विश्व को बनाता है उसे अगर हम कोई चीज समर्पण करना चाहें तो उद्योग से पैदा की हुई चीज ही समर्पण करनी चाहिए। साथ ही हमारा वह उत्पादक श्रम 'अविरोधी' होना चाहिए। अगर विरोधी उत्पादक श्रम होगा तो उससे हानि होगी और अनुत्पादक हो तो उससे भी हानि होगी।

चर्खा अहिंसक क्रान्ति का प्रतीक

इसलिए हमारा जीवन अनुत्पादक न होना चाहिए और अविरोधी वृत्ति होनी चाहिए। यह दुहरी जिम्मेवारी हम पर आती है। यह चर्खा जो महात्मा गांधी ने हमारे सामने रखा, अविरोधी श्रम का चिह्न है। इसीलिए यह क्रान्ति का प्रतीक है अहिंसक क्रान्ति का प्रतीक है। हमें समाज में जो अहिंसक क्रान्ति लानी है, उसके लिए यह प्रतीक मिला है। यह चर्खा छोटा सा दीखता है किन्तु इसमें बड़ी भारी दृष्टि अविरोधी दृष्टि, भरी है। यह एक ही श्रम नहीं करता। कोई तरकारी काट सकता है, लकड़ी काट सकता है चक्की पीस सकता है या खेती कर सकता है किन्तु कुछ-न-कुछ काम कम-से-कम आधा घण्टा किये बगैर कोई न रहे, इस तरह का श्रम व्रत हमें लेना चाहिए। इस तरह का श्रम-व्रत हमें लेना चाहिए। श्रम व्रत याने उत्पादन का व्रत। श्रम याने वृद्धि करना बढ़ाना। सृष्टि में हमसे कुछ-न-कुछ नाश होता रहता है, उसकी पूर्ति में कुछ-न-कुछ वृद्धि करनी ही चाहिए। इसे शास्त्रकारों ने 'यज्ञ' नाम दिया है।

मैंने चौबीसों घंटे कांति पहन ली।

चर्खा तो हर कोई चला सकता है। बीमार भी चला सकता है। किशोरी-

लाल भाई मशरूवाला जो हमेशा बीमार रहते थे हमेशा चरखा चलाते थे। प्रवासी और मुसाफिर भी उसे चला सकता है। जिस्टन रेल पर चलाया जाता है कि बारिश शुरू हो जाती है और १५ मिनट पर रुक जाता है तो इन १५ मिनटों में यह भी चरखा चला सकता है। चर्खे को छोड़ और कोई ऐसा सस्ता औजार हम तो नहीं जानते, जिससे जो पैदावार हो उसे हर कोई शरीर पर धारण कर सके। अगर हाइस्कूल और कालेज के छात्र और शिक्षक यह व्रत ले लें कि 'सभी स्वावलम्बी बनेंगे और अपने बदन पर हमने बना हुआ कपड़ा ही पहनेंगे' तो हरएक व्यक्ति अहिंसक क्रांति का प्रतीक बन जायगा। प्रत्येक व्यक्ति कहने लगेगा "चौबीसों घण्टे मैंने क्रांति को पहन लिया है। सोते हुए और जागते हुए भी क्रांति मेरे चारों ओर है, यह मेरे हाथ का बना है इसका सूत मैंने काता है।" इस तरह हरएक बच्चे के हृदय में क्रांति की भावना पैदा हो जायगी। इसीलिए गांधीजी ने इतना आसान साधन हमें दिया है। अतः उनकी स्मृति में हर साल हम प्रतीक के तौर पर एक लच्छी दें जैसे एक ही वोट देते हैं। प्रभु की उपासना के तौर पर गांधीजी की स्मृति में हर साल अपने हाथ की कती सिर्फ एक गुण्डी अर्पण करना है। इसमें हर कोई हिस्सा ले सकता है।

चरखा हमारा आधार

गांधीजी ने हमें जो तालीम दी यह चरखा उसकी निशानी है। उन्होंने आखिरी दिन तक सूत काता और कहा कि 'चरखा हिन्दुस्तान को बचायेगा'। उनकी इस पर बड़ी मजबूत श्रद्धा रही। जब कभी हमने उनसे इस विषय पर बात की और निराशा के मौके भी आये—आजादी की लड़ाई में कितने ही ऐसे मौके आये, जब कि 'देश पस्तहिम्मत हो गया' ऐसी भी भावना आयी—तब गांधीजी कहते : 'निराशा की क्या बात है! चर्खा है ही। इसमें हिम्मत है, ताकत है।' मान लीजिये कि कोई रिवाल्वर और राइफल लेकर हमला करने आये, तो हम सब भाई-बहनों को इकट्ठा कर चरखा कातेंगे और गोली का सामना करेंगे। हम न डरेंगे और न भागेंगे। यह चर्खा हमें मदद देगा। कुछ मनमाड के एक अनुयायी की कहानी है। वे ब्राह्मण थे। उन्होंने वकालत का धंधा ही छोड़ दिया था पैसे का

आजकल शिक्षा के विषय में लोगों में काफी मंथन चल रहा है। सोचनेवाले भिन्न भिन्न ढंग से सोचते हैं, लेकिन एक बात बिलकुल साफ है। अपनी बहुत सारी जनता देहातों में रहती है। इसलिए आम जनता की तालीम देहाती ढंग से होनी चाहिए, जिससे गाँवों की उन्नति हो। जो लोग शहरों में रहते हैं, उनकी दृष्टि भी ग्रामोन्मुख हो, उनके और गाँवों के बीच अच्छी तरह सहयोग हो, इस प्रकार की तालीम शहरवालों को मिलनी चाहिए। अगर यह हो कि शहरवालों की तालीम एक ढंग से चले और गाँवों की दूसरे ही ढंग से और दोनों में विरोध रहे, तो वह विशेष देश के लिए खतरनाक होगा।

जीवन की मूलभूत समता

वैसे देखा जाए तो जिन्दगी का बहुत सारा भाग सबके जीवन में समान होता है, चाहे वह शहर की जिन्दगी हो चाहे देहात की। पंचभूतों का जो परिणाम गाँववालों पर होता है वही शहरवालों पर भी। उसमें कोई फर्क नहीं होता। स्वच्छता की जरूरत शहरवालों और गाँववालों दोनों को समान रूप से है और होनी चाहिए। सृष्टि के साथ सम्पर्क दोनों के लिए लाभदायी है। यद्यपि शहरवालों के लिए यह बात जरा कठिन है, तो भी वह इन्तजाम उनके लिए भी होना चाहिए। आरोग्य शास्त्र की आवश्यकता दोनों के लिए समान है। यह ठीक है कि शहरवालों के लिए आरोग्य की दृष्टि से एक इन्तजाम करना पड़ेगा तो गाँववालों के लिए दूसरा इन्तजाम, लेकिन आरोग्य की जरूरत दोनों के लिए समान ही रहेगी। परस्पर सहयोग, प्रेम, त्याग भावना आदि धर्म-विचार दोनों के लिए समान लागू हैं। इतना ही फर्क होगा कि गाँवों में जीवन की बुनियादी चीजें रहेंगी, इसलिए ग्रामीण लड़कों की तालीम अत्यन्त सहज भाव से होगी और शहरों में बुनियादी चीजें न रहेंगी, गौण चीजें रहेंगी, इसलिए वहाँ की

तालीम में उन चीजों पर आधार रखना पड़ेगा, तो उस तालीम में कुछ गौणता आ जायगी। यह जो गौणता शहर के शिक्षण में आयेगी वह वहाँ के जीवन में ही होने के कारण उसे तब तक टाल न सकेंगे जब तक कि शहरों को भी हम ग्रामों के समान रूप नहीं दे सकते।

सृष्टिपूजक गाँव ग्रामोन्मुख नगर

शहर की तालीम में थोड़ी गौणता रह जायगी यह हम कबूल करते हैं। किन्तु उस गौणता की पूर्ति भी हो सकेगी अगर दो बातें उसमें हों। एक तो शहरियों का मुँह गाँवों की तरफ हो और दूसरी विदेश की जानकारी वे काफी रखें। शहरों से यह अपेक्षा जरूर की जायगी कि वहाँ के लोग विदेशी भाषाओं से कुछ परिचय रखें। इसलिए उन भाषाओं में जो नयी नयी चीजें आयेंगी उन्हें वे अपने साहित्य में लायेंगे यह आशा उनसे जरूर की जायगी। अगर उनकी दृष्टि ग्रामोन्मुख रही तो ग्रामीणों का सेवा करना वे अपना धर्म समझेंगे। मैंने सूत्र ही बनाया था कि 'ग्रामीण होंगे सृष्टिपूजक या परमेश्वर-सेवक और शहर के लोग होंगे ग्राम-सेवक'। अगर यह दृष्टि रही तो दोनों स्थानों का इस तरह विकास किया जा सकता है कि एक दूसरे की पूर्ति में एक-दूसरे मदद दे।

हर गाँव में विद्यापीठ

मेरी कल्पना है कि हर गाँव में सम्पूर्ण तालीम होनी चाहिए। जिसे हम 'युनिवर्सिटी' या 'विद्यापीठ' कहते हैं, वह हर गाँव में होना चाहिए। क्योंकि हरएक गाँव चाहे वह कितना भी छोटा हो सारी दुनिया का प्रतिनिधि है और कुल दुनिया थोड़े में वहाँ पर मौजूद है। इसीलिए वहाँ पूरी तालीम मिलनी चाहिए। प्रत्येक गाँव का सृष्टि के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है इसलिए मनुष्य को सब तरह से वहाँ सृष्टि-विज्ञान हासिल हो सकता है। वनस्पति प्राणी पक्षी पशु आदि के साथ सम्पर्क रहता है। इसलिए मानव के लिए प्राणिशास्त्र का पूरा ज्ञान वहाँ मिल सकता है। वहाँ खेती होगी कपड़ा बनेगा तरह तरह के उद्योग और ग्रामोद्योग होंगे। इसलिए इन सब चीजों के जरिये और उन चीजों के लिए इस ज्ञान की जरूरत है। यह सारा ज्ञान ग्राम में प्राप्त होना चाहिए और हो सकता है।

ग्राम में प्राचीनकाल से मानव-समाज बसता आया है। अतः वहाँ इतिहास भी मौजूद है और समाज-ज्ञान भी। शहर में जितना एक-दूसरे से आता है, ग्राम में उससे अधिक निकट सम्पर्क आता है। इसलिए वहाँ नीतिशास्त्र और धर्म-शास्त्र बहुत विकसित हो सकता है। आत्मा की व्यापकता, एक-दूसरे के साथ सहयोग करने की वृत्ति, सत्य-निष्ठा आदि जो नीति-धर्म हैं, वे ग्राम में अच्छी तरह प्रकट हैं। ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि आकाश में दीखते हैं, शायद शहरों में उनका प्रकाश अच्छी तरह पहुँचता न होगा। इसलिए गाँवों में काव्य-साहित्य का जितना विकास हो सकता है, शायद उतना शहरों में होना मुश्किल है।

सज्जन ग्रामनिष्ठा बढ़ायें

हम आजकल के शहरों में व्यास और वाल्मीकि आदि की कल्पना ही नहीं कर सकते। उनकी कल्पना तो ग्रामों या ग्रामों के नजदीक ही कर सकते हैं। शूर और त्यागी पुरुष—जो जंगलों के जानवरों से लड़नेवाले होते हैं—वे ग्रामों में ही हो सकते हैं। इसलिए पराक्रमी पुरुषों की सेवा ग्राम से ही मिल सकती है। राष्ट्रों की सेनाओं के सैनिक ग्रामों से ही मिलते आये हैं। सवाल इतना ही है कि इतना सब होता है, तो ग्राम में तालीम देने के लिए जरूरी सारा इन्तजाम क्या हम गाँव में नहीं बना सकते? इसका उत्तर है, ग्रामों की चीजों में से कुछ इन्तजाम हम गाँव में बना ही सकते हैं। लेकिन बहुत ज्यादा इन्तजाम की नहीं, निरीक्षण और प्रयोग की अधिक जरूरत होगी। इसलिए कभी-कभी ग्रामों के लड़कों को शहर की युनिवर्सिटी में जाकर भी कुछ मौका देखने का मौका लेना पड़ेगा। वैसे ही शहरवालों को भी ग्रामों में जाकर वहाँ की कुछ चीजें सीखने का मौका आयेगा। लेकिन इन सबके लिए मेरी निगाह में जो बहुत जरूरी चीज है, वह यह है कि सज्जन और विद्वान् जन गाँवों में रहना पसन्द करें। सत्पुरुषों में ग्राम-निष्ठा बढ़ने से जो काम होगा, वह और किसी दूसरी रीति से न होगा। युनिवर्सिटी के लिए जरूरी चीज तो यही है कि गाँव-गाँव में कुछ सज्जन विचार का अनुशीलन करनेवाले मौजूद हों। कम-से-कम एक-एक सज्जन एक-एक गाँव में आकर रहने लगे, तो उस गाँव के लिए तालीम का इन्तजाम करना किसी तरह से कठिन नहीं होगा।

संन्यासी चलता-फिरता विद्यापीठ

इसके अलावा भिन्न भिन्न प्रकार का ज्ञान जो गाँव का कोई व्यक्ति या गाँव का सज्जन भी प्राप्त नहीं कर सकता, गाँवों को मिले ऐसी भी एक योजना हमारे पूर्वजों ने की थी। उसे हमें भी जारी करना होगा। वह है 'परिव्राजक संन्यासी' की योजना। संन्यासी गाँव गाँव घूमता रहेगा और २४ महीने किसी एक स्थान में भी रहेगा तो उसका पूरा लाभ गाँवों को मिलेगा। वह सारी दुनिया का और आत्मा का ज्ञान सबको देता ही रहेगा। संन्यासी माने 'वाकिंग युनिवर्सिटी' (चलता फिरता विद्यापीठ) जो हर गाँव में स्वेच्छा से जायगा। वह विद्यार्थियों के पास खुद पहुँचेगा और मुफ्त में सबको तालीम देगा। गाँववाले उसके लिए सात्विक स्वच्छ, निर्मल आहार देंगे। इनके अलावा उसे कुछ भी जरूरत नहीं। उससे जितना भी ज्ञान मिल सकता है, गाँववाले पा लेंगे। ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक भी कौड़ी या पैसा खर्च करना पड़े इससे अधिक दुःख-दायक घटना कोई नहीं हो सकती। जिसके पास ज्ञान होता है उसे इस बात की अत्यन्त प्यास रहती है कि दूसरों के पास वह (ज्ञान) पहुँचे। उसे भूख होती है कि उसका ज्ञान दूसरों के पास जाय। बच्चे को माता के स्तनपान की जितनी इच्छा होती है, उतनी ही इच्छा माता को भी बच्चे को स्तनपान कराने की होती है क्योंकि उसके स्तनों में दूध भगवान् ने भर दिया है। कल अगर यह हो जाय कि माताएँ लड़कों से फीस लिये और उन्हें दूध न दें तो दुनिया की क्या हालत होगी?

ग्रामप्रस्थ शिक्षक

ऊँचे ज्ञान के लिए शहर की युनिवर्सिटी में जाना पड़ेगा। वहाँ सौ सौ दो दो सौ रुपये खर्च किये और कुछ हो ही नहीं सकता। समझने की जरूरत है कि इस तरह पैसा खर्च कर जो ज्ञान प्राप्त होता है वह ज्ञान ही नहीं होता। पैसे से खरीदा ज्ञान 'अज्ञान' ही है। प्रेम और सेवा देकर ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसलिए जो ज्ञानी पुरुष गाँव गाँव घूमते हों और वे जिस गाँव में जायें उस गाँव के लोग प्रेम से उन्हें २४ दिन ठहरा लें। उनकी भक्ति करें और उनके पास जो ज्ञान भरा है, उसे हासिल करें यही योजना हो सकती है। जैसे नदी अपने आप

६

लोगों की सेवा के लिए गाँव-गाँव दौड़ी जाती है, जैसे बछड़ों में स्तन-भीतर अपने थनों में दूध भरकर गायें बच्चों को पिलाने के लिए अपने-आप दौड़ी चली जाती हैं, उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी गाँव-गाँव में ज्ञान लेकर दौड़ेंगे। 'परिव्राजकों' की यह संस्था फिर से खड़ी होनी चाहिए। इस तरह हर गाँव में युनिवर्सिटी बन सकती है और दुनिया का ज्ञान हर गाँव में पहुँच सकता है।

वानप्रस्थ-आश्रम की संस्था फिर से मजबूत करनी चाहिए, जिससे हर गाँव में स्थिर शिक्षक मिल सकें, जिन पर कोई ज्यादा खर्च करना न पड़े। हरएक गृहस्थ का घर है, 'स्कूल' और उसका क्षेत्र है, 'प्रयोगशाला'। हरएक वानप्रस्थ है, 'शिक्षक' और हरएक परिव्राजक संन्यासी 'युनिवर्सिटी'। विद्यार्थी हैं, 'आम के बच्चे' जो सीखना चाहते हैं। गाँव-गाँव में ऐसे लोग हैं, जो १-२ घण्टा सीखेंगे और बाकी का समय दिनभर काम करते रहेंगे। इस तरह के चार आश्रमों की जो हमारी योजना है, वह पूरी योजना बचपन से लेकर मरण तक की तालीम की योजना है, ऐसा हम समझते हैं।

कृष्ण-सुदामा का प्रतीक

सर्वोदय में यह दृष्टि है कि सारा गाँव अपने पूरे जीवन की समस्याएँ अपने बल पर हल करे। इसलिए गाँव की कुल दौलत किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि गाँव की बननी चाहिए। तभी गाँव के सब बच्चों के लिए समान तालीम की योजना बन सकती है। अगर हम हरएक को समान रूप से पौष्टिक और सात्त्विक खुराक नहीं दे सकते, तो समान रूप से तालीम क्या दे सकेंगे? सुदामा गरीब ब्राह्मण का लड़का था और श्रीकृष्ण था राजा का लड़का। दोनों गुरु के घर गये थे। दोनों को समान खुराक मिलती थी, समान परिश्रम का काम मिलता था और दोनों को समान ही विद्या दी गयी थी।

अगर किसी गाँव में हमारा विद्यालय खुल जाय, जहाँ एक लड़का गरीब का आवे, वह फटे कपड़े पहना हो और दूसरा अच्छे कपड़े पहनकर आवे—एक को खुराक खाने को न मिले और दूसरा बैठे-बैठे खावे तथा आलसी बन गया हो—तो स्कूल कैसे चलेगा? इसलिए अगर हम चाहते हैं कि ठीक ढंग से तालीम

'चुने गये प्रतिनिधियों' को 'सुर' कहते हैं। इस तरह आपकी गिनती देवताओं में होती है। देवताओं के लिए सबसे बड़ी महत्त्व की बात जिसकी बहुत ज्यादा जरूरत है, है सावधानी। इसके लिए भी हमारे समाज-शास्त्रियों ने सूचना दे रखी है। उन्होंने कहा है कि देवता तो बड़े प्रकाशमान् होते हैं। उनके पास काफी प्रकाश होता है। सामाजिक समस्याओं पर वे प्रकाश डाल सकते हैं। जिम्मेवारी के साथ समस्याओं का हल कर सकते हैं। ये सारी शक्तियाँ उनमें होती हैं। आज भी जनता उन्हें चुनती और अधिकार देकर किसी स्थान पर आसीन करती है। लेकिन सुरों के अक्सर भोगपरायण हो जाने का खतरा रहता है। इस कारण उनके लिए बहुत जरूरी गुण 'दमन' माना गया है। वैसे 'दमन' धर्मियों का गुण है। मानवों का तो रहा है ही। गृहस्थों के लिए और यतियों के लिए भी यह है। वास्तव में यह तो सार्वजनिक सार्वकालिक सार्वदेशिक गुण है—ऐसा गुण है, जिससे सबको लाभ-ही-लाभ है। किंतु उस गुण की विशेष आवश्यकता देवों को होती है।

उपनिषदों में एक सुन्दर कहानी आती है जिसका जिक्र हमने 'गीता-प्रवचन' में भी एक दूसरे प्रसंग में किया है। देव, दानव और मानव प्रजापति के घर विद्याभ्यास के लिए गये थे। विद्याभ्यास होने पर प्रजापति ने एक एक को बिदा करना चाहा। अन्तिम उपदेश के तौर पर उन्होंने हरएक को बुलाकर कुछ बातें कहीं। बातें क्या कहीं ! एक मंत्र ही—एकाक्षर मंत्र—दे दिया। पहले देवताओं का फिर दानवों का और अन्त में मानवों का समावर्तन हुआ। देवता आये, तो उनसे कहा : उपदेश तो अध्ययन के समय आपने बहुत सुन लिया, अब अन्तिम अक्षर उच्चारा किया जाता है—द। पूछा गया कि अर्थ तो समझ गये न ? बोले : हाँ समझ गये। क्या समझे ? उत्तर मिला : 'द' यानी 'दाम्यत'—दमन करो। गुरुजी ने कहा : ठीक ! और वे चल गये। उनके बाद दानव आये असुर आये। वे भी शिक्षा पढ़े हुए थे। उन्हें भी वही अक्षर दिया गया 'द' और पूछा गया कि आप इसका क्या अर्थ समझे ? उन्होंने कहा : हम यह समझे कि आप हमें कहते हैं : दयध्वम्—दया करो। गुरुजी बोले : आप ठीक समझे, जाइये। फिर मानव आये। मानवों को भी

विदाई के समय भी एकाक्षर मंत्र दिया गया और पूछा गया कि आप इसका अर्थ क्या समझे ? उन्होंने कहा : हम यह समझे कि 'द'—दान करो। गुरुजी ने कहा : आप ठीक समझे।

तो श्रुति कहती है : 'दमम् दानम् दयामिति'—दम, दान और दया ये त्रिविध धर्म हैं, जिनसे सारे भूतमात्र का कल्याण होता है, समाज की धारणा होती है। फिर श्रुति हमें आदेश देती है कि प्रजापति ने अपने शिष्यों को यह जो 'द' रूपी मंत्र सिखाया उसकी उपासना करो। मेघ-गर्जना हमें सतत यही सिखाती है। बारिश होने के पहले मेघ गर्जना होती है तो ऋषियों ने उस गर्जना पर अपनी विशाल दृष्टि रखी और उससे संदेश पाया 'तदेतत् दव दयमानम् इति। 'द द द द द द'—मेघ ऐसे ही घोष करते हैं। इस तरह दमन, दान और दया ये तीनों चीजें सबके लिए मुफीद हैं, आवश्यक हैं, लाभदायी हैं। फिर भी देवों को उसमें से अर्थ मिला : 'दमन करो। क्योंकि देवों ने स्वयं परीक्षण कर देखा कि हम भोग-परायण हैं, भोगासक्त हैं, भोगलोलुप हैं इसलिए गुरुजी ने हमारे हित की ही बात कही होगी तो वह दमन ही होगा। इस कारण देवों ने उसमें से 'दमन' अर्थ ले लिया। दानवों ने जो बड़े निष्ठुर हृदय और क्रूरकर्मा थे अपने दोष जाने और समझ लिया कि गुरुजी ने हमारी दोष निवृत्ति के लिए ही उपदेश दिया है, इसलिए जरूर दया ही कही होगी। इस तरह उन्होंने अपने लिए 'दया' अर्थ ले लिया। और मानव तो लोभी थे ही। लोभ मानव का सबसे बड़ा वैरी है। उन्होंने समझ लिया कि गुरुजी ने हमारा यही दोष देख लिया और उसके अनुकूल कोई उपाय बताया होगा तो वह दान ही होना चाहिए। इस तरह तीनों ने अपने आत्म परीक्षण और अन्तर्निरीक्षण से स्थिति देख ली और विभिन्न अर्थ किये। सारांश सुरों या देवताओं के लिए 'दमन' की आवश्यकता ज्यादा मानी गयी क्योंकि वे भोगपरायण होते हैं।

जनक का आदर्श

ऐश्वर्य के साथ भोग स्वयं ही आता है। किन्तु राजा जनक महल में होते हुए भी अत्यन्त अलिप्त ही रहते थे। वे यही वृत्ति रखते थे कि मिथिला नगरी भस्म बने, तो भी मेरा उसमें कुछ नहीं जलता। "मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे

दहति किंचन।" प्रजा की सेवा के लिए तो दौड़ा जाऊँगा लेकिन मेरा उसमें कुछ नहीं—ऐसी निर्लिप्त वृत्ति से वे रहते थे। ऐसा जनक राजा का वर्णन है। यह आसान बात नहीं कि वैभव के अन्दर रहते हुए भी कोई इतना वैराग्यशील रहे जलकमलवत् निर्लिप्त रहे। जैसे लक्ष्मी की सतत सेवा पाते हुए भी विष्णु भगवान् अत्यन्त निर्लिप्त या परम वैराग्यशील हैं। वैसे ही या जनक महाराज के समान वैभव में वैराग्य वृत्ति से रहना कोई आसान बात नहीं है। इसलिए जो लोग नेतात्मा हैं, चुने हुए अधिकृत सेवक हैं, उनके सामने महाराज जनक का ही आदर्श होना चाहिए।

दरिद्रों के सेवक शंकर-से रहें

कुछ लोग आम जनता में सेवा करते हैं अपना विचार लोगों को समझाते रहते हैं। लोगों ने उन्हें चुना नहीं और न वे लोगों से चुने जाने की इच्छा ही रखते हैं। अपने को उन्होंने खुद ही चुना है कि मैं लोगों की सेवा करूँगा। उन्होंने अपने ऊपर खुद ही यह जिम्मेवारी डाल ली है। वे स्वाधिकृत हैं, लोगों की तरफ से अधिकृत नहीं। उनके लिए मैं यही चिन्तन करूँगा कि उन्हें शुकदेव का आदर्श रखना चाहिए। ऐसी वैराग्यशील वृत्ति से व्यवहार करना चाहिए, जैसे शुकदेव करते थे। इस तरह एक के सामने शुक का आदर्श हो तो दूसरे के सामने जनक का आदर्श।

आज हम भुवनेश्वर में हैं, तो सहज ही मिसाल सूझ सकती है कि यहाँ जो आम जनता में अनधिकृत सेवा करनेवाले सेवक हैं, उन्हें भगवान् शंकर का आदर्श अपने जीवन में रखना चाहिए। शंकर वैराग्यशील और 'महोदार' परदुःखहर हैं। कटि पर पट्टी है, तो वह भी पूरी नहीं टूटी फूटी ही। उसे इकट्ठा करके ही काम को इस्तेमाल किया जायगा। और सामने उनके पास कोई है तो बैल ही। भिक्षा के लिए कपाल ही है। ऐसे परम वैराग्य में रहनेवाले शिव का आदर्श ही उनका आदर्श होना चाहिए। जो अधिकृत सेवक हैं, उनके सामने भगवान् विष्णु का आदर्श होना चाहिए जो लक्ष्मी से सदा सेवित होते हुए भी उससे निर्लिप्त हैं। आपके समाज की यही अपेक्षा रहेगी क्योंकि समाज दरिद्र

है और आप हैं दरिद्रों के प्रतिनिधि । जितने भी यहाँ आये हैं, कुल-के-कुल दरिद्रों के प्रतिनिधि हैं, क्योंकि आज हिन्दुस्तान ही एक दरिद्र देश है । इसमें बहुत थोड़े लोग श्रीमान हैं । साधारणतया यह दरिद्रों का ही देश है । इसलिए दरिद्रों के प्रतिनिधि के तौर पर ही हमें काम करना चाहिए ।

बापू इंग्लैण्ड गये, तो उन्होंने लन्दन में उस हिस्से में, जहाँ सबसे गरीब लोग रहते थे, निवास किया । वहाँ से राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस (गोलमेज परिषद्) में जाने के लिए बहुत ज्यादा पैदल चलना पड़ता था । वैसे दूसरे नजदीक रहते थे, वैसे वे भी रह सकते थे, उसमें कुछ समय भी बचता । किन्तु उन्होंने दूरदृष्टि से सोचा और गरीब लोगों में ही जाकर रहे ।

भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ पाण्डवों के प्रतिनिधि होकर दुर्योधन के पास गये, तो दुर्योधन ने अपने मन्दिर में उनके लिए जगह रखी थी । लेकिन उन्होंने उसको स्वीकार नहीं किया और विदुर की कुटिया ही ढूँढ़ ली । इसीलिए आज तक भगवान् श्रीकृष्ण का चरित्र गाकर लोग नाचते हैं । 'गोपाल' का नाम सबमें मशहूर है । लोग समझते हैं, गोपाल तो हमारा ही है । वह हमारा काम करनेवाला, हमारे घोड़ों की सेवा करनेवाला, हमारी गायों का गोबर उठानेवाला, हमारी बहनों की सेवा करनेवाला, अपने को हर किसी काम में, लड़ाई में हाँकने वाला, कहीं भी राज्य-सत्ता का अधिकारी न बननेवाला और युधिष्ठिर के सामने सेवक के नाते खड़ा होनेवाला वह एक परम सेवक हिन्दुस्तान में हो गया । वह परम ब्रह्मज्ञानी होता हुआ भी साधारण मनुष्यों के समान ही रहता था । लोग उसकी आज तक याद करते हैं । आखिर ऐसे लोकोत्तर परम सेवक श्रीकृष्ण ने विदुर के घर रहना पसन्द किया । वहीं उन्हें अत्यन्त आनन्द और समाधान मिला । आप लोगों के सामने इसी तरह के आदर्श होने चाहिए, क्योंकि आप दरिद्रों के प्रतिनिधि हैं । भगवान् कृष्ण ने भी यही सोचा था कि हम तो वनवासी पाण्डवों के प्रतिनिधि हैं, इसलिए हमें उसी नाते रहना चाहिए ।

जनता थर्मामीटर है

हमारे लोग हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि बनकर दुनिया के अन्य देशों में जाते और रहते हैं । वहाँ वे अपनी अक्ल से कुछ बात करते होंगे । जो कुछ उनकी

राजनीतिज्ञता होगी नहीं चलाते होंगे। लेकिन लोग यही देखते हैं कि दरिद्र भारत का यह प्रतिनिधि कैसा जीवन बिता रहा है। लोग मूर्ख नहीं होते। दुनियाभर की साधारण जनता की परख बहुत अच्छी होती है। मैंने बहुत दफा मिसाल दी है कि जनता तो थर्मामीटर है। वैसे थर्मामीटर जड़ है चेतन नहीं; लेकिन ठीक उष्णता नाप लेता है। इसी तरह जनता अच्छी परख कर लेती है। यद्यपि वह जड़ है तो भी उसे परख है। हमारे जितने प्रतिनिधि जिन्होंने पार्लमेण्ट में या असेम्बली में जाते हैं, जनता उनका जीवन देखकर ही उनकी परख कर लेती है। अगर जनता ना भी करे परन्तु परमेश्वर तो उनकी परख उनके जीवन से कर ही लेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। तो पहली बात मैं आपसे यह कहना चाहता था कि आप अधिकृत सेवक हैं। अतः जिन्होंने आपको चुना है उनके हृदय के साथ आपका हृदय लगना चाहिए। उनका और आपका एक स्वर होना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमारे लिए कुछ सहूलियतें इसीलिए दी जाती हैं कि हम शान्ति से सलाह मशविरा कर सकें। इसीलिए मकान भी ऐसे होते हैं, जहाँ कुछ एकान्त रहता है ताकि हम कुछ अध्ययन भी कर सकें। और कुछ तनख्वाह भी हमें इसीलिए दी जाती है। यद्यपि साधारण सदस्यों को जो तनख्वाह मिलती है वह ज्यादा है ऐसा तो नहीं कहा जायगा। फिर भी आम जनता की तरह से कुछ अधिक भी उन्हें इसी आशा से दिया जाता है कि वे हमारे सेवक हैं। उन्हें घर की कोई चिन्ता न रहे और सेवक के तौर पर वे निश्चिन्त हो काम करें। मतलब यद्यपि साधारण जनता के ख्याल से आपका जीवन कुछ सहूलियत का होता है फिर भी आप वह सारी तपस्या खुशी और स्वेच्छा से करें जो एक गरीब अपनी झुग्गियों में लाचारी से करता है। अगर ऐसा हो तो हिन्दुस्तान बहुत उन्नत बनेगा और जो विश्वास आप लोगों पर रखा गया है उसके आप पात्र सिद्ध होंगे।

भरत-सी तपस्या करें

सहूलियत के इस जीवन में हमें निरन्तर यह ख्याल रहे कि हम जिनके प्रतिनिधि हैं। अगर हम सतत उनकी हालत का चिन्तन करें तो हमारा जीवन भरत

पैदा हो जाय। राम-चरित्र में भरत आदर्श है। रामचन्द्र ने उससे कहा, 'नहीं, यह जिम्मेवारी तुम्हें उठानी ही होगी, राज्य का संचालन करना ही होगा।' आखिर रामाज्ञा समझकर भरत ने उसे कबूल कर लिया और रामचन्द्र वनवास के लिए गये। चौदह साल तपस्या कर रामचन्द्र वापस आते और उन्हें इच्छा होती है कि प्रथम हम भरत से मिलें। वे भरत से मिलने जाते हैं। कवि लिखता है, 'दोनों भाई एक-दूसरे से मिल रहे हैं और पहचाना नहीं जाता कि दोनों में से कौन वन गया था।' अवश्य ही एक श्याम भाई है और दूसरा गोरा, इसलिए बड़ा भाई ही जंगल में गया था, यह तो मालूम होता है। फिर भी रूप आकृति देखकर यह पहचान नहीं होती कि इनमें से कौन जंगल गया था—१४ साल जंगल का सेवन किसने किया था। यह तपस्या इनमें से किसने की है, यह पहचाना नहीं जाता था। तात्पर्य, भरत अयोध्या में रहकर भी तपस्या ही कर रहा था।

भारत की अद्वितीय विचार-संपदा

यहाँ आप लोग भिन्न-भिन्न विचार के प्रतिनिधि मौजूद हैं। कोई अपने को कम्युनिस्ट कहलाता है, कोई सोशलिस्ट, कोई गांधीवादी, कोई किसी और पक्ष का तो कोई स्वतन्त्र। ये सभी हैं, लेकिन ये कितनी भी भिन्न-भिन्न विचार-पद्धतियाँ हैं—जिन्हें हम 'आइडियोलॉजी' या 'इज्म' कह सकते हैं—उनके प्रचार के लिए देश में पूरी आजादी होनी चाहिए, ऐसा भी मैं मानता हूँ। विचार प्रचार अनिर्बंध होना चाहिए। उसके लिए कोई बंधन न होना चाहिए। यद्यपि मैं मानता हूँ कि विचार-मंथन सतत ही होता रहे तो समाज के लिए अच्छा है। फिर भी मेरा स्पष्ट मत है कि जो देश पिछड़ा हुआ है और जिसे सर्वसाधारण मानव-जीवन के लिए आवश्यक चीजें भी प्राप्त नहीं हैं, वहाँ ऐश्वर्य और भोग की लालसा तो छोड़ दीजिये, साधारण मानव-जीवन बिताने के लिए जरूरी कम से कम चीजें तो चाहिए ही।

हम समझते हैं कि हमारे पूर्वजों ने बड़े-बड़े सुन्दर ग्रन्थ हमें दे रखे हैं। उनसे बेहतर विरासत दुनिया में किसी देश को हासिल नहीं। हिन्दुस्तान के लिए दावा किया जाता है कि यह एक बड़ा संपन्न देश है। यहाँ सुन्दर-सुन्दर सैकड़ों नदियाँ

वहाँ और हिमालय जैसा पहाड़ तो हमारी सेवा करता ही है। हमारा देश बड़ा ही सुफल और सुजल है। लेकिन हिंदुस्तान से भी बहुत अधिक सुजल-सुफल देश दुनिया में मौजूद हैं। इस बात में हिन्दुस्तान अद्वितीय देश नहीं है। उसका नम्बर कुछ थोड़ा नीचे ही आयेगा, बहुत ऊपर नहीं। अमेरिका में बड़ी सुन्दर जमीन पड़ी है और वहाँ ४०० सालों से काश्त हो रही है। लेकिन हिन्दुस्तान की जमीन में हजार सालों से खेती की गयी और उसकी उर्वरता कम हो गयी है। इसलिए यद्यपि यह ठीक है कि मानव-जीवन के लिए जरूरी सामग्री देने की शक्ति हिन्दुस्तान में पर्याप्त है, फिर भी हम दावे के साथ यह नहीं कह सकते कि हिन्दुस्तान ही अद्वितीय समृद्धिशाली देश हो सकता है या है।

हम यह भी आशा नहीं कर सकते कि भविष्य में हमारा भारत दुनिया में एक अद्वितीय समृद्धिशाली देश बनेगा। किन्तु यह दावा जरूर किया जा सकता है कि यहाँ जो विचार-संपदा हमें मिली है वह अत्यन्त अद्वितीय है। यह बात मैं कोई अभिमान से नहीं कह रहा हूँ। अगर मैं आज जैसा ही निष्पक्षपाती और तटस्थ होकर दूसरे किसी देश में जनमा होता तो भी हिन्दुस्तान के लिए यही कहता कि इसका विचार-वैभव निःसंशय अद्वितीय है। यह इसलिए नहीं कि यहाँ ऐसे नाटक चरित्र लिखे गये या साहित्य रचा गया है। ये तो मामूली चीजें हैं। इनमें तो दुनिया के कई देशों में बहुत तरक्की की गयी है। लेकिन दुनियावी चीज 'आध्यात्मिक विचार-संपदा' है जिसे हम 'जीवन का पाथेय' कह सकते हैं। वही हमारे लिए अद्वितीय है। पहले गाँव गाँव में परिव्राजक घूमते थे। वह भी एक जमाना था। बुद्ध भगवान् के जमाने में भिक्षु कितने घूमते थे, महावीर स्वामी के कम कितने घूमते थे, शंकराचार्य के यति कितने घूमते थे! सतत घूमते ही रहते थे। श्रुति ने भी आज्ञा दी थी कि 'चलो रे, चलो रे—"चरैवेति चरैवेति।"' उसने तो यहाँ तक कहा है कि घूमनेवाला कृतयुग में होता है, खड़ा रहनेवाला त्रेतायुग में, बैठनेवाला द्वापर युग में और सोनेवाला कलियुग में रहता है।

देश की वर्तमान दुर्दशा

किन्तु आज यह कुछ भी नहीं है। लोग इस आध्यात्मिक विचार-संपदा को नहीं

जानते, नहीं पढ़ते और न उन्हें पढ़कर सुनानेवाले ही यहाँ हैं। ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो आज हमारे देश की जनता अत्यन्त अज्ञानग्रस्त है। पर ठीक है कि उसके पास हजारों वर्षों का कुछ अनुभवी ज्ञान है। लोग उसकी बहुत ज्यादा कीमत करते और उसीके कारण यहाँ के चुनाव आदि इतने सफल हुए हैं। लोगों को बड़ी शंका थी कि इस देश में चुनाव के प्रयोग, करोड़ों लोगों से वोट हासिल करने में न मालूम क्या क्या कठिनाइयाँ आयेंगी कितने दंगे-फसाद होंगे! पर कुछ भी नहीं हुआ। यह अवसर सुनिश्चित पवित्र रह गया। इसका कारण हिन्दुस्तान के लोगों का हजारों वर्षों का अनुभव ही है। उसी अनुभव के कारण ही 'शान्त' का स्वभावशील एवं सभ्य हैं। किन्तु इस अनुभव के बावजूद यहाँ की जनता के लिए ज्ञानदान की कोई योजना नहीं है। सम्पत्ति तो गुम ही हो गयी! दो-तीन सौ सालों से संपत्ति का शोषण तो चला ही है। और शारीरिक शक्ति भी क्या है! हिन्दुस्तान के लोगों के शरीर अत्यन्त दुर्बल अस्थि-चर्म मात्र हम देख ही रहे हैं! शायद इस मामले में हम दुनिया में अद्वितीय स्थिति हों तो मालूम नहीं। आज हमारे देश की यही हालत है। हम यहाँ की जनता को ऊँचा उठाना चाहते हैं। उसका जीवन सुखी तथा सम्पन्न समृद्ध और समतायुक्त बनाना चाहते हैं।

समान कार्यक्रम चाहिए

अगर हम इन सभी 'आइडियोलॉजी' पर जोर देकर जनता में भेद ही निर्माण करते चले जायें और एक-दूसरों के दोष ही देख उन्हें समाज के सामने रखा करें, तो बहुत सोचने पर भी हमारी समझ में ही नहीं आता कि इससे किस पक्ष का क्या कल्याण होगा। आखिर हमें करना क्या है? जनता की सेवा करनी है समाज का जीवन उन्नत और समतायुक्त बनाना है। फिर अगर हम लोगों के विचार भिन्न-भिन्न हों, तो परस्पर सलाह-मशविरा करें और कभी समाज के सामने उन विचारों को रखें भी तो शान्ति से रखें। क्या जनता के उत्थान के लिए सभी दलों का कोई साधारण कार्यक्रम भी हो सकता है या नहीं? किसी एक प्रश्न पर सब पक्षों के लोग एक हो सकते हैं या

नहीं ! आज तो लोग सिर्फ 'मरने' पर एक होते हैं। किसी को मरने दो तो फौरन उसके लिए यहाँ के सभी लोग सहानुभूति अगर, जो भी उसमें थोड़ा गुण होगा उसका उच्चारण करेंगे। मरने पर उसके प्रति सभीकी सहानुभूति की गंगा फूट निकलती है। सब पचासों लोग मिलने आते और सान्त्वना देते हैं। यह तो मरने के बाद होता है। लेकिन वही जरा मरने के थोड़ा पहले हो जाय तो कितना आनन्द होगा! क्या जरूरत है कि मनुष्य मर ही जाय ताकि हम सारे एक होकर उसके प्रति सहानुभूति दिखायें। इसलिए जीवन में ही कुछ चीजें ऐसी हासिल होनी चाहिए जिनका कार्यक्रम हम बनायें और उसे अमल में लाने में सब पक्ष एक साथ काम करें। कहा जाता है कि बहुत संकट आ जायगा तब सभी एक हो जायेंगे। मतलब यह कि संकट की राह देखनी चाहिए। लेकिन क्या आज भी हिन्दुस्तान पर संकट कम है!

इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप सभी भिन्न-भिन्न पक्ष के लोग अपने ही अपने-अपने विचार रखें। असेम्बली में उन विभिन्न विचारों का मन्थन भी हो। उसीसे अच्छे प्रस्ताव और ठीक नियम होंगे। हाँ-में-हाँ मिलाने से ही कोई काम नहीं होता। फिर भी कोई एक सामाजिक सेवा काम ऐसा हो जिसमें सरकार भी अपना पूरा योग दे जनता को भी पूरी तरह से योग देने के लिए सारे पक्ष करें और उन सभी पक्षों के कार्यकर्ता खुद उसमें लग जायें। ऐसी कोई साधारण चीज 'कॉमन फैक्टर' समाज के लिए मिल जाय। अगर वह हम न निकाले तो मैं कहूँगा कि हम सारे लोग दुर्बल हैं नालायक हैं। इसलिए इस पर आप जरा सोचें।

मेरा नम्र दावा है कि भूदान का कार्यक्रम एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसके लिए जनता में बहुत ही तीव्र उत्कण्ठा है। जहाँ-जहाँ मैं गया वहाँ-वहाँ मैंने यही देखा। अवश्य ही इसके लिए थोड़े मतभेद भी देखे। पर मतभेद हर काम में होते ही हैं। फिर इतने बड़े काम में, हिन्दुस्तान के सबसे पेचीदे जमीन के इस सवाल में कुछ थोड़ा मतभेद रहे, तो कोई बड़ी बात नहीं। वे सहज ही हल हो सकते हैं। भूमिहीनों को भूमि मिलनी ही चाहिए। अगर वह अच्छे, प्रेम के तरीके से मिलती है, तो बहुत ही अच्छा है। बेशक हम नहीं समझते कि इस बारे में

चुन ही लिया है, इसलिए हमें आपकी श्रेष्ठता कबूल करनी ही होगी। फिर यद्यदाचरति श्रेष्ठः यह गीता-वचन स्पष्ट ही आपको यह आदर्श रखने की प्रेरणा देता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यहाँ जितने भी आये हैं और जो नहीं भी आये, उन सबके कानों तक मेरी यह बात पहुँचेगी।

इसमें आप किसी प्रकार का या सामाजिक भी दबाव न मानें। मेरे पास दूसरा तो कोई दबाव है ही नहीं। मेरे पास कोई सत्ता तो है ही नहीं। न मैं सत्ता चाहता हूँ और न मेरा ऐसे कामों के लिए सत्ता पर भरोसा ही है। 'कुरान' में मुहम्मद पैगम्बर ने स्पष्ट ही कहा है जिसका कि मुसलमानों के जरिये बहुत दफा भंग हो चुका — 'ला इकराह फिद्दीन'। याने धर्म में जबरदस्ती हो नहीं हो सकती। यह भी एक धर्म-विचार है और इसमें भी कभी जबरदस्ती नहीं हो सकती। इसलिए इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मैं यह भी नहीं चाहता कि सामाजिक दबाव से भी यह काम किया जाय। बल्कि आप इस चीज पर ठण्डे दिल से सोचें कि क्या आप अपना छठा हिस्सा देकर बाकी का भोग करें तो आपका जीवन बहुत ज्यादा दुःखी होगा? भौतिक दृष्टि से भी मैं नहीं मान सकता कि यह आपके लिए बहुत ज्यादा तकलीफ देनेवाला होगा। इस हिसाब से आपसे भी बहुत दुःखी लोग हिन्दुस्तान में मौजूद हैं। इसके बावजूद आपको इससे आध्यात्मिक सुख तो बहुत ज्यादा मिलेगा और हिन्दुस्तान की सेवा के लिए लोगों को बड़ा भारी उत्साह प्राप्त होगा।

नित्य-दान में सम-विभाजन

हम चाहते हैं कि भारत में 'नित्य दान' की प्रवृत्ति रूढ़ हो ही जानी चाहिए। जब हम 'दान' के साथ 'नित्य' शब्द जोड़ देते हैं, तभी उसमें से 'परोपकार' की भावना निकल जाती है। नित्य-दान का मतलब नित्य देते रहना है और उसीसे सम-विभाजन होता है जो कि शंकराचार्य ने कहा था। बुद्ध भगवान् के लिए भी कहा गया है कि 'वे सम विभाग समया करताई'। बुद्ध भगवान् के शिष्य लोगों को यही समझाते रहे कि सम-विभाजन करो। हम ऐसा ही दान करते हैं,

किसी तरह का मतभेद भ्रम भी विचारशील चिन्तनशील मनुष्यों में होगा। इसी तरह का कोई और भी दूसरा कार्यक्रम हो सकता है। ऐसा एक साधारण कार्यक्रम अपने सामने रखा जाय। सरकार की भी वह योजना है। उसके निवेदन में वह चीज आ जाय और आप तथा जनता द्वारा भी वह मान्य की जाय। सब लोग उसमें लगें यह बात होनी चाहिए।

संपत्ति-दान दीजिये

तीसरी बात मैं यह कहना चाहूँगा कि संपत्तिदान के बिना भूमिदान एकांगी हो जायगा। आरंभ केवल भूदान का हुआ यह तो उचित ही था। गंगा भी गंगोत्री से अकेली ही निकलती है। फिर इस गंगा में कहीं यमुना का भी संगमन आगमन होना ही चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा? इसलिए भूदान के साथ साथ संपत्तिदान शुरू हो जाना चाहिए। आरंभ में दोनों कार्य हमने शुरू नहीं की और उस समय वह हो भी नहीं सकता था। किन्तु समय आया है कि अब संपत्ति-दान भी बहुत जोरों से चलना चाहिए। हरएक अपनी संपत्ति का छठा हिस्सा दे, यह हमारी माँग है। लोग कम बेशी दे सकते हैं। हम कोई टैक्स इकट्ठा नहीं कर रहे हैं। अपनी शक्ति देखकर कोई कम-बेशी भी दे सकता है। परन्तु यह ऐसा न हो कि कोई एक टुकड़ा दे दिया। टुकड़े का दान न हो। अपनी सम्पत्ति का कोई अच्छा-सा हिस्सा गरीब और अमीर, सबको देते ही रहना चाहिए। हमें यह नित्य-दान का कार्य हिन्दुस्तान में खड़ा करना है। अगर इतनी संपत्ति सार्वजनिक कार्य के लिए मिल सके, तो योजना-आयोग को होनेवाली बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ न होंगी। उसका काम आसान हो जायगा। इसलिए मेरी इस छठे हिस्से की इस माँग पर भी आप जरा सोचिये।

हम यह नहीं कहते कि आपके पास बहुत ज्यादा संपत्ति है। कुछ ही लोगों के पास यह बहुत ज्यादा हो सकती है पर सबके पास तो थोड़ी-थोड़ी है ही। उस हालत में आप पर हम सर्वोदयदान की जिम्मेदारी डाल सकते हैं। क्योंकि आप जनता द्वारा चुने हुए हैं, सेवक हैं। आपका आचरण समाज के सामने सहज ही एक आदर्श हो जाता है। हम कुछ भी करें फिर भी चूँकि जनता ने आपको

चुन ही लिया है, इसलिए हमें आपकी भेंटवा कबूल करनी ही होगी। फिर यद्यदाचरति श्रेष्ठः यह गीता-वचन स्पष्ट ही आपको यह आदर्श रखने की प्रेरणा देता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यहाँ जितने भी आये हैं और जो नहीं भी आये, उन सबके कानों तक मेरी यह बात पहुँचेगी।

इसमें आप किसी प्रकार का या सामाजिक भी दबाव न मानें। मेरे पास दूसरा तो कोई दबाव है ही नहीं। मेरे पास कोई सत्ता तो है ही नहीं। न मैं सत्ता चाहता हूँ और न मेरा ऐसे कामों के लिए सत्ता पर भरोसा ही है। 'कुरान' में मुहम्मद पैगम्बर ने स्पष्ट ही कहा है जिसका कि मुसलमानों के जरिये बहुत दफा भंग हो चुका : 'ला इक्राह फिद् दीन।" याने धर्म में जबरदस्ती हो नहीं हो सकती। यह भी एक धर्म-विचार है और इसमें भी कभी जबरदस्ती नहीं हो सकती। इसलिए इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मैं यह भी नहीं चाहता कि सामाजिक दबाव से भी यह काम किया जाय। बल्कि आप इस चीज पर ठण्डे दिल से सोचें कि क्या आप अपना छठा हिस्सा देकर बाकी का भाग करें तो आपका जीवन बहुत ज्यादा दुःखी होगा? भौतिक दृष्टि से भी मैं नहीं मान सकता कि यह आपके लिए बहुत ज्यादा तकलीफ देनेवाला होगा। इस हिसाब से आपसे भी बहुत दुःखी लोग हिन्दुस्तान में मौजूद हैं। इसके बावजूद आपको इससे आध्यात्मिक सुख तो बहुत ज्यादा मिलेगा और हिन्दुस्तान की सेवा के लिए लोगों को बड़ा भारी उत्साह प्राप्त होगा।

नित्य-दान में सम-विभाजन

हम चाहते हैं कि भारत में 'नित्य दान' की प्रवृत्ति रूढ़ हो ही जानी चाहिए। जहाँ हम 'दान' के साथ 'नित्य' शब्द जोड़ देते हैं, वहीं उसमें से 'परोपकार' की भावना निकल जाती है। नित्य-दान का मतलब नित्य देते रहना है और उसीसे 'सम-विभाजन' होता है जो कि शंकराचार्य ने कहा था। बुद्ध भगवान् के लिए भी कहा गया है कि 'वे सम विभाग भगवा सवच्छई'। बुद्ध भगवान् के लिए लोगों को यही समझाते रहे कि सम विभाजन करो। हम ऐसा ही दान करने हैं

किसी तरह का मतभेद आज भी विचारशील चिन्तनशील मनुष्यों में होगा। इसी तरह का कोई और भी दूसरा कार्यक्रम हो सकता है। ऐसा एक साधारण कार्यक्रम अपने सामने रखा जाय। सरकार को भी यह सोचना है। उसके लिये जन में यह चीज आ जाय और आप तथा जनता द्वारा भी यह मान्य की जाय। सब लोग उसमें लगें यह बात होनी चाहिए।

संपत्ति-दान दीजिये

तीसरी बात मैं यह कहना चाहूँगा कि संपत्तिदान के बिना भूमिदान एकांगी हो जायगा। आरंभ केवल भूदान का हुआ यह तो उचित ही था। गंगा भी गंगोत्री से अकेली ही निकलती है। फिर इस गंगा में कहीं यमुना का भी संगमन-समागमन होना ही चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा? इसलिए भूदान के साथ-साथ संपत्ति-दान शुरू ही जाना चाहिए। आरंभ में दोनों चीजें हमने शुरू नहीं कीं और उस समय वह हो भी नहीं सकता था। किन्तु समय आया है कि अब संपत्ति-दान भी बहुत जोरों से चलना चाहिए। हरएक अपनी संपत्ति का छठा हिस्सा दे, यह हमारी माँग है। लोग कम ज्यादा दे सकते हैं। हम कोई टैक्स इकट्ठा नहीं कर रहे हैं। अपनी शक्ति देखकर कोई कम-बेशी भी दे सकता है। परन्तु वह ऐसा न हो कि कोई एक रुपया दे दिया। रुपये का दान न हो। अपनी सम्पत्ति का कोई अमुक सा हिस्सा गरीब और अमीर, सबको देते ही रहना चाहिए। हमें यह नित्य दान का अर्थ हिन्दुस्तान में स्पष्ट करना है। अगर इतनी संपत्ति सार्वजनिक कार्य के लिए मिल सके, तो योजना-आयोग को होनेवाली बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ न होंगी। उसका काम आसान हो जायगा। इसलिए मेरी छठे हिस्से की इस माँग पर भी आप जरा सोचिये।

हम यह नहीं कहते कि आपके पास बहुत ज्यादा संपत्ति है। कुछ ही लोगों के पास वह बहुत ज्यादा हो सकती है, पर सबके पास तो थोड़ी थोड़ी है ही। उस हालत में आप पर इस सम्पत्तिदान की जिम्मेदारी आ जाती है। कारण आप लोगों द्वारा चुने हुए हैं, सेवक हैं। आपका आचरण जनता के सामने खास ही एक आदर्श हो सकता है। हम कुछ भी करें, फिर भी चूँकि जनता ने आपको

सुन ही लिया है, इसलिए हमें आपकी भिक्षा कबूल करनी ही होगी। फिर 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः' यह गीता-वचन स्पष्ट ही आपको यह आदर्श रखने की प्रेरणा देता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि यहाँ जितने भी आये हैं और जो नहीं भी आये, उन सबके कानों तक मेरी यह बात पहुँचेगी।

इसमें आप किसी प्रकार का या सामाजिक भी दबाव न मानें। मेरे पास दूसरा तो कोई दबाव है ही नहीं। मेरे पास कोई सत्ता तो है ही नहीं। न मैं सत्ता चाहता हूँ और न मेरा ऐसे कामों के लिए सत्ता पर भरोसा ही है। 'कुरान' में मुहम्मद पैगम्बर ने स्पष्ट ही कहा है जिसका कि मुसलमानों के जरिये बहुत दफा भंग हो हुआ : 'ला इक्राह फिद् दीन'। याने धर्म में जबरदस्ती हो नहीं हो सकती। यह भी एक धर्म-विचार है और इसमें भी कभी जबरदस्ती नहीं हो सकती। इसलिए इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। न यह भी नहीं चाहता कि सामाजिक दबाव से भी यह काम किया जाय। बल्कि आप इस चीज पर ठण्डे दिल से सोचें कि क्या आप अपना छठा हिस्सा देकर बाकी का भोग करें तो आपका जीवन बहुत ज्यादा दुःखी होगा? भौतिक दृष्टि से भी मैं नहीं मान सकता कि यह आपके लिए बहुत ज्यादा तकलीफ देनेवाला होगा। इस हिसाब से आपसे भी बहुत दुःखी लोग हिन्दुस्तान में मौजूद हैं। इसके बावजूद आपको इससे आध्यात्मिक सुख तो बहुत ज्यादा मिलेगा और हिन्दुस्तान की सेवा के लिए लोगों को बड़ा भारी उत्साह प्राप्त होगा।

नित्य-दान में सम-विभाजन'

हम चाहते हैं कि भारत में 'नित्य दान' की प्रवृत्ति रूढ़ हो ही जानी चाहिए। जहाँ हम 'दान' के साथ 'नित्य' शब्द जोड़ देते हैं, वहीं उसमें से 'परोपकार' की भावना निकल जाती है। नित्य-दान का मतलब नित्य देते रहना है और उसीसे 'सम विभाजन' होता है जैसा कि शंकराचार्य ने कहा था। बुद्ध भगवान् के लिए भी कहा गया है कि 'स सम विभाग भगवा चक्खुमा'। बुद्ध भगवान् के शिष्य लोगों को यही समझाते रहे कि सम-विभाजन करो। हम ऐसा ही दान करते हैं,

किये भगवान् बुद्ध भी सम-विभाजन करते थे। सचमुच 'सम-विभाजन' बहुत ही सुन्दर शब्द है। बिल्कुल प्राचीनकाल से, वेदों के जमाने से और बौद्ध, जैन, शंकर आदि के काल से आज तक यह शब्द चला आया है। निरुपवान की प्राप्ति से यह सम-विभाग बन जायेगा।

आप सोचें कि आज यहाँ हम एक अच्छे स्थान पर हैं; कुछ मिली हुई आमदनी है, चाहे ज्यादा न हो। कल इस स्थान पर न रहकर कहीं दूसरे स्थान पर रहे, तो निश्चित आमदनी न रह जायगी। किन्तु हमें इसकी कोई फिकर नहीं। आपकी जो भी आमदनी हो कम या बेशी, हर साथ आपको उसीका एक हिस्सा देना है। अगर यह विचार आप मान्य कर लें तो बड़ा अच्छा होगा।

देश में कोई अनपढ़ न रहे

एक बात और! भारत की सबसे बड़ी देन उसका वाङ्मय या उसकी विद्या है। लेकिन लोग उसे पढ़ना नहीं जानते। अवश्य ही मैं यह मानता हूँ कि बिना पढ़े भी मनुष्य उन्नत हो सकता है। फिर भी पढ़ना एक बड़ा शक्तिशाली साधन है, इससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। इसलिए हमारे देश के हरएक मनुष्य को पढ़ना लिखना आना ही चाहिए। हरएक व्यक्ति अच्छी तरह ग्रन्थों को पढ़ सके। पुराने जमाने के एक राजा ने बताया था कि मेरे राज्य का क्या वैभव है! उसने कहा :

> 'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
> नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः' ॥

राजा कह रहा है कि न मे स्तेनो जनपदे यानी मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है। यहाँ पहले वाक्य में चोर न होने की बात कही वहीं दूसरे वाक्य में कहा : 'न कदर्यो' यानी कोई कंजूस नहीं है। दोनों एक दूसरे के साथ सटे हैं। जहाँ कंजूस हैं, वहाँ चोरों का होना लाजिमी है। अगर आप चोर नहीं चाहते तो कंजूस भी न होना चाहिए। इसके साथ ही 'न मद्यपः' कहकर उस राजा ने मानो आपके सारे राज्य-व्यवहार के लिए एक कार्यक्रम ही बता दिया है : (१) वहाँ चोरी न होनी चाहिए, (२) वहाँ कंजूस न होने चाहिए और (३) शराब

कोई न पिये या कोई व्यसनी न रहे। आगे वही राजा कहता है 'न अनाहिताग्निः'
मेरे राज्य में भगवान् की भक्ति न करनेवाला कोई भी नहीं है। उन दिनों
भगवान् की भक्ति अग्नि की उपासना के जरिये होती थी। इसीलिए यहाँ अग्नि का
नाम लिया गया है। मतलब यह कि परमेश्वर की उपासना न करनेवाला कोई
नहीं हरएक ईश्वर भक्त है। और फिर वह क्या कहता है : 'नाविद्वान्' अविद्वान्
कोई नहीं याने हमारे राज्य में सभी विद्वान् हैं। सामान्य पढ़ना-लिखना सभीको
आता है। सभी 'साक्षर' थे। 'साक्षर' का अर्थ यह नहीं कि उसे सिर्फ अक्षर
ही आते थे। बल्कि पूरे अक्षर और अर्थ दोनों उनके जीवन में उतरे थे।
वैसे ही हमारे राज्य में हर व्यक्ति विद्वान् होना चाहिए। राजा ने अन्त में कहा
'न स्वैरी स्वैरिणी कुतः'। अन्तिम श्लोक है। मेरे राज्य में दुराचार करनेवाला पुरुष
नहीं है। फिर वहाँ ऐसा दुराचारी पुरुष नहीं वहाँ दुराचार करनेवाली स्त्री
हो ही नहीं सकती। दुराचार की सारी जिम्मेवारी पुरुषों पर ही डाली गयी।
स्वैरी पुरुष ही नहीं तो स्वैरिणी होगी कहाँ?

इस तरह एक आदर्श राज्य उन्होंने हमारे सामने रखा। उसमें यही कल्पना
थी कि हमारे राज्य का हरएक मनुष्य विद्वान् होना चाहिए। मेरे मन में भी
हमेशा यही आता है कि इस देश का भी हरएक स्त्री पुरुष विद्वान् होना चाहिए।
और कोई वैभव हो या न हो हमें उसकी परवाह नहीं। लेकिन विद्या तो हमारे
पास होनी ही चाहिए।

विचार-प्रचार में सर्वथा निराग्रह

आपने मुझे अपने विचार आपके सामने रखने का मौका दिया इसलिए मुझे
आपका उपकार मानना चाहिए। हमारे जैसे एक विचार करनेवालों में दुनिया में
बाँधनेवाली कोई चीज नहीं है। लेकिन वे भी प्रेम में बँधे रहते हैं। उनके मन
उत्सुकता रहती है कि जो लोक-हितकारी ज्ञान स्पष्ट किया है उसे लोगों को देकर
जा मरें। जैसे जैसे वृद्धावस्था आती है मृत्यु का भान सामने होने लगता है वैसे-वैसे
वैसे यह इच्छा और भी बढ़ जाती है कि यह सारा ज्ञान एक दफा समाज का

मुकाम पर नहीं पहुँचाती। सिर्फ कहती है कि यह भुवनेश्वर, यह कटक और यह पुरी। वह रास्ता ही बतला देती है। अगर आपको पुरी जाना हो, तो पुरी जाइये और न जाना हो, तो मत जाइये। भुवनेश्वर जाना हो तो वहाँ जाइये और न जाना हो, तो वहाँ भी मत जाइये। शास्त्रकारों की वृत्ति भी इसी तरह की होती है। "शास्त्रं ज्ञापकम्, न तु कारकम्" याने शास्त्र सिर्फ ज्ञान करा देता है, स्वयं कुछ करता-कराता नहीं। तो मेरी वृत्ति भी शास्त्रों जैसी ही बनी है, क्योंकि मैं बचपन से आज तक नित्य-निरन्तर शास्त्रों का सेवक रहा हूँ। इसलिए हम समझते हैं कि उसने जो वृत्ति अपने लिए अपना रखी है, वही मेरे लिए भी पसन्द है। और सब समाज पर लादना नहीं चाहिए, इस पर मेरा दृढ़ विश्वास है। इसलिए ये जो विचार आपके सामने रखे, उन्हें आप अच्छी तरह समझकर ही ग्रहण करें, तो बहुत अच्छा होगा। और अगर वे आपको असार मालूम पड़ें, तो भी अच्छा है। हम आपको भक्तिभाव से प्रणाम करते हैं।

भुवनेश्वर
१५-१ ५५

धर्म-स्थानों को जेल मत बनने दीजिये १६

बहुत लोगों को मालूम हुआ होगा कि आज सुबह हम जगन्नाथ के दर्शन के लिए मन्दिर तक गये थे और वहाँ से हमको वापस लौटना पड़ा। हम तो बहुत भक्ति भाव से गये थे। हमारे साथ एक फ्रेंच बहन भी थी। अगर वह मन्दिर में नहीं जा सकती है, तो फिर हम भी नहीं जा सकते हैं, ऐसा हमको हमारा धर्म लगा। हमने तो हिन्दू-धर्म का बचपन से आज तक सतत अध्ययन किया है। वेद आदि से लेकर रामकृष्ण परमहंस और महात्मा गांधी तक धर्म-विचार की जो परम्परा यहाँ पर चली आयी है, उसका हमने बहुत भक्ति भावपूर्वक अध्ययन किया है। हमारा नम्र दावा है कि हिन्दू धर्म को हम जिस तरह समझे हैं, उस धर्म में उसके लिए आचरण का हमारा नम्र प्रयत्न रहा है। आज हमको लगा कि इस फ्रेंच बहन को बाहर रखकर हम अन्दर जाते, तो हमारे लिए बहुत अधर्म होता।

हमने वहाँ के अधिकारियों से पूछा कि क्या इस बहन के साथ हमको अन्दर प्रवेश मिल सकता है। जवाब मिला कि नहीं मिल सकता। तो भगवान् की जगह उन्हींको भक्ति-भाव से प्रणाम करके हम वापस लौटे।

संस्कार के प्रभाव में

जिन्होंने हमको अन्दर जाने देने से इनकार किया उनके लिए हम कौन सा शब्द इस्तेमाल करें, यही नहीं सूझ रहा है। इतना ही कहते हैं कि उनके लिए हमारे मन में किसी प्रकार का न्यून भाव नहीं है। मैं जानता हूँ कि उनको भी दुःख हुआ होगा परन्तु वे एक संस्कार के वश थे, इसलिए लाचार थे। उनको इसलिए हम ज्यादा दोष भी नहीं देते। इतना ही कहते हैं कि हमारे देश के लिए और हमारे धर्म के लिए यह बड़ी ही दुःखजनक घटना है। हमने बचपन के अध्ययन में ही जिक्र किया था कि बाबा नानक को यहाँ पर मंदिर के अन्दर जाने का मौका नहीं मिला था और बाहर ही से उन्हें लौटना पड़ा था। लेकिन वह तो पुरानी घटना हुई। चार-साढ़े चार सौ साल पहले की बात थी। हम आशा रखते थे कि अब वह बात फिर से नहीं दुहराई जायगी।

हिन्दू-धर्म को खतरा

हमारे लिए सोचने की बात है कि यह जो फ्रेंच बहन हमारे साथ आयी, वह कौन है। वह साहित्य में और प्रभु-प्रेम में दिलचस्पी रखनेवाली एक बहन है और गरीबों की सेवा के लिए जो भूदान-यज्ञ का काम चल रहा है, उसके लिए उसके मन में बहुत आदर है। इसलिए वह देखने के वास्ते हमारे साथ घूम रही है। आपको मालूम है कि महाराज युधिष्ठिर के लिए जब स्वर्ग का द्वार खुल गया था और उनके साथी को अन्दर जाने से मना किया तो वे भी अन्दर नहीं गये। यह जो बहन हमारे साथ घूम रही है, हम समझते हैं कि परमेश्वर की भक्ति उसके मन में दूसरे किसीसे कम नहीं है। हमारे भागवत-धर्म में तो यह बताया गया है कि जिसके हृदय में ईश्वर की भक्ति है वह ईश्वर का प्यारा है, चाहे वह किसी भी जाति का या किसी भी धर्म का क्यों न हो। भारतीय भी क्यों न हो और बहुत सारे दुनिया के गुण उसमें हों तो भी उसमें यदि भक्ति नहीं है,

तो उससे वह एक चांडाल भी श्रेष्ठ है जिसके हृदय में भक्ति है। भागवत धर्म और उसकी प्रतिष्ठा उड़ीसा में सर्वत्र है। उड़िया भाषा का सर्वोत्तम ग्रन्थ है जगन्नाथदास का भागवत। जगन्नाथ मंदिर के लिए भी—नानक की पुरानी बात छोड़ दीजिये—परन्तु, यह ख्याति रही कि यहाँ पर बड़ा उदार वैष्णव धर्म चलता है। आप लोगों को समझना चाहिए कि इन दिनों हर धर्म की और हर पंथ की कसौटी होने जा रही है। जो संप्रदाय और धर्म उस कसौटी पर टिकेंगे वे ही टिकेंगे, बाकी के नहीं टिक सकते। अगर हम अपने को चहारदीवारी में बन्द कर लेंगे तो हमारी उन्नति नहीं हो सकेगी और जिस उदारता का हिन्दू धर्म में विस्तार हुआ है उसकी समाप्ति हो जायगी। धर्म-विचार में उदारता होनी चाहिए। समझना चाहिए कि जो भी कोई जिज्ञासु हो उसके सामने अपना विचार रखना और प्रेम से उससे वार्तालाप करना भक्त का कर्तव्य है। जैसे दूसरे धर्मवाले यहाँ तक आगे बढ़ते हैं कि अपनी बातें जबरदस्ती दूसरों पर लादते जाते हैं वैसा तो हमको नहीं करना चाहिए। परन्तु हमारे मंदिर हमारे धर्म सब जिज्ञासुओं के लिए खुले होने चाहिए। हमारा हृदय सबके लिए खुला होना चाहिए, मुक्त होना चाहिए। अपने धर्म स्थानों को एक जेल के मानिन्द बना देना हमारे लिए बड़ा हानिकारक होगा और उनमें सद्भावना को प्रवेश करने में रियाक्शनरी रही तो मन्दिरों के लिए आज जो थोड़ी-बहुत श्रद्धा बनी हुई है वह भी खतम हो जायगी।

सनातनियों द्वारा ही धर्महानि

हमको समझना चाहिए कि आखिर धर्म का मंदिर किसके लिए है? चन्द लोगों के लिए है या दुनिया के लिए? हम आपसे कहना चाहते हैं कि हम जब वेद का अध्ययन करना चाहते थे तब ऋग्वेद का उत्तम संस्करण सायण भाष्य के साथ हमें मैक्समूलर का किया हुआ मिला। दूसरा कोई उतना अच्छा नहीं मिला। इस बात को मैं कोई तीस-बत्तीस साल पहले की कह रहा हूँ। अब तो पूना के तिलक विद्यापीठ ने सायण भाष्य के साथ ऋग्वेद का अच्छा संस्करण निकाला है। परन्तु उन दिनों तो मैक्समूलर का ही सबसे उत्तम संस्करण मिलता

था। उसमें कम-से-कम गलतियाँ, उत्तम छपाई, सस्वर शुद्ध स्वर के साथ उच्चारण था। एक जमाना था जब वेद के अध्ययन के लिए यहाँ पर कुछ प्रतिबन्ध लगाया गया था; लेकिन उन दिनों लेखन-कला नहीं थी। छापने की कला तो थी ही नहीं। उन दिनों उच्चारण ठीक रहे, पाठ भेद न हों और वेदों की रक्षा हो इस दृष्टि से वैसा किया गया होगा। उस जमाने की बात अगर कोई इस जमाने में करेगा और कहेगा कि वेदाध्ययन का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है, दूसरों को नहीं तो वह मूर्खता की हद होगी। वेदों का अच्छा अध्ययन जर्मनी में हुआ है, रूस में, फ्रांस में और इंग्लैंड में भी हुआ है। ऋग्वेद के ही नहीं बल्कि सारे वेदों के उन मंत्रों की सूची और समग्र ब्लूमफील्ड नाम के लेखक ने बहुत अच्छे ढंग से किया है। उसकी तुलना में उतना अच्छा दूसरा ग्रंथ नहीं मिलेगा। दूसरे ऐसे बीसों ग्रन्थों का हम नाम ले सकते हैं। वे सारे ग्रंथ हाथ में रखकर उनके आधार पर ऋग्वेद का अध्ययन करने में हम मदद मिलती है। अगर इन दिनों कोई पुरानी बात करता है तो उसका मतलब यह हुआ कि हम समझते ही नहीं कि जमाना क्या है। जैसे-जैसे जमाना बदलता है, वैसे-वैसे बाह्यरूप भी बदलना पड़ता है, लेकिन हमारे सनातन-धर्मी संकुचित लोगों ने सनातन-धर्म का जितना नुकसान किया है, उतना नुकसान शायद ही दूसरे किसीने इस धर्म का किया हो।

करीब सौ साल पहले की बात है। जबरदस्ती से सैकड़ों कश्मीरी लोग मुसलमान बनाये गये थे। यह काम तो जबरदस्ती की थी लेकिन उन लोगों को पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने फिर से हिन्दू धर्म में आना चाहा। उन्होंने काशी के ब्राह्मणों से पूछा तो उन्होंने उनको वापस लेने से इनकार किया और कहा कि ऐसे भ्रष्ट लोगों को हमारे धर्म में स्थान नहीं है, हम उनको नहीं ले सकते। लेकिन नोआखाली इत्यादि में जो कांड हुआ, उसमें सैकड़ों हिन्दू जबरदस्ती से मुसलमान हो गये तो उनको वापस लेने में काशी के पंडितों को शास्त्र में आधार मिल गया और वे उनको वापस लेने के लिए उत्सुक हो गये। यह बात सौ साल पहले इनको नहीं सूझी थी अब सूझ गयी है। जिसको समय पर बुद्धि आती है उसीको ज्ञानी कहते हैं। उसीसे धर्म की रक्षा होती है।

मनु का धर्म मानवमात्र के लिए

बहुत आश्चर्य की बात है कि इन दिनों हिन्दू-धर्म का शायद बहुत ही उत्तम आदर्श जिन्होंने अपने जीवन में रखा उनको महात्मा गांधीजी को सनातनी लोग धर्म विरोधी कहते हैं। हम समझते हैं कि हिन्दू धर्म का प्रचार और रक्षण जितनी गांधीजी ने की उतनी शायद ही दूसरे किसी व्यक्ति ने पिछले एक हजार साल में की होगी। लेकिन ऐसे शख्स को सनातनी हिन्दू लोग धर्म का विरोधी मानते हैं और अपने को धर्म का रक्षक मानते हैं। यह बड़ी भयानक दशा है। इन सनातनियों को समझना चाहिए कि जिस धर्म को वे प्यार करते हैं, उस धर्म को उनके ऐसे कृत्य से बड़ी हानि पहुँचती है। जब कि हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता मिली है और हिन्दुस्तान की हरएक बात की तरफ दुनिया की निगाह लगी हुई है, हिन्दुस्तान से दुनिया को आशा है, तब ऐसी घटना घटती है, तो दुनिया पर उसका क्या असर होगा, इसे आप जरा सोचिये। मनु महाराज ने आशा प्रकट की थी और मैंने कल ही उनका यह श्लोक सुनाया था

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

पृथ्वी के सब मानव इस देश के लोगों से यदि चरित्र की शिक्षा पायेंगे तो क्या इसी ढंग से पायेंगे कि वे हमारे नजदीक आना चाहेंगे तो भी हम उन्हें नजदीक नहीं आने देंगे ? जब मनु महाराज ने 'पृथिव्यां सर्वमानवाः' कहा तो उन्होंने अपने दिल की उदारता ही प्रकट की। मनु ने जो धर्म बतलाया था वह मानव धर्म कहा जाता है। वह धर्म सब मानवों के लिए है। यह ठीक है कि हम अपनी बात दूसरों पर न लादें परन्तु दूसरे हमारे नजदीक आना चाहते हों तो हम उन्हें आने भी न दें यह कैसी बात है! मैं चाहता हूँ कि इस पर हमारे यहाँ के लोग अच्छी तरह से गौर करें और सनातन-धर्म की प्रतिष्ठा किस चीज में है, इस पर विचार करें।

क्रोध नहीं दुःख

चंद दिन पहले मैं उड़िया का एक भजन पढ़ रहा था सालबेग का। उसमें कहा है कि मैं तो दीन जाति का यवन हूँ और मैं श्रीरंग की कृपा चाहता हूँ।

ऐसा भजन जिसमें है, उस भागवत धर्म के लिए क्या यह शोभा देता है कि एक स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल हृदय की बहन को मन्दिर में आने से रोक दें ? उस बहन के आने से क्या वह मन्दिर भ्रष्ट हो जायगा ? मुझे कोई क्षोभ नहीं आया जब उसका वहाँ आने से इनकार किया गया, परन्तु मुझे दुःख हुआ, अत्यन्त दुःख हुआ। आज दिनभर यह बात मेरे मन में थी। मैं नहीं समझता कि इस तरह की संकुचितता हम अपने में रखेंगे, तो हिन्दू धर्म कैसे बढ़ेगा या उसकी उन्नति कैसे होगी ?

देश को भी हानि

आप लोग जानते हैं कि वैदिक-काल में पशु-हिंसा के यज्ञ चलते थे, परन्तु भागवत धर्म ने तो उसका निषेध किया और उसे बन्द किया। बलरामावतार के 'भागवत' में भी यह बात है। बुद्ध भगवान् ने तो सीधे यज्ञ-संस्था पर ही प्रहार किया था। तब तो यह बात कुछ कटु लगी थी, परंतु उसके बाद हिन्दुओं ने उनकी बात मान ली थी और विशेषकर भागवत धर्म में उसको स्वीकार किया। इस तरह पुरानी कल्पनाओं का सतत संशोधन करते आये हैं। आज का हिन्दू धर्म और भागवत-धर्म प्राचीन वैदिक धर्म में जो कुछ गलत चीजें थीं, उनको सुधार करके बना है। वेदों में तो मुझे ऐसी कल्पना के लिए कोई आधार नहीं मिलता है। फिर भी उस जमाने में पशु-हिंसा चलती थी, यज्ञ में पशु-हिंसा की जाती थी। इस यज्ञ-संस्था पर बुद्ध भगवान् ने एक तरह से प्रहार किया। परंतु गीता ने तो उसका स्वरूप ही बदल दिया और उसे आध्यात्मिक स्वरूप दिया और आज-कल तो जप-यज्ञ, तप-यज्ञ, दान-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ आदि सब रूढ़ हो गये हैं। तो पुरानी संकुचित कल्पना को धर्म के नाम से पकड़ रखना धर्म का लक्षण नहीं है। हिन्दू धर्म का तो सतत विकास होता आ रहा है। इतना विकासक्षम धर्म दूसरा कोई नहीं होगा। जिस धर्म में तरह तरह परस्परविरोधी दर्शनों का समन्वय है, जिसने द्वैत-अद्वैत को अपने पेट में समा लिया है, जिसमें भिन्न भिन्न प्रकार के देवताओं की पूजा को स्थान दिया गया है और जिसमें किसी भी प्रकार के आचार का आग्रह नहीं है, उससे उदार धर्म दूसरा कौन-सा हो सकता है ? हिंदू-धर्म में

एक जाति में एक प्रकार का आचार है, तो दूसरी जाति में उससे भिन्न आचार है। एक प्रदेश में एक आचार है तो दूसरे प्रदेश में भिन्न आचार है। इतना निराग्रही, सर्वसमावेशक और व्यापक धर्म मिला है और फिर भी हम उसे संकुचित बना लेते हैं तो इसमें हम देश का ही नुकसान करते हैं।

मैं चाहता हूँ कि इस पर आप लोग गौर करें। यहाँ मैं परमेश्वर का उपकार मानता हूँ कि जिन विचारों पर मेरी श्रद्धा है, उन विचारों पर अमल करने की शक्ति उसने मुझे दी है। इस तरह भगवान् मुझे निरंतर सद्विचार पर आचरण करने का बल देगा, यही आशा है। मैं मानता हूँ कि आज मंदिर में जाने से इनकार करके मुझे तो एक बड़ा सौभाग्य और एक बड़ा लाभ मिला था, उसका मैंने त्याग किया। एक भक्तिमान् मनुष्य को आज मंदिर में प्रवेश करने से रोका गया है, यह बात मैं भगवान् के दरबार में निवेदन करना चाहता हूँ। आप सब लोगों को मेरे भक्ति भाव से प्रणाम।

पुरी
२१-१-५५

सच्ची धर्म-दृष्टि १७

कल हमने मंदिर प्रवेश का लाभ लेने से इनकार किया। यह घटना बहुत चिंतनीय है और उसमें जो कुछ विचार रहे हैं उनकी तरफ मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि उस घटना के विषय में क्षोभयुक्त मनोवृत्ति से कुछ सोचा जाय, बल्कि शांत वृत्ति से सोचा जाय, क्योंकि जिन्होंने हमको प्रवेश देने से इनकार किया, उनके मन में भी धर्म-दृष्टि काम कर रही है और हमने जो प्रवेश करने से इनकार किया, उसमें भी धर्म-दृष्टि काम कर रही थी। यानी दोनों बाजू से धर्म-दृष्टि का दावा किया जा सकता है। अब सोचना इतना ही है कि इस काल में और इस परिस्थिति में धर्म की दृष्टि क्या होनी चाहिए।

गुणवाद रूढ़वाद बन गया

मैं कबूल करता हूँ कि एक विशेष जमाने में यह भी हो सकता था कि उपासना के स्थान अपने-अपने लिए सीमित किये जा सकते थे। वहीं

एकान्त में ध्यान हो सकता था। जैसे, मैंने कल कहा था कि वेद-रक्षण के लिए एक जमाने में उसके पठन-पाठन पर मर्यादा लगायी थी पर इस जमाने में उसकी जरूरत नहीं है। आज वैसा करने जाओ तो वेद के अध्ययन पर ही प्रहार हो जायगा। यही न्याय सार्वजनिक उपासना के स्थानों के लिए भी लागू होता है। जैसे नदी का उद्गम गहन स्थान में, दुर्गम गुहा में होता है, वैसे ही धर्म का उदय वेद की प्रेरणा कुछ व्यक्तियों के हृदय के अन्दर से होती है। प्रारम्भकाल में कुछ विशेष मानवों को जिनको धर्म-लगन या धर्म-दृष्टि थी। उसके संशोधन के लिए विशेष एकान्त स्थान में जाना होता होगा। उन्होंने उस जमाने में यही सोचा होगा कि यह धर्म-दृष्टि ऐसे ही लोगों का समझ में आय जो समझ सकते हैं। अन्यथा गलतफहमी होगी उसे कुछ गलत समझेंगे इसलिए अच्छा होगा। परिणामस्वरूप उस अति प्राचीनकाल में, जब वैदिक-धर्म का प्रारम्भ हुआ था, लोग सोचते होंगे कि कुछ खास मंडलों के लिए ही यह उपासना हो और यह उपासना इस तरह सीमित हो। पर जैसे नदी उन दुर्गम गुहा से, उस अज्ञात स्थान से बाहर निकलती है, आगे बढ़ती है और मैदान में बहना शुरू करती है, तो वह सब लोगों के लिए सुगम हो जाती है वैसे ही हमको भी समझना चाहिए कि वैदिक-धर्म की नदी उस दुर्गम स्थान से काफी आगे बढ़ चुकी है और विशेषतः बापूजी के जमाने में वह सब लोगों के लिए काफी सुलभ सुगम हो चुकी है। इसलिए नदी के उद्गम-स्थान में, उसके प्रारम्भ में पानी की पावनता के लिए जो चिन्ता करनी पड़ती है वह चिन्ता जहाँ नदी उद्गम से दूर बहती है और समुद्र के पास पहुँचती है, वहाँ नहीं करनी पड़ती। इसलिए बीच के जमाने में जो धर्म था, हिन्दुस्तान में वह गूढ़ था। वह आखिर एकांगी हो गया। फिर गूढ़ता मिट गयी और एकांत स्थान में चिन्तन सामूहिक भजन कीर्तन को जगह दे दी गयी। प्राचीन ग्रन्थों में भी लिखा है कि सत्ययुग में एकान्त ध्यान चिन्तन करना धर्म है और कलियुग में सामूहिक भजन नाम-संकीर्तन करना धर्म है।

भक्ति-मार्ग का विकास

परिणाम इसका यह हुआ कि जहाँ तक मार्ग का सवाल है, वहाँ तक भक्ति

स्मरण आ गया। यही उत्तम भक्ति-भावना है, ऐसा भक्त मानते हैं। मगर जिस सगुण मूर्ति के सामने राम, कृष्ण जैसे खुले मन्त्र चलते होंगे उनके रहस्य को तो हम समझे नहीं और अपने को ही काटते हैं। इसलिए जगन्नाथ-मन्दिर के जो अधिकारी लोग हैं और मन्दिर की जिम्मेदारी जो अपने ऊपर मानते हैं, वे भी इस बात पर सोचें ऐसी मेरी नम्र विनती है। अगर वे इस दृष्टि से सोचेंगे तो उनके ध्यान में आयेगा कि कल हमने उस ग्रंथ पठन को छोड़कर मन्दिर में जाने से इनकार क्यों किया और फिर उनके ध्यान में आयेगा कि कल उन्होंने हमको जो रोका वह धर्म दृष्टि से ठीक नहीं हुआ। अगर वे विचार करेंगे तो उनकी समझ में आयेगा कि इन मन्दिरों की पवित्रता इसीमें है कि जो भक्तिभाव से आना चाहते हैं, उनको प्रवेश दिया जाय तभी उनका पतित-पावनत्व सार्थक होगा।

पुरी
११-३-'५५

समन्वय पर प्रहार मत होने दीजिये : १८

आप सब लोग जानते हैं कि हम सर्वोदय के विचारक कहलाते हैं और भूदान के काम में लगे हुए हैं और उसीके चिन्तन में हमारा प्रतिदिन का समय जाता है। इसलिए पूछा जायगा कि इस प्रश्न को हम क्यों इतना महत्त्व दे रहे हैं और तीन तीन व्याख्यान क्यों दे रहे हैं, तो इसका उत्तर यह है कि यह विषय सर्वोदय के लिए ही नहीं बल्कि धर्म विचार के लिए भी बहुत महत्त्व का है। इसका ठीक निर्णय हमारे मन में न हो तो केवल धर्म ही नहीं बल्कि सर्वोदय ही टूट जायगा। मान लीजिये कि हम देशाभिमान की बात करते हैं, तो यह देश प्रेम बहुत व्यापक चीज जरूर है, पर मानवता की दृष्टि से वह भी छोटी संकुचित होती है। पर जिसे हम धर्म भावना कहते हैं वह मानवता से छोटी चीज नहीं है, मानवता से बड़ी चीज है। धर्म के नाम पर जब हम मानवता से भी छोटे बन जाते हैं, तो हम धर्म को भी संकुचित करते हैं और धर्म की जो मुख्य चीज है

उसे छोड़ते हैं। धार्मिक पुरुष की धर्म-भावना में न सिर्फ मानव के लिए ही प्रेम होता है, प्रसकोच होता है, बल्कि प्राणिमात्र के लिए प्रेम होता है और प्रसकोच होता है। अपने-अपने ख्याल से और मन के सन्तोष के लिए मनुष्य अलग-अलग उपासना करते हैं। इस तरह उपासनायें अलग-अलग बन जाती हैं। उन उपासनाओं के मूल में जो भक्ति है, वह सबसे बड़ी चीज है मानवता से भी व्यापक है। लोग हमसे पूछते हैं कि क्या सर्वोदय-समाज में कोई मुसलमान नहीं रहेंगे हिंदू नहीं रहेंगे सिक्खी नहीं रहेंगे तो हम जवाब देते हैं कि ये सारे के-सारे रहेंगे और ये सब सर्वोदय के अंग हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हिंदू मुस्लिम या सिक्खी-धर्म के नाम पर जो गलत धारणायें चल पड़ी वे भी इसमें होंगी। वे तो इसमें नहीं रहेंगी बल्कि उपासना की जो भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ हैं और जो व्यापक भावना है, वह सर्वोदय में अमान्य नहीं है। लेकिन सर्वोदय में यह नहीं हो सकेगा कि एक तरह की उपासना करने का ढंग कोई दूसरे किसी उपासना के स्थान में, मंदिर में, उपासना करने के लिए जाना चाहे, तो उसे रोका जाय। चाहे वह भिन्न उपासना क्यों न करता हो उसे रोकना नहीं चाहिए, चाहे हिन्दू का मंदिर हो चाहे मुसलमान का मंदिर हो चाहे सिक्खों का मंदिर हो या दूसरे किसीका मंदिर हो। जो उपासना के लिए एक मन्दिर में जाना चाहता है वह उपासना के लिए दूसरे किसी भी मन्दिर में न जाय ऐसा नहीं कह सकते। जैसी रुचि होगी वैसे लोग जायेंगे। इस तरह से भिन्न भिन्न उपासना के मन्दिरों में लोग जायेंगे और सर्वोदय-समाज में यह किसीके लिए लाजिमी नहीं होगा कि लाख वह किसी खास मंदिर में ही जाय। एक मंदिर में जाकर प्रेम से उपासना करनेवाला दूसरे मंदिर में भी अगर जाना चाहता है, प्रेम से उस उपासना में योग देना चाहता है प्रेम से उस उपासना को जानना चाहता है, तो उसे रोकना अत्यन्त गलत चीज है।

उपासना के बंधन नहीं

आप लोगों ने रामकृष्ण परमहंस का नाम जरूर सुना होगा और आप जानते हैं कि पिछले सौ साल में जो महान् पुरुष हिन्दू धर्म में पैदा हुए, उनमें

अग्रगण्य पुरुषों में उनकी गिनती होती है। उन्होंने भिन्न-भिन्न धर्मों की उपासनाओं का अध्ययन किया था और उन उपासनाओं में जो अनुभूतियाँ आयीं, उनका चिन्तन मनन वे करते थे। मैं अपने लिए भी यह बात कहता हूँ, यद्यपि अधिक से अधिक अध्ययन मैंने हिन्दू धर्म का किया है, तो भी दूसरे सब धर्मों का भी प्रेम से, गहराई से मैंने अध्ययन किया है। उनकी विशेषताओं को देखने की कोशिश मैंने की है और उनमें जो सार है, उसको ग्रहण किया है। यह जो रामकृष्ण परमहंस ने किया था और मेरे जीवन में भी जो बना है, यह अगर हम लोगों की गलती नहीं है, तो फिर समझने की जरूरत है कि किसी मनुष्य को उपासना का अध्ययन, उसका अनुभव और लाभ लेने से रोकना गलत है। हम यह नहीं कह सकेंगे कि तुम एक दफा तय कर लो कि तुम्हें राम की उपासना करनी है या कृष्ण का नाम लेना है, इस्लाम का नाम लेना है या क्राइस्ट के पीछे जाना है, यह तय कर लो फिर दूसरे मन्दिर में मत जाओ। यह अपनी उपासना को मानवता की अपेक्षा संकुचित करना है। उपासना मानवता से छोटी चीज नहीं है। मानवता के पेट में वह नहीं समा सकती, बल्कि मानवता से वह बहुत बड़ी चीज है, कम नहीं है। इस दृष्टि से यह सवाल बहुत अहम हो जाता है, महत्त्व का हो जाता है और हम चाहते हैं कि इस पर लोग बहुत गहराई से सोचें।

अभी सभा में प्रवेश करते ही एक सिक्खी भाई ने हमको प्रेम से 'न्यू टेस्टामेंट' भेंट की। 'न्यू टेस्टामेंट' मैं कई दफा पढ़ चुका हूँ, परन्तु उन्होंने प्रेम से दी, इसलिए उसको फिर से पढ़ गया। पढ़ने का मतलब यह तो नहीं होता कि उसमें जो अच्छी चीज है, उसको ग्रहण नहीं करना है या अन्य उपासना पद्धति में जो सार है, उससे लाभ नहीं उठाना है। यह ठीक है कि जिस उपासना में हम पले, उसका परिणाम हमारे ऊपर रहता है, उसको मिटाना नहीं चाहिए। पर दूसरी उपासना से लाभ नहीं उठाना चाहिए, यह बात गलत है। उपासना को संकुचित नहीं बनाना चाहिए। उससे उसमें न्यूनता आ जाती है। कुछ लोग यह कहते हुए झगड़ा करते हैं कि हरिजनों को तो हम मन्दिर में प्रवेश देने को राजी हो गये, अब सिक्खों, मुसलमानों को क्यों आने देंगे? तो हमको समझना चाहिए कि उपासना में इस तरह की मनाही नहीं होनी चाहिए। उपासनाएँ एक-दूसरी

के लिए परिपोषक होती है। जीवन में एक ही मनुष्य बाप के नाते काम करता है भाई के नाते काम करता है, बेटे के नाते भी काम करता है। इसी तरह जिनके विविध अनुभव हैं, वे परमेश्वर को भी बाप समझकर बाप के नाते उसकी उपासना कर सकते हैं, माइ के नाते उपासना कर सकते हैं, बेटा समझकर उपासना कर सकते हैं। परमेश्वर की उपासना पिता के रूप में, माता के रूप में कर सकते हैं।

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।"

अब उसके यह नहीं कहा जा सकता कि या तो तुम परमेश्वर को पिता ही कहो या माता ही कहो या फिर बेटा ही कहो। परमेश्वर तीनों एक साथ कैसे हो सकता है—ऐसा कहें, तो जब एक सामान्य मनुष्य भी बाप, बेटा और भाई हो सकता है तो परमेश्वर वैसा क्यों नहीं हो सकता? इस तरह से परमेश्वर की अनेक तरह से उपासना हो सकती है। इसलिए समन्वय की कल्पना को सर्वोत्तम कल्पना के तौर पर सब धर्म मान्य करते हैं। इस दृष्टि से हम जब इस घटना के विषय में सोचते हैं, तो हम समझ सकेंगे कि इससे समन्वय पर ही प्रहार होता है, और जहाँ समन्वय पर प्रहार होता है, वहाँ सब तरह की उपासनाओं पर भी प्रहार होता है।

पुरी
११-३-५५

हम रोज देखते हैं कि पक्षी अपनी जीविका की खोज में आसमान में स्व-च्छन्दता घूमते रहते उड़ते हैं और आखिर थक होकर विश्राम के लिए घोंसले में वापस आ जाते हैं। वेद कहता है कि इसी तरह हमी जीव संसार में विविध कर्मों को करते हुए, अनेक प्रयोगों का सम्पादन करते हुए, कर्म-फल का भी उपभोग करते हुए थक जाते हैं और फिर कुछ शान्ति के लिए, नये उत्साह की प्राप्ति के लिए और कुछ आत्म-परीक्षण के लिए भी एक स्थान में आ जाते हैं। "यत्र विश्वं भवति एक नीडम्" एक ऐसा स्थान होता है।

महात्मा गांधीजी के प्रयाण के बाद अहिंसा के विचार को माननेवाले उस धारा में प्रचार करनेवाले पक्षियों के लिए सर्वोदय समाज एक विश्राम स्थान हो गया है। अगर ऐसा स्थान नहीं होता—सालभर में एक दफा हम लोगों के एकत्रित होने की योजना अगर न होती तो यथाशक्ति आसमान में हम प्रचार जरूर करते लेकिन यह सम्भव था कि जाने-अनजाने हमारी शक्तियाँ एक-दूसरे से टकराती और अहिंसा का नाम लेते हुए भी हम हिंसा-भाव में भी गिर जाते। इसलिए यह हमारा सौभाग्य है कि एक घोंसला हमें मिल गया। हम सालभर में एक दफा जुटते और कुछ चिन्तन करते हैं। अपना चिन्तन एक-दूसरे से सलाह-मशविरा और जैसा कि शंकररावजी ने कहा 'सत्संग' करते हैं। ऐसे स्थान पर जो कुछ बोलना पड़ता है, वो कुछ बात अपनी होती है वह बिलकुल मुक्त मन से करनी पड़ती है। उसमें कोई छिपाव या दुराव न होना चाहिए। उसमें आवेश की कोई जरूरत नहीं।

फिर भी हमारी परस्परविरोधी भी विचार-धाराएँ भी क्यों हों वे सब हम यहाँ रख सकते हैं। जिस प्रकार कोई नदी पूर्व दिशा में जाती है, तो कोई पश्चिम दिशा में, पर परस्परविरुद्ध दिशा में जाती हुई भी आखिर वे समुद्र में एकरूप होती हैं इसी तरह भिन्न-भिन्न विचार-धाराएँ और कभी-कभी परस्परविरोधी विचार

का रायें भी जो परस्पर-विरुद्ध दिशा में जाती हैं, वे सारी चर्चा में लीन हो सकती हैं और लीन होनी चाहिए। इसलिए अभी जो विचार मैं आपके सामने प्रकट करूँगा उनके लिए मेरी व्यक्तिगत कितनी भी निष्ठा हो मेरा आग्रह नहीं। विमर्श के लिए, सोचने के लिए जैसी बातें सूझती हैं जो आभास होते हैं वे हम आपके सामने रखेंगे। खैर इतना तो कार्य सर्वोदय-समाज में होना ही चाहिए। पर उसके अलावा कुछ काम की बातें जिसमें हम लगे हैं, उसके सिलसिले में भी कुछ विचार रखेंगे।

साम्यवादियों का विचार

हममें से बहुत-से लोग मानते हैं कि समाज के विकास में ऐसा एक मुकाम आ जाना चाहिए, जब कि दण्ड के आधार पर शासन चलाने की जरूरत न रहे। उस तरह का शासन दण्डाधार शासन न रहेगा। इस अन्तिम ध्येय को साम्यवादी भी मानते हैं। किन्तु उनका विश्वास है कि उस ध्येय की प्राप्ति के लिए इस समय अधिक-से अधिक मजबूत केंद्रीय सत्ता होनी चाहिए और उसके आधार पर हम दूसरी सारी अन्यायी सत्ताएँ खण्डित कर सकेंगे। उसके बाद जिस प्रकार काष्ठ को खतम कर अन्ततः अग्नि खुद भी खतम हो जाता है वैसे लोगों की तरफ से प्रकट हुई यह केन्द्रित सत्ता दूसरी वैसी ही सारी सत्ताओं को हिंसा से—अर्थात् अगर जरूरत पड़ी तो—नष्ट करेगी और फिर स्वयमेव शान्त हो जायगी। उसकी शान्ति के लिए और कुछ करना न पड़ेगा। सिर्फ यही करना पड़ेगा कि उसके खिलाफ जितनी शक्तियाँ हैं, उन उनका खातमा किया जाय। जब यह कार्य हो जायगा तब उसके लिए अवकाश न रहेगा और यह शक्ति स्वयम् शान्त हो जायगी। यह बिलकुल थोड़े में एक विचार मैंने यहाँ रखा। उसका उन लोगों ने बहुत विस्तार किया है, उसका एक खासा अच्छा शास्त्र भी बनाया है। उसका भी चिन्तन मनन हमें करना चाहिए।

क्या काँग्रेस अहिंसक रचना में बाधक है ?

इसके अलावा कुछ बीच के लोग हैं, जो मानते हैं कि शासन हर हालत में कुछ न-कुछ रहेगा। शासन याने दण्डयुक्त शासन। समाज में दण्ड की मात्र

हमेशा कायम है, क्योंकि सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण ये चलते हैं। और एक अवस्था ऐसी नहीं आती कि जब रजोगुण और तमोगुण का लोप ही हो जाय। इसलिए हर हालत में दण्ड की आवश्यकता रहेगी, भले ही वह कमजोरी हो—दण्ड का स्वरूप भी कुछ सौम्य बने, यह दूसरी बात है। किन्तु दण्ड की आवश्यकता रहेगी, यह माननेवाले भी कुछ लोग हैं। इस तरह के भिन्न-भिन्न विचार, उस अन्तिम समाज के विषय में होते हैं। परन्तु सभी लोग यह जानते हैं और समझते हैं कि आज की परिस्थिति में दण्डयुक्त मर्यादाएँ हैं और वे अभी रहेंगी। हिंसक समाज-रचना में तो आज और आगे भी दण्ड-शक्ति कायम रहेगी, उसका आधार भी उस समाज पर रहेगा पर अहिंसक समाज में आज की सूरत में दण्ड-शक्ति रहेगी, ऐसा हमें मानना पड़ता है। परिस्थिति देखते हुए दण्ड-शक्ति को एक स्थान है, यह मानना पड़ेगा। फिर भी अहिंसक समाज का यह लक्षण रहेगा कि उस समाज में सबसे बड़ी संस्था सेवा की होगी। उसमें दण्ड और सत्ता का स्थान होगा, उसके लिए अवकाश रहेगा, पर वह गौण रहेगा। सबसे बड़ा स्थान सेवा का होगा, सबसे बड़ी संस्था सेवा-संस्था होगी। इस दृष्टि से कभी-कभी हम अपने मन में सोचते हैं, तो हमें लगता है कि इस देश की अहिंसक रचना के लिए क्या सबसे अधिक बाधा देनेवाली वस्तु आज की कांग्रेस न होगी? यह संस्था देश की सबसे बड़ी संस्था है और आज की हालत में वह चुनाव-प्रधान है। याने उसका मुख्य ध्यान चुनाव पर रहता है। चुनाव के जरिये सत्ता, सत्ता के जरिये सेवा, यह उसका सिलसिला है।

तो जिस देश की सबसे बड़ी संस्था चुनाव-प्रधान हो, उस देश में अहिंसा की प्रगति के लिए एक बाधक यंत्र खड़ा हुआ, ऐसा आभास होता है। कृपा के लिए, विचार करने के लिए ये बातें मैं पेश कर रहा हूँ। मन में भी कोई अपना फैसला मैंने इस पर नहीं किया है। आप इस पर सोचिये। इसका उपाय भी वे बतला गये हैं, जो हमारे राष्ट्रपिता थे। वे द्रष्टा और उपद्रष्टा भी थे। दूर और समीप दोनों प्रकार का उन्हें दर्शन था। उन्होंने सोच रखा था कि हमारी सबसे बड़ी जमात कांग्रेस, जिसने इस देश के सिर पर का सबसे बड़ा बोझ, जो सारे देश को दबा रहा था, हटाया, यह इतना कार्य समाप्त होने पर 'लोक-सेवक-

संघ' बन जाय। हम सोचते हैं कि उनमें कितनी कुशाग्र बुद्धि थी। अगर यह चीज बनती, तो वह भी उनमें बनी संस्था 'सेवक-संस्था' होती। अब जब कि वह हालत नहीं है, तो सोचा जाता है कि सेवा के लिए एक 'भारत-सेवक-समाज' बनाया जाय। भारत-सेवक-समाज काम करेगा, लेकिन जिस परिस्थिति में सत्ता बड़ी ताकत सत्ताभिमुख है चुनाव-प्रधान है, उस परिस्थिति में भारत सेवक-समाज को बहुत ज्यादा बल नहीं मिल सकता। वह गौण ही रहेगा। सेवा करनेवाली गौण संस्थाएँ हिंसक समाज में भी होती हैं, क्योंकि चाहे समाज हिंसाभिमुख हो चाहे अहिंसाभिमुख हो जहाँ समाज का नाम लिया जाता है वहाँ सेवा की जरूरत महसूस होती है। इसलिए उस समाज में भी सेवाएँ चलती हैं, सेवा करनेवाली संस्थाएँ होती हैं। लेकिन अहिंसक समाज में उनसे बड़ी संस्था वह होनी चाहिए, जो 'सेवामय' हो। सेवा-प्रधान कहने से भी मेरा समाधान नहीं हुआ, इसलिए मैंने कहा 'सेवामय हो' ऐसा कहा।

लोक-सेवक-संघ

दूसरी बात लोक-सेवक संघ की जो कल्पना थी उसमें सत्ता पर सत्ता चलाने की बात थी। एक सत्ता रहती था ग्राम की मातस्यन्याय के मुताबिक राज्य शासन करती। उसके हाथ में दंड होता और उसके हाथ में दंड देकर बाकी का सारा समाज दंड रहित बनता। पर चूँकि वह भी दंड-सत्ता हाथ में रखनेवाली संस्था होती इसलिए उस पर भी उससे अधिक रहनेवाले समाज की सत्ता रहती। याने सेवा सार्वभौम होती और सत्ता सेविका बनती सत्ता का नियमन करने की शक्ति उस समाज में रहती। लोग उसका आशीर्वाद प्राप्त करके ही चुनाव में खड़े होते और समाज सेवा तेजस्वी सज्जनों का चुनाव करता। इस तरह सारी बात बन जाती। लेकिन कई कारणों से वह चीज नहीं हुई और कांग्रेस प्रधानतः 'इलेक्शन मशीनरिंग बॉडी' (चुनाव करनेवाली संस्था) रही। परिणाम यह हुआ कि जैसा कि मैंने विनोद में कहा था सारे समाज में भूत भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का परिवर्तन 'इलेक्शन पीरियड' 'प्रि-इलेक्शन पीरियड' और 'पोस्ट इलेक्शन-पीरियड' में होने लगा। याने कुल कालात्मा इन तीनों कालों में समाप्त हो गया।

अब जिन कारणों से यह किया गया उनकी चर्चा मैं नहीं करना चाहता। नेताओं ने जिस ढंग से सोचा उसके लिए कोई आधार ही नहीं था, ऐसा भी मैं नहीं कहता। उन्हें लगा कि जो बलशाली संस्था बन चुकी है, वह अगर चुनाव के क्षेत्र में बनी रहती है, तो शायद नवीन राज्य के लिए अधिक सुरक्षितता होगी। क्योंकि भिन्न भिन्न पक्षों को जोड़कर एक राज्य-सम्प्राप्ति के बाद फौरन उस राज्य पर कब्जा करने के लिए दूसरे भी तैयार हो सकते हैं। इतिहास में देखा गया है कि ऐसा कभी कभी होता है। इस वास्ते उसके अधिकार के लिए योग्य समझ करके उस समय वह किया गया होगा। उसका कुछ समर्थन भी किया जा सकता है। उसकी परीक्षा मैं नहीं करना चाहता। किन्तु यह एक घटना ऐसी है, जिसके कारण हमारे देश में अहिंसा के मार्ग में रुकावटें खड़ी हुई हैं, यह हमें समझ लेना चाहिए।

नयी सेवा-संस्था की जिम्मेवारी

इसीलिए हम पर एक नयी संस्था बनाने की नाहक जिम्मेवारी आती है, जो गांधीजी के बाद नहीं आनी चाहिए थी। इस देश में हम एक ऐसी संस्था बनायें, जो सेवामय और उससे बड़ी हो, बहुत कठिन समस्या है। एक संस्था जो ५०-६० साल से बन चुकी, जिसमें हम सब लोगों ने भक्ति-पूर्वक योग दिया, जिसने इतिहास में अंकित रहनेवाला एक बड़ा भारी कार्य किया, उसे नगण्य समझकर कोई आगे बढ़े, यह असंभव है। फिर भी यह जिम्मेवारी नाहक छोटे छोटे सेवकों पर डाली गयी। जिनके कन्धों में उतना जोर नहीं और जिनके दिमागों में भी शायद बहुत ज्यादा बल नहीं; और एक महान् नेता को खो करके जो कुछ अस्त-व्यस्त भी हो सकते थे, ऐसों पर एक नाहक जिम्मेवारी डाली गयी कि आप स्वतन्त्र रूप से एक संस्था बनाइये। सेवा की छोटी-छोटी संस्था तो हम बना ही सकते हैं। यह कार्य हमारे लायक है। हम छोटे हैं, तो सेवा की छोटी छोटी संस्थाएँ हम मजे में बना सकते हैं, चाहे कांग्रेस या महासभा उसके विरुद्ध क्यों न खड़ी हो। अंग्रेज सरकार के रहते हुए भी हमने सेवा की छोटी छोटी संस्थाएँ बनायीं तो यह सरकार हर हालत में हमारे लिए पोषक ही है, मददगार है। कांग्रेस भी

हर हालत मे हमारी सेना का गौरव करेंगी। इस वास्ते छोटी-छोटी सेवा-संस्थाएँ बनाना हमारे लिए कठिन नहीं था। किन्तु हम पर यह जिम्मेवारी डाली गयी कि हम लोग सेवा की संस्था न बनायें, वरन ऐसी संस्था बनायें जो सेवा भी करे और सेवा के जरिये राज्य-तंत्र पर सत्ता चलाने की शक्ति भी हासिल करे। सच मुच यह बड़ी भारी कठिन जिम्मेवारी हम पर डाली गयी। परमेश्वर सहायता करेगा तो हमें भी छोटे, निकम्मे औजारों के जरिये वह सफल बनायेगा। वह उसकी मर्जी की बात है लेकिन काम दुश्वार है।

सच्ची ताकत कहाँ ?

इस हालत मे हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न राजनैतिक संस्थाओं में हैं, उन पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे हम लोगों पर कृपा कर थोड़ी मदद दें। वे यह मदद दें कि जहाँ बैठे हैं, वहाँ सेवा किस तरह ऊपर उठे इस बारे में प्रयत्न करें। चाहे वे प्रजा-समाजवादी पक्ष में हों या कांग्रेस में या और भी किसी राजनैतिक संस्था मे हों वहाँ वे इस बात के लिए पूरी कोशिश करें कि चुनाव के बखेड़े से भी अलग रहनेवाली संस्था खड़ी हो। एक संस्था के अन्दर अनेक ग्रुप पैदा होते हैं, तो वह राजनीति मे बड़ी खतरनाक बात मानी जाती है। किन्तु मैं उन्हें यह नहीं सुझा रहा हूँ कि वे राजनैतिक क्षेत्र मे काम करनेवाली अपनी-अपनी संस्थाओं के अन्दर दूसरे-तीसरे ग्रुप बनायें। ऐसी कोई सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि इनमे से किसीकी ताकत टूटे जिसे कि वे ताकत समझते है ! जब वे ही महसूस करेंगे कि जिसको हम ताकत समझते थे, वह ताकत नहीं थी तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत मे उन्हें सच्ची ताकत हासिल होगी। लेकिन जब तक उस ताकत के बारे मे उनको भास है, तब तक उनकी ताकत किसी प्रकार से टूटे, ऐसी हम इच्छा नहीं करते। किन्तु हम यही सुझाते है कि भिन्न भिन्न संस्थाओं के हमारे भाई यह कोशिश करें कि जिसे वे अहिंसात्मक, रचनात्मक कार्य समझते हैं, वे उन संस्थाओं में प्रधान हों और दूसरी बातें गौण हो जायें।

चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय आखिर वह ऐसी चीज नहीं

परिवर्तन के बिना तो समाज आगे नहीं बढ़ेगा—यह गौण वस्तु हो जाती है। इतना समझकर हमारे जो लोग वहाँ हैं, वे इतना कार्य करें कि वहाँ बैठकर रचनात्मक काम के लिए बहुत जोर दें और अगर उन्हें यह महसूस हो कि 'नहीं वहाँ एक ऐसा मसाला है, जो हमारे सारे प्रश्न को शून्य या विफल बनाता है' तो उनको वहाँ से निकल आना चाहिए। अगर वे ऐसा करते हैं, तो हमारे जैसे कम शक्ति के लोगों को, जो बड़ा भारी जिम्मा उठाने के लिए मजबूर किये गये हैं, कुछ मदद मिलेगी।

अहिंसा की खतरनाक व्याख्या

दूसरी सोचने की बात यह है कि गांधीजी ने हर बात में अहिंसा का नाम लिया तो हम सब लोगों के सिर पर अहिंसा का बरदहस्त ही है। किन्तु हम लोगों में से कुछ लोग सरकार में गये हैं कुछ लोग बाहर हैं। इसलिए इन दिनों अक्सर अहिंसा का सरकारी अर्थ यह हुआ है कि समाज को कम-से-कम तकलीफ देना। समाज को पीड़ा पैदा न हो अभी की हमारी जो व्यवस्था है उस व्यवस्था में बहुत बाधा न पड़े इसीका नाम है अहिंसा। आज जब यह कहा जाता है कि 'समाज का 'सोशेलिस्टिक पैटर्न' (समाजवादी रचना) बनाना है' तो उसके साथ यह भी कहते हैं कि 'हमारा ढंग अहिंसा का रहेगा।" जब ये दो शब्द मैं एक साथ सुनता हूँ तो मेरे मन में दोनों मिलकर सिवा सत्याग्रह के, सिवा सर्वोदय के कोई अर्थ नहीं निकलता। परन्तु कई लोग इसका इतना ही अर्थ समझते हैं कि हमें समाजवादी रचना के लिए जो परिवर्तन करना पड़ेगा वह निहायत आहिस्ता आहिस्ता करना होगा। हाथ में कोई जख्म या फोड़ा हो तो उसे तकलीफ न हो इस तरह जैसे उस हाथ का उपयोग किया जा सकता है वैसे ही बहुत नाजुक तरीके से—समाज रचना में तकलीफ न हो बहुत ज्यादा एकदम फर्क न हो ऐसे ढंग से—काम करने को आजकल अक्सर अहिंसा समझा जाता है। याने वह एक निर पद्रवी वस्तु होती है। "न आत्मसंरंभ न विहितपरता"—ऐसी स्थिति जिसमें हम बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़ते और आज की हालत भी करीब-करीब बनी ही रहती है। साथ ही समाधान भी होता है, क्योंकि हमने एक आदर्श सामने रखा

और उसका कुछ न कुछ असर भी करते हैं, कुछ बोलते भी हैं। इसलिए जो कुछ किया जायगा, उसमें जमाना थोड़ा रुकाव डाल ही जायगा और धीरे-धीरे वह बात बनेगी। मुझे लगता है कि अहिंसा की यह व्याख्या अहिंसा के लिए बड़ी खतरनाक और हिंसा के लिए बहुत उपयोगी है। बुद्ध भगवान् ने यह बात हमें खूब समझायी। उन्होंने कहा : "मन्दं कुर्वतः पुण्यं पापे हि रमते मनः।" अगर हम सुस्त-आलसी प्रमादी होकर अहिंसा का आचरण करते हैं, तो पाप शीघ्र त्वरित गति से बढ़ता है।

अहिंसा में तीव्र संवेग जरूरी

अगर अहिंसा के माने 'कम से कम वेग से समाज को बहुत ज्यादा तकलीफ दिये बगैर आगे बढ़ते जाना' किया जाय, तो वह अब अहिंसा के हित में नहीं, हिंसा के हित में है। उससे हिंसा बहुत जोरों से बढ़ेगी। जहाँ आप सज्जनों को कहेंगे : 'धीरे चलो', वहाँ पापप्रवृत्ति जोर से बढ़ेगी। दुर्जनता जोरदार होती है। इसलिए कृपा कर अहिंसा के लिए "धीरे चलो" वाली बात लागू मत कीजिये। उसे हिंसा के लिए लागू कीजिये। वहाँ 'धीरे चलो' बात अच्छी है, पर अहिंसा में तीव्र संवेग होना चाहिए। शास्त्र-वाक्य है : "तीव्र संवेगानाम् आसन्नः।" अगर आप अच्छाई को जल्दी से जल्दी नजदीक-से-नजदीक लाना चाहते हैं, तो उसमें तीव्र संवेग होना चाहिए। अगर अहिंसा का अर्थ इतना मृदु, नरम, निर्वीर्य किया जाय, तो उससे विरोधी शक्तियाँ, हिंसक शक्तियाँ हमारे न चाहते बढ़ेंगी। इस बात का ध्यान खास गांधीजी के अनुयायियों को हो, यह हमारी भगवान् से प्रार्थना है।

राजाजी का सुझाव

राजाजी ने दो-तीन बार एक महान् विचार सारी दुनिया के सामने रखा। विचार रखने के लिए वे ही समर्थ थे, क्योंकि वे तत्त्वज्ञानी हैं और तत्त्वज्ञानी होते हुए भी राज्य-कार्य-कुशल हैं। जिस पुरुष में तत्त्वज्ञान और राज्य-कार्य-कुशलता दोनों का संयोग होता है और इसके अलावा जो शब्द-शक्ति के भी ज्ञाता हैं— शब्द का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय में भी जो प्रवीण हैं—

ऐसी त्रिविध शक्तियाँ जहाँ एकत्र होती हैं, वही शख्स ऐसा करने के लिए अधिकारी है। उन्होंने कहा कि 'यूनिलेटिरल ऐक्शन' याने एकपक्षीय सज्जनता प्रकट होनी चाहिए। सामनेवाले से यह शर्त कर कि, तू अगर इतना सज्जन बनेगा तो मैं इतना सज्जन होऊँगा कोई सज्जन बनता है तो इस तरह सज्जनता नहीं बन सकती। सज्जनता तो स्वयमेव बढ़ती है अपना ही विचार करके। इसीलिए उन्होंने अमेरिका को यह रास्ता सुझाया।

अब अमेरिका के लिए बड़ी मुश्किल हो गयी। अमेरिका की कुल जनता विद्वान् है क्योंकि हिन्दुस्तान में जितना कागज लगता है, उससे ११ गुना कागज प्रतिव्यक्ति वहाँ लगता है। तो जहाँ कुल जनता ही विद्वान् है, वहाँ के विद्वानों ने मिलिटरी कार्य में प्रवीण एक मनुष्य के हाथ में सारी सत्ता सौंप दी है और कहा है कि फारमोसा के बारे में सब कुछ करने का पूरा अधिकार हमने आपके हाथ में सौंप दिया है। आपको सत्ताधिकारी बना दिया है। अगर जरूरत हो तो आपके हाथ में जो अणुबम और हाइड्रोजनबम हैं, उनका भी उपयोग आप कर ही सकते हैं। इस तरह सारे विद्वानों का जिस पर इतना विश्वास है वह शख्स अगर राजाजी की बात माने तो लोग कहेंगे कि फिर हम इलेक्शन में राजाजी को ही क्यों न चुनें ?" बेचारे के लिए बड़ी मुसीबत की बात है। वह क्या करे ? उससे मेनडेट है, सारी जनता का कि वह उस अक्ल को चलाये, जिसका उन्हें परिचय है और जिसे देख करके ही उसे चुना गया है। अगर वह शख्स बैठ में रह कर राजाजी की अक्ल कबूल करे तो उस प्रजा का कितना विश्वासघात होगा ! वह कहेगी कि "अरे क्या तुझे यह समझकर चुना था कि तू अपना सारा दिमाग राजाजी को अर्पण कर देगा ? तुझे हमने इसीलिए चुना कि तू पिछले युद्ध में बहादुर साबित हुआ और तूने हमें बचाया। तुझे अपना मददगार समझकर हमने सारी दंड शक्ति तेरे हाथ में सौंपी और तू महामानुस ऐसे तत्त्वज्ञानी की बातें सुनता है !

सेना हटाने की शक्ति देश में कैसे आये ?

लेकिन हम अपने मन में सोचते हैं कि क्या हम दूसरे देशों को इस तरह की सलाह देने के लायक हैं ? मैंने अभी कहा कि राजाजी में त्रिविध शक्ति एकत्र

दूर है। इसलिए इस प्रकार का उद्गार प्रकट करने के लिए वे सब प्रकार से अधिकारी हैं। सारी दुनिया को वे बुद्धि दे सकते हैं और दुनिया नहीं मानती तो दुनिया का ही यह दुर्दैव है। लेकिन जिस देश के वे गिने जायेंगे क्या वह भी उन्हें इतना बल देता है? क्या हमारे देश में हमारी ऐसी भूमिका है कि पाकिस्तान की कुछ भी हालत हो वह हमारा वैरी नहीं है? क्या हम लोगों को यह लगता है कि पाकिस्तान अपनी सेना बढ़ा रहा है तो हम उसके बदले में अपनी सेना घटायें? उधर खूब अन्धकार बढ़ रहा है एक खाते से शास्त्रास्त्र से अब काम न चलेगा। इसलिए क्या यह जरूरी नहीं कि हम भार उठा जोरदार अहिंसा बनायें और इस वास्ते अपनी सेना छोड़ दें?

पाकिस्तान ने अमेरिका से जो मदद माँगी उस पर हमें यह विचार सूझा। क्योंकि जब हमारे पड़ोसी इतने भयभीत हो गये हैं तो उस हालत में सारी दुनिया को और खास करके अपने पड़ोसी को हमें निर्भय बना देना चाहिए। तो क्या हम यह प्रस्ताव करते हैं कि अभी तक तो हम सेना पर साठ करोड़ रुपये खर्च करते थे, पर अब अगले साल हम उस पर दस करोड़ ही रुपये खर्च करेंगे और पचास करोड़ रुपये उसमें से कम कर डालेंगे। क्या हम यह करने की शक्ति रखते हैं? साफ है कि नहीं रखते। आखिर यह शक्ति कब आयेगी? वह आनी भी चाहिए या नहीं? अगर आनी चाहिए, तो फिर वह शीघ्र आये। इस काम में देर नहीं चलेगी। हमारे देश को शीघ्र ही अहिंसा में अग्रसर होना होगा। इसलिए जो लोग अहिंसा की यह व्याख्या करते हैं कि धीरे धीरे वो चलेगी उसका नाम अहिंसा नहीं वह बड़ी खतरनाक है। इससे अहिंसा करीब करीब स्थिति-स्थापक बनती है 'स्टेटस को' का बचाव करनेवाली बनती है। थोड़ी-थोड़ी प्रगति तो होने ही वाली है, चाहे आप करें या न करें। यह तो विज्ञान का युग है। उसके अन्दर ही यहाँ प्रगति होती है और वही हमें प्रगति की तरफ ढकेलेगा। इसलिए अहिंसा की व्याख्या आज खतरे में पड़ी है। यह हमारे देश के लिए सोचने का विषय है।

लोकतन्त्र और सत्याग्रह

तीसरी बात यह है कि इस देश में 'सत्याग्रह' शब्द का बच्चों के डर लगता

है। यह हमारे लिए चिन्ता का विषय है क्योंकि हमने यह नया मन्त्र सीखा और हम इसे दुनिया के लिए तारक-मन्त्र मानते हैं। हम यह भी कहते हैं कि मानव के इतिहासभर में अभी तक जो अनुभव आया उसके परिणामस्वरूप सामूहिक सत्याग्रह का यह एक मन्त्र मिला। अब इससे अहिंसा बलवती होगी। लेकिन इन दिनों तो सत्याग्रह शब्द से डर लगने लगा है। लोग यहाँ तक कहते हैं कि 'डेमॉक्रेसी' में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं लोकसत्ता में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं है। पर वास्तव में सत्याग्रह के लिए तो उस सत्ता में स्थान न होगा जिसमें हर निर्णय 'यूनानिमस' या एक राय से ही हो। सबकी सम्मति से निर्णय हो ऐसी जहाँ समाज रचना होगी वहाँ स्वतंत्र सामूहिक सत्याग्रह की जरूरत न होगी। उस समाज में पुत्र के खिलाफ माँ का सत्याग्रह और माँ के खिलाफ पुत्र का सत्याग्रह हो सकता है। एक पड़ोसी के खिलाफ दूसरे पड़ोसी का सत्याग्रह होगा। यहाँ 'खिलाफ' का अर्थ हिंसा के अर्थ में 'खिलाफ' नहीं वरन वह उसका मददगार होगा। उसके शोधन के लिए प्रेमपूर्वक और त्याग से जो किया जायगा उसी अर्थ को प्रकट करने के लिए अब भी खिलाफ शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। खासकर पड़ोसी पर विशेष प्रकार से प्यार प्रकट करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह पड़ोसी के साथ होगा। किंतु जहाँ समूह का हर फैसला सबकी सम्मति से होगा उस समाज में सामूहिक सत्याग्रह के लिए गुंजाइश नहीं रहेगी, यह बात समझ में आती है। इसीलिए हम बार-बार कहते हैं कि यह "डेमॉक्रेसी" कुछ दोषमय है। इसमें अहिंसा का मादा कुछ ही हद तक आता है ज्यादा नहीं। इसलिए अपने सारे फैसले सब सम्मति से करने की तैयारी करनी चाहिए।

पर इस विषय में हमारे साथी भी हमसे कहते हैं कि भाई यह कैसी अव्यावहारिक बात बताते हो ! इससे व्यवहार कैसे चलेगा ? इस तरह यह वस्तु कुछ नयी-सी है इस वास्ते इसमें काफी सोचना पड़ेगा। अपना जीवन और दिमाग ऐसा बनाना पड़ेगा जिससे सर्व सम्मति से काम होते हुए भी वह अप्रखर हो। समाज इसी तरह सोचने लगे। कार्य-हानि न होते हुए सबके साथ कैसे काम किया जाय यह समाज सीखे यह सारा करना पड़ेगा। उसमें कुछ मुसीबतें जरूर हैं। लेकिन चूँकि इसमें मुसीबतें हैं, इसलिए

दीजिये। अंग्रेजों को यहाँ से भगाना है, तो उसके साथ चरखे का सम्बन्ध कहाँ से आने लगा समझ में नहीं आता। फिर भी लोग यह समझकर कि गांधीजी के नेतृत्व के साथ स्वराज का सम्बन्ध है और इस वास्ते इसे कबूल करो उसे कबूल करते थे। उन्हें जवाब मिलता था : 'जनता में जागृति हुए और जनता में स्वराज्य की भावना पैदा हुए बगैर काम कैसे चलेगा ? अंग्रेजों पर इसका परिणाम कैसे होगा ? क्या ऐसे ही केवल हमारे शब्दों से ! इस वास्ते हमें रचनात्मक कार्य से अपने विचार फैलाकर जन-सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। इसके कारण जन सम्पर्क के लिए हमें एक अच्छा-सा मौका मिलता है। उन्हें थोड़ी राहत मदद भी मिलती है। हमारी उनके साथ सहानुभूति है, इसका दर्शन उन्हें मिलता है और उनकी भी सहानुभूति हमें मिलती है। इस तरह हमारे राजनैतिक कार्य के पीछे एक नैतिक बल खड़ा होता है। इस तरह उन्हें लोगों को समझाना पड़ता था।

विधायक सत्याग्रह

किन्तु वह जमाना ऐसा था कि उसमें लोगों को अभावात्मक कार्य करना था। इसलिए जो सत्याग्रह उस जमाने में हुए वे सत्याग्रह के अन्तिम आदर्श थे, ऐसा हमें नहीं समझना चाहिए। हमें यह समझना होगा कि जहाँ लोक सत्ता आ गयी वहाँ अगर हम सत्याग्रह का अस्तित्व मानते हैं, तो उसका स्वरूप भी कुछ भिन्न होगा। यह नहीं कि "डेमॉक्रेसी" या लोक-सत्ता में सत्याग्रह के लिए अवकाश ही नहीं ! ऐसा मानना तो बिलकुल ही गलत विचार है। पर यह भी विचार गलत है कि उस जमाने में जो निगेटिव (अभावात्मक) प्रकार के सत्याग्रह किये गये, उनके लिए डेमॉक्रेसी में बहुत ज्यादा "स्कोप" (गुंजाइश) है और उनका परिणाम लोक सत्ता में बहुत ज्यादा प्रभावशाली होगा। लोक-सत्ता में जिस सत्याग्रह का प्रभाव पड़ेगा, वह अधिक प्रभावशाली होना चाहिए, अर्थात् अधिक विधायक होना चाहिए। इस दृष्टि से भी हमें अपने आंदोलन की तरफ देखना चाहिए कि भूदान-यज्ञ का कार्य हम जिस तरीके से कर रहे हैं, वह अहिंसा का ही एक तरीका है। परंतु अहिंसा में यही एक तरीका है सो बात नहीं। दूसरे भी तरीके हैं। इससे भी बलवान् दूसरे तरीके

हमें मिल सकते हैं और उनका हम इस्तेमाल कर सकते हैं। अगर इस तरीके का हमने पूरा उपयोग कर लिया और इसका नतीजा पूरा जान लिया तो, तो हमें सोचने का मौका मिलेगा।

भूदान में पूरी शक्ति लगायें

आज भूमिदान माँगने, लोगों को समझाने, मालिकों से जमीन लेने आदि का हमारा जो उपक्रम चल रहा है, वह सारा एक विशाल सत्याग्रह है, रचनात्मक सत्याग्रह है। परंतु इससे आगे सत्याग्रह का इससे और भी कोई बलवान् स्वरूप प्राप्त हो सकता है या नहीं, इसका संशोधन करने का मौका मिलेगा, अगर इस काम में हम पूरी शक्ति लगायें और थोड़े समय में इसका नतीजा क्या आ सकता है, यह देखें। अगर हम इसे न आजमायेंगे, इसमें पूरी ताकत न लगायेंगे, और १९५७ का साल निकल जाय तो आगे का कदम क्या उठाया जाय, इसका संशोधन करने के लिए हम पात्र ही नहीं रहेंगे। अपात्र साबित होंगे। उस हालत में उसका अर्थ होगा, हमने जो सारा काम आरंभ किया, उसे आगे बढ़ाने की क्षमता कम रहेगी। इसलिए हम सब पर यह जिम्मेवारी आती है कि इस थोड़े समय में अभी अख्तियार किये जानेवाले इस तरीके में पूरी ताकत लगाकर उससे क्या कार्य बनता है, इसका अंदाजा लिया जाय।

मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि यह बहुत ही समर्थ तरीका है। इसमें हम अगर शक्ति लगाते हैं तो हमारा कार्य निःसंशय निश्चित मुद्दत में समाप्त हो सकता है। यह मैंने बिहार में देखा और यहाँ उड़ीसा में भी देख रहा हूँ। आश्चर्य की बात है कि यह मैंने बंगाल में भी देखा। लोग कहते थे और आज भी कुछ लोग कहते हैं कि बंगाल में भूदान के लिए गुंजाइश ही नहीं है। वहाँ भूदान की जरूरत ही नहीं है। वहाँ २५ एकड़ के पार 'सीलिंग' का कानून हो चुका। उससे आगे इसकी जरूरत ही मिट गयी है। फिर बाबा क्यों नाहक घूमता है? ऐसा भी बोलनेवाले कुछ लोग वहाँ जरूर हैं और चूँकि वे जनता के केन्द्रों में हैं, इसलिए उनके पक्ष में कुछ व्यावहारिक बल है। लेकिन वहाँ तक आम जनता और कार्य-

कर्ताओं का सवाल है, हमने देखा कि वे सारे इसके लिए तैयार हैं और अगर गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझानेवाले मिल जायें तो हमारा दावा है कि यहाँ भी बिहार का सा भूदान का पूरा चित्र हमारी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो सकता है। मान लीजिये कि पूरी शक्ति लगाने पर भी यह काम न हुआ, तो हम इस लायक और ऐसे समर्थ बनेंगे कि इससे आगे का कदम क्या उठाया जाय इसका विचार कर सकेंगे। वह विचार हमें सूझेगा। लेकिन अगर हमने पूरी ताकत न लगायी और इस कारण यदि यह काम सम्पन्न न हुआ तो हम वह विचार न कर सकेंगे। विचार हमें न सूझेगा और न हम विचार करने के पात्र ही रहेंगे। या तो यह कार्य पूरी ताकत लगा करके १९५७ के पहले समाप्त होना चाहिए या फिर पूरी ताकत लगाकर १९५७ के पहले अपूर्ण ही साबित होना चाहिए। इन दो में से एक वस्तु होनी ही चाहिए। लेकिन पूरी शक्ति न लगाते हुए १९५७ तक अगर हम काम करते रहें तो हमारे हाथ में कोई निर्णायक शक्ति नहीं रहेगी। इसलिए उन भाइयों को आज यह सोचने का मौका आया है कि इस वक्त हमें अपनी बिखरी हुई ताकतें इस काम में लगानी चाहिए या नहीं?

कुछ लोगों के मन में विचार आता है और यह भी एक चिन्तनीय विचार है, कि आखिर हम यहाँ आये किसलिए? हम इसीलिए आये कि, जैसा हमने आरम्भ में ही कहा विरोधी विचार धाराएँ होने पर भी सहन करें, चर्चा करें। पुराण में कहा है कि भक्तों का यह स्वभाव है कि वे आपस आपस में कथा-प्रसंग करते हैं। तो उसी मकसद के लिए ही हम इकट्ठे हुए हैं। इस वास्ते विचार करने के लिए दूसरा भी पक्ष सामने रखना चाहिए। वह कहता है कि 'स्वराज्य के बाद हम एक एकमती बनेंगे तो न चलेगा। अगर हम स्वराज्य के पहले एकमती न बनते तो काम नहीं चलता क्योंकि उस समय हमारे सामने एक ही "गोल" (मोर्चा) रहना चाहिए था और वह यह कि परकीय सत्ता को यहाँ से हटाना। यही एक वस्तु सामने रखनी चाहिए थी। इसलिए स्वराज्य के पहले सारी शक्ति एकाग्री, ध्यान एकाग्र बनाना जरूरी था। लेकिन अब, जब कि स्वराज्य हाथ में आया है उसे चलाना और समाज का हर प्रकार से भला साधना है तो अनेक विचार होना चाहिए। अगर हम किसी एक अंग में सारी ताकत लगायें

तो यह गलत है।" किन्तु इस विचार में कोई सार नहीं है। हमारे लिए जानने की बात इतनी ही है कि ये सर्वोदय कार्य करने की जिम्मेवारी हम पर किसने डाली? जो चुनाव में लोगों के सामने खड़े भी नहीं हुए—जिन्होंने न लोगों से वोट माँगा और न जिन्हें लोगों ने वोट ही दिया—उन पर यह जिम्मेवारी किसने डाली कि वे सारे हिन्दुस्तान की समस्या का विचार करते जायें?

हम पर जिम्मेवारी कैसे?

आखिर यह जिम्मेवारी हम पर डाली किसने? वह तो उन पर डाली गयी है, जिन्होंने चुनाव में लोगों के मत प्राप्त किये और जो सत्ता चला रहे हैं। उन्हीं पर यह जिम्मेवारी है कि वे सावधान होकर सब तरह से अपना बजट तथा कार्यक्रम बनायें और भिन्न भिन्न क्षेत्रों में हलचल करते चले जायें। अगर ऐसी जिम्मेवारी उठानेवाला एक वर्ग मौजूद है और वह लोगों का विश्वस्त है तो हमें मान लेना चाहिए कि उनमें बहुत सज्जन लोग भी पड़े हैं। फिर यह जिम्मेवारी हम पर कैसे आती है?

एक भाई ने कहा कि कलकत्ते में रोजमर्रा गाय की कत्ल होती है।—मैं नहीं जानता कि इतवार के दिन "धर्मशील" की कृपा से छुट्टी रहती है या नहीं—तो शहरों को दूध 'सप्लाय' कैसे किया जाय, इसका जरा आप हमें नमूना दिखा दीजिये। हम पूछते हैं कि यह नमूना बताने की जिम्मेवारी हम पर कैसे आयी? तो हमें ही जरा बता दीजिये। क्या हम बेकार हैं, हमें कोई काम नहीं है? क्या यही काम था? अगर ऐसा ही होता, तो कोई यह भी पूछ सकता कि खादी के जरिये मसला कैसे हल हो सकता है यह जरा हमें दिखाइये। कपड़े की समस्या मिल से कैसे हल हो सकती है, इसका पूरा तरीका मौजूद है। अगर हम इस तरीके के खिलाफ बोलते हैं, तो लोग हमसे पूछ सकते कि आप दस-बीस गाँव में जरा बताइये कि किस तरह से खादी से मसला हल होगा। लेकिन अब शहरों को दूध सप्लाय करने का यह सुव्यवस्थित तरीका है कि गाय की कत्ल की जाय! एक खास गाय ने दूध दे दिया और जहाँ दूध कम हुआ, वहाँ उसे कसाईखाने में भेज दिया जाय ऐसी एक योजना है। वैसे कपड़ा सप्लाय करने की मिल की एक

योजना है, जैसे शहरों को पूरा उन्नत करने की भी यह एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक, यंत्र-युगानुकूल योजना है। अगर हम इसका विरोध करते हैं तो फिर हमसे पूछा जायगा कि आप तो ग्रामोद्योगी लोग हैं। हमें ऐसी योजना बता दीजिये कि गाव की कदर किये और कलकत्ते को पूरा कैसे उन्नत किया जाय।

अभी एकाग्रता ही जरूरी

लेकिन क्या यह भी कोई योजना है ? यह तो बिल्कुल अचिंतन है, चिंतन तो नहीं है। इस विषय में पहली आपकी बात ही चल रही है। लेकिन हमारे सामने लोग ऐसी बात रखते हैं। हममें ऐसे भोले-भाले लोग हैं—जिनको गो-सेवा का थोड़ा ज्ञान भी है—जिन्हें लगता है कि हाँ भाई, अगर यह दिखाने की जिम्मेवारी हम पर आती है अगर हम दिखायें तो अच्छा। एक भाई ने कहा कि हमने वर्धा में थोड़ा दिखा दिया है। पर वर्धा में नहीं दिल्ली में दिखाना पड़ेगा। हर बात हमें दिल्ली में दिखानी पड़ेगी। इस तरह अगर हम सोचने लगें कि स्वराज्य के ये सब विविध काम सोचने की जिम्मेवारी हम पर है तो इसका मतलब होता है कि हम सर्व-सामान्य सेवा करें। परंतु जिस मकसद से हमने यह काम उठाया है अहिंसा को हम सर्वोपरि बनायेंगे और अहिंसा का राज्य होगा—यह जो हमारी प्रतिज्ञा है, उसके काबिल वह काम न रहेगा। इसलिए हम चिंतन में व्यापक अवश्य रहें फिर भी इस समय एक कार्य में एकाग्र होने की जरूरत है। कम-से कम दो साल के लिए १९५७ के अंत तक समझ लीजिये।

मालिक के पास जायें या नौकरों के ?

इस काम में अधिक-से-अधिक ताकत लगाने की जरूरत है ऐसा हमें लगता है। इस पर भी आप लोगों को सोचना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि आज पार्लमेंट में, असेम्बली में हमारे लोग हैं। हम कुछ अच्छी बात वहाँ रख सकते हैं और अपनी आवाज सरकार में पहुँचाते हैं। यद्यपि वे यह भी कहते हैं कि वहाँ हमारी आवाज कुछ ज्यादा कर नहीं पाती। इन कुछ अल्पमत में हैं, तो कुछ बहुमत में हैं। जो बहुमत में हैं, वे चाबुक के नीचे हैं, इस जमात में 'व्हिप' चलते हैं। और जो अल्पमत में हैं, वे तो अल्प ही हैं। उनसे क्या चलेगा ?

उनके वास्ते चाबुक की भी जरूरत नहीं। उनके लिए चना भी नहीं है, सिर्फ दरबे में ही हैं। फिर भी दोनों प्रकार के लोग पार्लमेंट में जाकर बोलते तो हैं ही। किन्तु क्या सरकार इतनी बहरी बन गयी है कि बाहर सभा में कोई बात बोलेगा तो वह नहीं सुनेगी और पार्लमेंट में जाकर गिरफ्तार होकर सुनेगी? क्या वहाँ बोलेंगे, तभी आवाज सुनेंगे, नहीं तो न सुनेंगे? क्या आप यह समझते हैं कि हम एक काम करते चले जायँ, जन-समूह में पैठें, जनता की ताकत बनाते जायँ और उस हालत में हम आमसभा या और कहीं व्याख्यान दें, तो उसका जो असर होगा, उससे ज्यादा असर पी. एस. पी. या कांग्रेस में शामिल होकर पार्लमेंट में जाकर एक व्याख्यान देने से होगा? यह सोचने की जरूरत है कि अपना मत प्रकाशन करने के लिए समुचित स्थान कौनसा है? इन नौकरों के पास जाकर हम अपनी शहनाई क्या ढोवें? उनके मालिकों के पास ही क्यों न पहुँचें? हिन्दुस्तान में आज मालिक है जनता। तो सीधे हम मालिकों के पास ही जायें और अपनी बात रखें, तो उसका सीधा असर नौकर पर होगा और वह काम कर देगा।

हम वहाँ नौकरों के पास जाते हैं, तो वे कहते हैं कि 'आप कहते तो हैं, लेकिन लोकमत क्या है?' अगर उन्हें हम यह समझाने जायें कि भाई, खादी के पक्ष में मिलों को बंद करो, तो पूछते हैं, 'लोकमत क्या है? लोकमत अगर ऐसा हो तो हम कर सकते हैं पर इसके लिए लोकमत अनुकूल नहीं है।' इस तरह हर बात में वे लोकमत की दुहाई देंगे और हमारा आपका विचार अच्छा है, यह भी साथ साथ कहते जायेंगे। अगर वे कहीं हमारे विचार को गलत कहते, तो और अच्छा होता, चर्चा भी चलती। पर जब कहते हैं कि आपका विचार अच्छा है, तो बात खतम हो गयी। वहाँ हमारे विचार को अच्छा कह दिया, वहाँ हमारा मुँह तो बंद हो गया और उनका तो हाथ चलता नहीं। क्योंकि वे कहते हैं कि हमारा हाथ तो ऐसे यंत्र में फँसा है और उस यंत्र को चलाने के लिए तो जनता का हमें मैंडेट (आदेश) है। तो वहाँ पर हमारी जबान कुंठित ही है। इस वास्ते हमें यही लगता है कि हम लोकमत तैयार करने में ही लग जायें। हमारी जबान, हमारी बुद्धि, हमारी शक्ति, जो हमारे हाथ की है, सारी सीधे लोगों के पास पहुँचकर उन्हींको जाग्रत करने में लगानी चाहिए। इसलिए इस वक्त

हमारी माँग है कि इधर उधर बिखरे हुए हमारे भाई अगर कोई ऐसी कुर्सी की जगह हो जहाँ उन्हें उम्मीद हो कि वहाँ रह करके वे इस काम को बढ़ावा दे सकते हैं, तो भले ही रहें। किंतु जो दूसरे हैं, जिनका हिसाब केवल एक दो तीन चार की गिनती में है, उससे ज्यादा है नहीं उनसे हमारी प्रार्थना है कि आप सबकी बुद्धि और शक्ति वहाँ काम न आयेगी। अब अगर इधर देहात में आयेंगे तो आपका खूब जयजयकार होगा स्वागत होगा सम्मान होगा और फूल-मालायें भी आपको ज्यादा मिलेंगी। ताकत बढ़ेगा। लोगों का बहुत उत्साह बढ़ेगा। लोग राह देखते हैं कि आप लोग यहाँ आयेंगे तो कितना अच्छा होगा और वे प्यार से स्वागत करेंगे।

सात्त्विक लोग चुनाव में नहीं पड़ते

कुछ लोगों ने एक नया तरीका निकाला है यह भी सोचने लायक है। कहते हैं कि सात्त्विक लोग आज के इलेक्शनों में उतना पसन्द नहीं करते। अब जब कि सात्त्विक लोग इलेक्शन में भाग लेना पसन्द नहीं करते यह ख्याल लग गया तो उस पर से सोचने की स्फूर्ति होनी चाहिए कि इसके तरीके को हम कैसे बदलें जिससे सात्त्विक लोगों को इसमें भाग लेने की प्रेरणा हो। किंतु इस तरह वे नहीं सोचते। वे समझ तो गये हैं कि सात्त्विक लोगों को इलेक्शन में पड़ने की रुचि नहीं होती, पर उसका तरीका बदल नहीं सकते। क्योंकि पश्चिम से यह एक तरीका आया है और जब तक उसके बदले में दूसरा तरीका नहीं सूझता तब तक वह चालू रहेगा। हाँ उन्होंने एक बात सोची है। वे मुझे तो नहीं पूछते, लेकिन हमारे साथियों से पूछते हैं कि क्या आप कांग्रेस मन्त्र-समिति में आना पसंद करेंगे ? यानी हम आपको वह तकलीफ नहीं देंगे जो सात्त्विकों को सहन नहीं होती। इलेक्शन में आकर लोगों के सामने खड़े होकर चुन आने की तकलीफ से हम आपको बचाना चाहते हैं। लेकिन आप अगर आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में शामिल होना पसन्द करें तो हमारी इच्छा है कि आप वहाँ आयें और अपनी सलाह मशविरे का लाभ हमें दीजियेगा। फिर जब हम पूछते हैं कि हमें कांग्रेस-मेंबर तो बनना नहीं पड़ेगा ? आयेंगे और सलाह देंगे तो वे कहते हैं नहीं कांग्रेस मेंबर तो होना पड़ेगा उस प्रकार प्रतिज्ञा भी लेनी पड़ेगी।

यह मोह-चक्र

वे हमारे मित्र ही हैं, जो इस तरह से डरते हैं। पर हम उन्हें समझाते हैं कि इसमें आप क्या मसला रखते हैं? अगर इसमें भलाई हो तो हम कबूल करने को राजी हैं। इधर तो यह हालत होती है कि ये लोग हमेशा डरते ही रहते हैं। अगर प्रतिपक्षी दल दुर्बल होता है, तब भी डरते हैं और वह बलवान् होता है, तब तो वे डरते ही हैं। कहते तो हैं कि लोकशाही के लिए एक अच्छा सा विरोधी पक्ष भी होना चाहिए। पर वह पक्ष कमजोर हो जाय तो डरते हैं और बलवान् हो जाय तो भी डरते हैं। इस "डेमोक्रेसी" ने हमारा दिमाग इतना कमजोर बना दिया है कि वह कुछ सोच ही नहीं सकता, फेर में पड़ गया है। अगर आपको यह डर महसूस होता है, तो विरोधी पक्ष के लोग अपना दिमाग बदले बिना ही आपके पास आ जायें तो क्या वह आपके या समाज के लिए अनुकूल है, इसे जरा आप सोचें। हम समझते हैं कि यह एक ऐसा तरीका है, जिससे नागरिक लोग निडर बनेंगे। नागरिक लोगों में यह हिम्मत होनी चाहिए कि सत्पुरुष का समर्थन हम ऐसा करेंगे कि इलेक्शन पर उसका असर होगा और वह दूसरा ही रूप लेगा। या तो उनमें यह हिम्मत होनी चाहिए कि हम इस इलेक्शन को खतम ही कर देंगे और हमें उसमें जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी या फिर बड़े-बड़े चुनकर आयेंगे, उन पर हमारा असर रहेगा। इन दो में से एक की भी हिम्मत न हो और कोई हमें कृपा करके कहे कि आप आइए हरिजन कांग्रेस-असेंबली में आइये, हम आपको लेने के लिए राजी हैं; और हम भी जाना चाहें, तो हम समझते हैं हम कुछ मोह-चक्र में हैं।

कोई भी पक्ष कमजोर न बने

ये बिलकुल खुले विचार आज हम आपके सामने रखना चाहते हैं। इसके साथ यह भी कहना चाहते हैं कि हमारे विचार के लिए हम बिलकुल आग्रह नहीं रखते। पी॰ एस॰ पी॰ में हमारे मित्र हैं, कांग्रेस और रचनात्मक संस्थाओं में भी हमारे मित्र हैं। हमारी हालत इसलिए मुश्किल हो जाती है कि जो हमारी दुश्मनी करना चाहते हैं, वे भी हमारे मित्र हैं! कुल दुनिया ही मित्रों से भरी है। इस वास्ते

हमारा मामला और कठिन हो जाता है। किन्तु यह आसान भी होता है, इसलिए कि हम खुले दिल से विचार रखते हैं और हमें आग्रह तो है नहीं। इसलिए चर्चा के वास्ते एक मसाला मिल जाता है। आप इस पर भी चर्चा कीजिये कि हमारी स्थिति क्या होनी चाहिए ? हमने प्रारंभ में ही कहा है कि किसी भी राजनैतिक पक्ष का जो कि लोकशाही में विश्वास मानता हो हिंदुस्तान में जब तक अपना विचार अपना है, तब तक वह कमजोर बने इसमें देश का भला नहीं है। किन्तु अगर कांग्रेसवाले परिवर्तित हो जायँ उनके विचार उन्हें गलत मालूम पड़ें और इसी कारण उनका पक्ष टूट जाय तो उसमें देश का नुकसान नहीं है। अगर पी एस पी के लोग अपने विचार को गलत समझें और उसी कारण उनका पक्ष टूट जाय तो उसमें भी देश का नुकसान नहीं है। लेकिन ये दोनों पक्ष या डेमॉक्रेसी माननेवाले और भी कोई पक्ष अपने विचार मानते गये और कमजोर पड़ें, इसमें देश का हित है, ऐसा हम नहीं समझते। वे बलवान् बने रहें इसीमें उनका हित है ऐसा हमारा मानना है। तो किसीको इस अर्थ में हम कमजोर नहीं बनाना चाहते।

विनोबा के कांग्रेसी बनने में किसीका भला नहीं

लेकिन हम यह पूछना चाहते हैं कि हम कमजोर पड़ें इसमें भी क्या किसीका हित है ? मान लीजिये कि कल विनोबा राजी हो जाय और कहे कि ठीक है, मैं कांग्रेस मैन बनता हूँ। कांग्रेस-मैन बनने में बहुत ज्यादा खोने का तो कुछ नहीं है। उसमें इतना ही समझा जाता है कि अपना जो कुछ विश्वास है उसे एक हद तक वहाँ चलाया है एक हद तक नहीं। जिस हद तक नहीं है उसकी उपेक्षा कर दे उतना ही ठीक' समझकर मनुष्य वहाँ जा सकता है। हम जानते हैं कि कांग्रेस में भी सज्जनों की संगति मिल सकती है। जैसा कि शंकराचार्य ने कहा क्षण एक सत्संग है, वैसे वहाँ भी बहुत सज्जन लोग हैं और वे वहाँ रहते हैं, तो वहाँ भी सत्संगति का लाभ मिल सकता है। वास्तव में, प्रजा-समाज पार्टियों में बहुत-से ऐसे सज्जन हैं। उनमें कुछ अंश ऐसा है जो हमें मंजूर है और कुछ ऐसा भी है जो हमें मंजूर नहीं। जो अंश हमें नामंजूर है उसकी

उपेक्षा कर और कितना मंजूर है, उसी तरह ध्यान देकर व्यावहारिक बुद्धि से मान लीजिये, हम कांग्रेस मेंबर बन जायें तो इसमें कांग्रेस का भला है क्या, यह सोचने की बात है। हम समझते हैं कि इसमें कांग्रेस का भला न होगा। कांग्रेस की बात अलग रखिये, इसमें देश का भी भला नहीं, किसीका भी भला नहीं ऐसा हम समझते हैं। भिन्न-भिन्न विचार के लोग अपने-अपने विचार में कमजोर पड़ें इसमें किसीका भला नहीं यह समझ लेना चाहिए। यह मुख्य वस्तु ध्यान में रख करके हम सोचें।

तो हमारे जो लोग भिन्न भिन्न पक्षों में बंटे और भिन्न-भिन्न स्थानों में हैं, उन्हें समझना चाहिए कि अब मौका आया है, जब कि हम इस काम में भाग लेना चाहिए। क्योंकि उधर रहते हुए अगर ऐसी सेवा होती है, जिससे इस काम को खूब बढ़ावा मिलता है, तब तो उस स्थान में भले ही वे रहें। तब उनके विचार में कहीं बाधा नहीं आती। परंतु उन्हें अगर यह महसूस हो कि वहाँ जो सेवा प्राप्त होती है वो इतनी सार्थक नहीं है, जितनी इसमें आने से होगी तो हमारी उनके सामने माँग है कि इसमें आप आ जाइये और हमें बल मदद दीजिये। हम मिलकर जोर लगायेंगे और सन् '५७ तक पूरा प्रयत्न करके रहेंगे।

सुवर्णजयंति की माँग

मुझे जो कहना था वह कह दिया। एक ही बात अब जोड़ूँगा और वह एक छोटी-सी चीज है। हर साल बार बार हम उसे दुहराते हैं। इस साल भी उसे दुहराना चाहते हैं। गांधीजी ने मीराबाई का एक भजन कहा था "मारे वालमजी मने हरिए रे कांची लेम तांतरे लेम रहिये रे।" एक कच्चा धागा है, उस कच्चे धागे में मुझे बाँधा है और वह इतना मजबूत है कि उसके बल से भगवान् मुझे खींचता है, उस पर मैं खिंच जाती हूँ ऐसा मीराबाई कहती हैं। गांधीजी ने कहा था कि देश के सामने एक ऐसी उपासना चाहिए कि देश के लिए कच्चा कच्चा धागे कि हम कुछ तो करते हैं। छोटा बच्चा भी कहे कि देश के वास्ते मैंने कुछ किया और फिर मान्य किया ऐसी कोई राष्ट्रीय उपासना चाहिए। धार्मिक पवित्र उपासनाएँ तो होती हैं, जो भेद पैदा करती हैं। पर सारे राष्ट्र में अभेद

पैदा करनेवाली एक उपासना होनी चाहिए। इसका विचार कर उन्होंने कातने की उपासना हमें बतायी। यह इतनी आसान चीज है कि किशोरलालभाई जैसा मनुष्य भी जो रोज सुबह समझता था कि शाम तक शायद मर जाऊँगा और ऐसी हालत में जिसके बीसों-पचीसों साल बीते कुछ न कुछ पैदावार करता गया, उत्पादन करता गया। मेरा खयाल है कि अपने कपड़े के लिए वे काफी सूत कातते होंगे। तो ऐसे कमजोर, बीमार मनुष्य भी उत्पादक बने ऐसा एक सुन्दर औजार उन्होंने हमारे सामने रखा और कहा कि यही राष्ट्रीय उपासना चले।

हमने भी गांधीजी की स्मृति में—यह एक निमित्त है—६४ तार की एक गुंडी एक सम्पत्ति हरएक से माँगी। अब इसका प्रचार आप सब लोग क्यों न करें क्या इस पर सोचिये। पार्लमेंट के इतने मेम्बर हैं वे हमें एक-एक गुंडी क्यों नहीं देते ? अगर यह बात है कि वे इसे मानते ही नहीं शरीर-परिश्रम का तिरस्कार ही करते हैं इस विचार को गलत समझते हैं तो फिर वे न दें। किन्तु अगर इस विचार को वे गलत नहीं समझते तो कुछ मर्जी से क्यों न हमें एक एक सम्पत्ति मिले ? और सारे देश में हम ऐसा वातावरण क्यों न फैला दें ? छोटी-सी बात है यह पर बहुत शक्तिशाली ऐसा हमें लगता है। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि आप सब लोग इस बात को उठायें। भिन्न-भिन्न पक्षों में कितने हमारे लोग हैं, सब अपने-अपने पक्षवालों को समझायें कि वे इस बात को क्यों नहीं उठाते ? इसमें क्या गलती या दोष है ? अगर सारे पक्षवाले एक-एक गुण्डी गांधीजी की स्मृति में सबको दिया करें तो देश में एक भावना पैदा होगी, जिससे बड़ा लाभ मिलेगा।

तुकाराम का एक वचन है। परमेश्वर को संबोधित करके वह कहता है "तेरे नाम की महिमा तू नहीं जानता, हम जानते हैं।" वैसे ही साहित्यिकों की महिमा साहित्यिक नहीं जानते। जो अपने लिए अभिमान रखनेवाले साहित्यिक होते हैं, वे साहित्य का भी अभिमान तो रखते होंगे, परंतु उनकी महिमा नहीं जानते। वे यदि साहित्य की महिमा जानते होते तो अभिमान न रखते। साहित्य की महिमा निराली है। मुझे साहित्य की महिमा का भान इसलिए है कि मैं साहित्यिक नहीं हूँ। साहित्यिक न होनेभर से उसकी महिमा का भान होता है ऐसी बात नहीं। एक अवसर होता है। किसीको हासिल होता है किसीको नहीं हासिल होता। मुझे वह अवसर हासिल हुआ—अनेक भाषाओं के साहित्य का आस्वादन करने का। हरएक भाषा का जो निचोड़ साहित्य है, वही मेरे पढ़ने में आया है। उसका असर भी मुझ पर बहुत हुआ है। इसलिए पैनीपुरीजी ने विहार में जो बात कही—जहाँ मैं जाऊँ वहाँ के साहित्यिकों को बुलाने की—वह मुझे सहज ही हृदयंगम हुई।

साहित्य यानी अहिंसा

मैं अपने मन में जब साहित्य की व्याख्या करने जाता हूँ और व्याख्या करने का मुझे शौक भी है तब उसकी व्याख्या करता हूँ : "साहित्य यानी अहिंसा।" अब यह सुनकर लोग कहेंगे कि यह तो रसकी है, हर जगह अहिंसा लाता है। परन्तु साहित्यकारों ने भी उसकी व्याख्या की है कि सर्वोत्तम साहित्य 'सूचक' होता है। "सूचक साहित्य" को सर्वोत्तम क्यों माना जाता है? इसलिए कि वह सुनने-वालों पर आक्रमण नहीं करता। किसी पर अगर उपदेश का प्रहार होने लगे, तो यद्यपि वह उपदेश हितकर हो फिर भी उसका स्पर्श शीतल नहीं होता। बचपन में हम ईसप की नीति कथाएँ पढ़ते थे तो उनका तात्पर्य नीचे लिखा हुआ होता

था। तात्पर्य यानी न पढ़ने का कारण, ऐसा हम समझते थे। कथा का तात्पर्य अगर चन्द शब्दों में लिखा था तो मैं समझूँगा कि कथा लिखनेवाले में कोई कला नहीं है। अभी जैनीपुरीजी ने कहा कि 'भूदान-यज्ञ शब्द' किसके साहित्य में कितनी दफा आया इस पर वे लोग हिसाब लगाते हैं कि यह साहित्य भूदान यज्ञ का सहायक है या नहीं ? इसके साहित्य में पचास बार 'भूदान' शब्द आया उनके साहित्य में पाँच सौ बार आया ऐसी सूची बनाते हैं और गिनती करते हैं।

साहित्य-बोध का अर्थ

उत्तम कृति का लक्षण यही है कि जैसे रामचन्द्र को देखने पर अनेक लोगों ने अनेक कल्पनाएँ अपनी अपनी भावना के अनुसार कीं वैसे ही जिस बोध से अनेकविध तात्पर्य निकलते हैं, वही साहित्य-बोध है। कानून की किताब में इससे बिल्कुल उल्टी बात होती है। एक वाक्य में से एक ही अर्थ निकलना चाहिए, दूसरा नहीं निकलना चाहिए। अगर एक वाक्य से दो अर्थ निकले तो वकीलों की कमाई बढ़ जाती है। पर साहित्य की प्रकृति इससे बिल्कुल उल्टी होती है। गीता उत्तम साहित्य है, रामायण उत्तम साहित्य है क्योंकि उनके तात्पर्य के विषय में मतभेद है। जिस साहित्य के तात्पर्य के विषय में मतभेद न हो और तात्पर्य निश्चित कहा जा सके, उसमें साहित्य-शक्ति कम प्रकट होती है।

प्रसिद्ध ऋषि वाक्य है 'परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः'। देव परोक्ष प्रिय होते हैं। उन्हें परोक्षवाणी पसन्द आती है प्रत्यक्षवाणी पसन्द नहीं आती। इसका मर्म भी यही है कि प्रत्यक्ष उपदेश में कुछ चुभने का भाव होता है। वाल्मीकि की रामायण जब हम पढ़ते हैं, तो उसमें बहुत ज्यादा उपदेश के वचन नहीं आते कथा-गंगा बहती जाती है, मनुष्य उसके साथ-साथ बहता जाता है। अनेक मनुष्यों को अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं और एक ही मनुष्य को समया-नुसार अनेकविध तात्पर्य हासिल होते हैं। साहित्य की विशेषता इस विविधता में है। इसलिए जब हम साहित्यिकों से कुछ अपेक्षा रखते हैं, तो इसका मतलब यह नहीं कि वे अपनी विशेषताओं को छोड़कर हमारा काम करें। उनकी विशेषता यही है कि साहित्य से विविध बोध मिलते हैं।

वाल्मीकि की प्रेरणा

ईश्वर के प्रेम के बारे में भक्तजन कहते हैं कि वह प्रेम अहेतुक होता है, उसमें हेतु नहीं होता। प्रेम करना ईश्वर का स्वभाव है। वैसे ही साहित्य में भी कोई हेतु नहीं होता। साहित्य एक स्वयंभू वस्तु है। लेकिन हेतु रखने से वह नहीं बन सकता, वह साहित्य में बिना हेतु प्रकट होता है, यह साहित्य की खूबी है। गीता भी मुझे इसीलिए प्यारी है कि वह हेतु न रखना सिखाती है। वह एक ऐसा ग्रन्थ है, जो यहाँ तक कहने का साहस करता है कि निष्काम काम करो। निष्काम कर्म की प्रेरणा देनेवाला ऐसा दूसरा ग्रंथ दुनिया में मैंने नहीं देखा। साथ-ही-साथ वह (गीता) बताती है कि जिसने फल की आशा छोड़ी उसे अनंत फल हासिल होता है। वाल्मीकि-रामायण के आरंभ की ऐसी ही कहानी है। 'शोकः श्लोकत्वमागतः'। क्रौंचमिथुनादेकमवधीः—क्रौंच-मिथुन का वियोग वाल्मीकि का सहन नहीं हुआ, शोक हुआ और उसकी वाणी में सहज ही श्लोक निकल पड़ा। *उसे मालूम भी नहीं था कि उसका शोक श्लोकाकार बना।* बाद में नारद ने आकर कहा कि तेरे मुँह से यह श्लोक निकला है। इसी अनुष्टुप् छंद में रामायण गाओ। फिर सारी रामायण अनुष्टुप् छंद में गायी गयी। सहानुभूति की प्रेरणा से काव्य पैदा हुआ और शोक का श्लोक बना।

श्रम और शम का संयोग

मैंने साहित्य की जो व्याख्या की, उसमें भी यही विशेषता है। साहित्य में ऐसी शक्ति है कि उससे श्रम का शम बन जाता है। बिना श्रम के कोई भी महत्त्व की चीज नहीं बनती लेकिन साहित्य में श्रम को शम का रूप आता है। दूसरी चीजों में मनुष्य को आराम की भी आवश्यकता होती है। वहाँ श्रम और आराम परस्पर विरोधी होते हैं। मनुष्य श्रम से थकता है तो उसके बाद आराम लेता है और आराम से थकता है—आराम की भी थकान होती है—तो उसके बाद फिर श्रम करने लगता है। लेकिन साहित्य की यह खूबी है कि उसमें श्रम के साथ-साथ शम चलता है। चौबीसों घंटे काम और चौबीसों घंटे आराम यह है साहित्य की खूबी। साहित्य का कोई बोझ नहीं होता चित्त पर।

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा

साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा उसका सर्वोत्तम संकेत मुझे आकाश में दीखता है। आकाश-दर्शन की किसीको कभी थकान नहीं होती। पूरा आसमान निरंतर आपकी आँख के सामने होता है, फिर भी आँख थक गयी ऐसा कभी मालूम नहीं होता। आकाश के समान व्यापक, अविरोधी और अति स्नेहका होता है साहित्य। फिर भी ठोस क्या हुआ। यह भी आकाश का ही वर्णन है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ आकाश न हो। जहाँ कोई ठोस वस्तु नहीं है, वहाँ भी आकाश है और जहाँ ठोस वस्तु है वहाँ भी आकाश है। ठोस वस्तु नापने का वही मापक है। ट्रेन में जब हम बैठने जाते हैं, तो भीतर के पैसेंजर कहते हैं, यहाँ जगह नहीं है। इसका मतलब यह होता है कि यहाँ जगह तो है परंतु व्याप्त है। आकाश ऐसी व्यापक वस्तु है। जहाँ कोई चीज नहीं है, वहाँ भी वह है और जहाँ कोई चीज है, वहाँ भी वह है। साहित्य का स्वरूप भी आकाश के जैसा ही व्यापक है। इसलिए आकाश ही साहित्य की सर्वोत्तम संज्ञा है।

साहित्य सेवन की थकान नहीं आनी चाहिए। हम सुन्दर मधुर संगीत सुनते हैं तो 'बस बस!' नहीं कहते। जहाँ 'बस बस' आ गया वहाँ समझना चाहिए कि वह चीज मनुष्य को थकान देनेवाली है। साहित्य के लिए भी जहाँ 'बस बस' आ गया वहाँ समझना चाहिए कि साहित्य की शक्ति कम है यह पूरी प्रकट नहीं हुई है।

बहुत-से लोगों को खुशबू बहुत अच्छी मालूम होती है और वह बहुत तल्लीन रहते हैं। परन्तु मुझे खुशबू की भी तकलीफ होती है। कोई बू हो अगर न रहे तो चित्त प्रसन्न रहता है। यह बात कहता तो विचित्र-सी लगेगी परन्तु जिस बगीचे में बहुत सारे सुगन्धी पुष्प होते हैं, वहाँ पर कुछ क्लोरोफार्म जैसा असर होता है वह उन असर से जाना है मन पर आता है। मन को दिमाग को थकान आती है। खुशबू के परमाणु नाक के अन्दर प्रवेश करते हैं। उस असर को दबा देता है वह मन के साथ जुड़ा हुआ होता है। वहाँ पर वे फैल जाते हैं तो उनके हृदय से चिन्तन में एक प्रकार की मन्दता आ

होती है, पर दुनिया में जो विविधता है उससे भी ज्यादा स्वप्न में है। सृष्टि में जो है वह सब स्वप्न में है और सृष्टि में जो नहीं है वह भी स्वप्न में है। स्वप्न में पर में आसक्ति होती है। कवि की सारी सृष्टि स्वप्नमय होती है। इसका चिन्तन सूक्ष्म, अनन्त और अस्पष्ट होता है।

अरबस्तान की भाषा में कवि याने मूर्ख। कुरान में भी हजरत पैगम्बर ऐसा बोले हैं, 'मैं कवि थोड़ा ही हूँ!' मेरी समझ में नहीं आता था कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा होगा। फिर एक समय उनका एक वचन मिला कि 'मैं कवि थोड़ा ही हूँ जो बोले एक और करे एक!' कहा जाता है कि कुरान में बहुत काव्य है। अरबी साहित्य में उसे साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना जाता है। यह कोई केवल साम्प्रदायिक गौरव की बात नहीं है। कुरान धार्मिक पुस्तक है इसलिए ऐसा कहा होगा सो बात नहीं। आधुनिक अरबी साहित्य को कुरान से नयी स्फूर्ति मिलती है। इतना होने पर भी उन्होंने कहा कि 'मैं कवि थोड़ा ही हूँ जो बोले एक और करे एक! इसका एक मतलब यह कि मैं जो बोलूँगा वह करूँगा इसलिए मैं कवि नहीं हूँ। इसे उपहास मानने के बजाय हमने अधिक सुन्दर अर्थ निकाला है। उसका अर्थ यह कि 'आप लोगों के सामने मैं एक स्पष्ट चिन्तन रखनेवाला हूँ जिससे कि आपको हिदायत मिले।

कवि का चिन्तन तो हमेशा अस्पष्ट होता है। उसके काव्य की गहराई का पता पूरा नहीं चलता। उस पर परस्पर विरोधी भाष्य किये जा सकते हैं। अगर किसी कवि ने अपनी कविता पर कोई भाष्य किया तो मैं उस पर बिलकुल भिन्न भाष्य लिख सकता हूँ और सम्भव है कि लोग मेरा भाष्य कबूल करें और शायद वह खुद भी कबूल करे! कवि को जो सूझता है, वह उसके स्पष्ट चिन्तन के बाहर की चीज है। कोई चीज उसे प्राप्त होती है। वह कुछ ज्यादा नहीं कुछ रचना नहीं करता। अचानक ही उसको चीज मिल जाती है, उसकी मर्जी मिल जाती है। कवि को क्रान्तदर्शी कहा है 'कविः क्रान्तदर्शी'। कवि दूर की देखता है, ऐसा कुछ लोग उसका अर्थ लगाते हैं। हाँ यह भी हो सकता है। परन्तु उसका एक अर्थ यह भी है कि कवि बहुत ही अस्पष्ट देखता है। जो वस्तु है, उसे तो हर कोई देखता है, पशु भी देखता है। पशु का

मतलब यही है कि जो ठगता है, वह पशु है। पश्यति इति पशुः जो देखता है बिना देखे जिसे भरोसा नहीं होता है, जिसन से कोई बात नहीं मानता है, कहता है, सबूत दिखाओ। ऐसे सबूत से ही माननेवाले पशु होते हैं। यह पशुत्व है। कवि में पशुत्व नहीं होता। इसलिए उसकी वाणी में विशिष्ट स्फुरण होता है।

अभी बेनीपुरीजी ने बताया कि हम भूदान-यज्ञ में मदद करना चाहते हैं। कोई साहित्यिक वास्तव में मदद करेगा तो मालूम ही नहीं होगा। अगर फलाने उपन्यास में विनोबा को मदद की गयी है, ऐसा मालूम हो गया तो वह फेल्युअर है असफल है। जिसमें पता ही न लगे वही उत्तम मदद है। जैसे ईश्वर की स्थिति है। वह मदद देता है, तो उसका भान ही नहीं होता। वह बिना हाथ के देगा, बिना आँख के देखेगा, बिना कान के सुनेगा, बिना लेखनी के लिखेगा। सर्वोत्तम कवि वह हो सकता है, जिसने कुछ भी न लिखा हो! जिसने कुछ नहीं लिखा हो वह कवि ही नहीं है। महाकवि वह हो सकता है, जिसके हृदय में इतना काव्य भर गया है कि वह प्रकट ही नहीं कर सकता।

साहित्य प्रकाशित नहीं होता है

इसका अर्थ यह नहीं कि जिसने कुछ भी नहीं लिखा वह कवि होता है। एक महाकवि ऐसा हो सकता है, जिसकी काव्यशक्ति बहुत गाढ़ी होने के कारण प्रकाश में नहीं आ सकती, वाणी में और प्रकाशन में नहीं आ सकती। जब हम इस दृष्टि से सोचते हैं, तो लगता है कि साहित्य का एक लक्षण यह है कि साहित्य प्रकाशित नहीं हो सकता। आजकल तो हर कोई साहित्य को प्रकाशित करने की बात सोचता है, परंतु वह प्रकाशन की बात नहीं है। साहित्य हमेशा अप्रकाशित होता है।

सहचिंतन कीजिए

इन दिनों तो साहित्यिकों को इनाम भी दिया जाता है। हमको भी इनाम मिला है। हमको याने हमारे प्रकाशक को। इन दिनों किसके सिर पर इनाम आकर गिरेगा कुछ भरोसा नहीं। इसलिए जब कभी हम साहित्यिकों की मदद के लिए अपील करते हैं, उनके पास पहुँचते हैं तो हम इतना ही चाहते हैं कि

जाती है। अगर निर्गन्ध अगर हो तो उसकी ओर ध्यान नहीं जाती। रंग का भी यही हाल है। कुछ रंग कुछ लोगों को प्रिय होते हैं, लेकिन वे हमेशा आपके सामने हों तो भी ध्यान जाती है। मगर आसमान के रंग की कभी थकान नहीं आती। इसलिए प्रभु को नीलवर्ण कहा जाता है। आसमान के नीलरूप की कभी थकान नहीं आती।

अनुकूल ही परिणाम

साहित्य की एक व्याख्या यह है कि उसका हमेशा अनुकूल ही परिणाम होता है। पर यह तो तब बन सकता है, जब प्रतिक्षण नया अर्थ देने की क्षमता उसमें हो। जिसको दूध प्रिय है, उसे गाय प्रिय होती है, पर जिसे दूध ही नहीं प्रिय नहीं होती। जिसे दूध प्रिय नहीं उसे दूध देनेवाली गाय भी प्रिय नहीं होती। लेकिन ऐसी कोई कामधेनु हो जो हर चीज देती हो तो वह सबको सदा-सर्वदा प्रिय होती है। साहित्य ऐसी कामधेनु है। उसमें से अपनी इच्छा के अनुसार कुछ कुछ मिल जाता है।

'द' का मेरा-अपना अर्थ !

उपनिषद् में 'द' की कहानी आती है। एक ही 'द' अक्षर का दम, दान और दया, ऐसा तीन तरह का अर्थ किया है। देव मनुष्य और असुर, तीनों ने अपनी भूमिका के अनुसार बोध लिया। फिर मैंने सोचा 'द' का मैं क्या अर्थ लूं ? यद्यपि मैं हिन्दी में बोल रहा हूँ फिर भी मेरा मन मराठी है, इसलिए मैं मराठी में सोचता हूँ। तो मैंने सोचा कि किन्या के लिए 'द' का अर्थ क्या हो सकता है ? असुरों के लिए उसका अर्थ दया होता है, देवों के लिए दमन होता है तो किन्या के लिए 'द' याने 'दगड' ! दगड से मतलब है, पत्थर ! अब यह अर्थ न देवों को मालूम था न असुरों को मालूम था न उपनिषद्कारों को ही। यह शुद्ध मराठी अर्थ है—'द' याने दगड। मैं दगड पत्थर के समान बन जाऊँ। कोई पत्थर प्रहार करे, तो भी दुर्ब नहीं। वह मूर्ति भी बन सकता है और ठोकर भी दे सकता है। इतना सारा 'द' का अर्थ मुझे मालूम था और जब वह अर्थ मुझे सूझा तो मुझे बड़ी मदद हुई।

स्वल्पाक्षर साहित्यिक

उत्तम साहित्यिक शब्द-स्वल्पाक्षर होते हैं। बहुत पानी डालकर फैलाये हुए नहीं होते। स्वल्पाक्षर होते हैं, याने थोड़े में अधिक सूचकता होती है और उनमें अनाक्रमणशीलता होती है, जिससे सहज ही बोध मिले। अपेक्षित बोध लेना चाहे, तो ले सकता है और न लेना चाहे, तो नहीं भी ले सकता है। हर वक्त बोध लेना पड़े तो मुश्किल होगी। इसलिए जब बोध लेना चाहे तभी ले सकता है। समयानुकूल बोध मिले और बोध न भी मिले, तो भी जो प्रिय हो वही अच्छा साहित्य है।

काव्य की व्याख्या

एक दफा मैं बहुत बीमार था। कभी-कभी रामजी का नाम लेता था, कभी माँ का। अब मेरी माँ तो उस समय जिन्दा नहीं थी। मैं मन में सोचने लगा कि उस माँ का मुझे क्या उपयोग है, जो जिन्दा नहीं है और मुझे कितनी भी तकलीफ क्यों न हो उसे मिटाने के लिए नहीं आ सकती। फिर भी मैंने उस शब्द का उपयोग किया। माँ के मरने पर भी 'माँ' शब्द के उच्चारण से उसके पुत्र को बीमारी में प्रसन्नता होती है और उस शब्द से ही उसे अपना अभीष्ट प्राप्त हो जाता है। वह ऐसा शब्द है, जिसमें काव्य की सीमा होती है।

ऐसे शब्द हमारे देश में, हमारी भाषाओं में बहुत हैं। इसलिए यहाँ लोग अनिच्छा से भी कवि बनते हैं। वे शब्द ही ऐसे होते हैं, जो अनेकविध प्रेरणा देते हैं। इसलिए मनुष्य चाहे या न चाहे, वह कवि बन जाता है। मेरा ख्याल है कि भारतीय भाषाओं में जितनी काव्य-शक्ति है, उसकी तुलना में दुनिया की दूसरी भाषाओं में कम है। हाँ अरबी और लैटिन में है। संस्कृत में वह सामर्थ्य बहुत ज्यादा है, क्योंकि वह भाषा काफी प्राचीनकाल में निर्माण हुई है। इसलिए मनुष्य आज जिस तरह स्पष्ट रूप में सोचता है, वैसा उस समय नहीं सोचता था। अस्पष्ट रूप में सोचता था। जहाँ मनुष्य अस्पष्ट रूप में सोचता है, वहाँ बहुत ज्यादा सोचता है। जहाँ स्पष्ट सोचता है, वहाँ निश्चितता आ जाती है और व्यापकता कम हो जाती है, जैसे स्वप्न में स्पष्टता नहीं होती। परन्तु स्वप्न में जो विविधता

मतलब यही है कि जो देखता है, वह पशु है। पश्यति इति पशुः — जो देखता है बिना देखे जिसे भरोसा नहीं होता है, चिंतन से कोई बात नहीं मानता है, कहता है, सबूत दिखाओ। ऐसे सबूत से ही माननेवाले पशु होते हैं। यह पशुत्व है। कवि में पशुत्व नहीं होता। इसलिए उसकी वाणी में विविध दर्शन होता है।

अभी बेनीपुरीजी ने बताया कि हम भूदान-यज्ञ में मदद करना चाहते हैं। कोई साहित्यिक वास्तव में मदद करेगा तो मालूम ही नहीं होगा। अगर फलाने उपन्यास में विनोबा की मदद की गयी है ऐसा मालूम हो गया तो वह [illegible] है असफल है। जिसमें पता ही न लगे वही उत्तम मदद है। जैसे ईश्वर की स्थिति है। वह मदद देता है, तो उसका भान ही नहीं होता। वह बिना हाथ के देगा, बिना आँख के देखेगा, बिना कान के सुनेगा, बिना लेखनी के लिखेगा। सर्वोत्तम कवि वह हो सकता है जिसने कुछ भी न लिखा हो। जिसने कुछ लिखा हो वह कवि ही नहीं है। महाकवि वह हो सकता है जिसके हृदय में इतना काव्य भर गया है कि वह प्रकट ही नहीं कर सकता।

साहित्य प्रकाशित नहीं होता है

इसका अर्थ यह नहीं कि जिसने कुछ भी नहीं लिखा वह कवि होता है। एक महाकवि ऐसा हो सकता है, जिसकी काव्यशक्ति बहुत गहरी होने के कारण प्रकाश में नहीं आ सकती, वाणी में और प्रकाशन में नहीं आ सकती। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं, तो लगता है कि साहित्य का एक लक्षण यह है कि साहित्य प्रकाशित नहीं हो सकता। आजकल तो हर कोई साहित्य को प्रकाशित करने की बात सोचता है, परंतु यह प्रकाशन की बात नहीं है। साहित्य हमेशा अप्रकाशित होता है।

सहचिंतन कीजिये

इन दिनों तो साहित्यिकों को इनाम भी दिया जाता है। हमको भी इनाम मिला है। हमको याने हमारे प्रचारक को! इन दिनों किसके सिर पर इनाम आकर गिरेगा कुछ भरोसा नहीं। इसलिए जब कभी हम साहित्यिकों की मदद के लिए अपील करते हैं, उनके पास पहुँचते हैं, तो हम इतना ही चाहते हैं कि

आप हमारे साथ सहचिंतन कीजिए। हम जैसा चिंतन करते हैं, उसमें आप शरीक हो जाइये, यही हमारी माँग है। मानव के लिए यह बात सहज है उसका यह स्वभाव है।

हम आम गाते हैं, तो पास बैठे हुए मनुष्य को दिये बगैर नहीं खा सकते। इतना ही नहीं, पड़ोसी को बुलाकर खिलाते हैं। जो दूसरे को बिना बुलाये खायेगा वह रसिक नहीं है। जो अपने रस में दूसरे को शरीक करता है, वही 'रसिक' है। इसलिए जब हम साहित्यिकों को बुलाते हैं, तो हम कहते हैं कि हम जो रस लेते हैं, वह हम अकेले ही लेते जायें, यह अच्छा नहीं। आप रसिक हैं, इसलिए आप भी शरीक हो जाइये। शरीक होने पर आप चाहे कुछ लिखिये या न लिखिये हमें बहुत मदद होगी।

मेरी तो मान्यता है कि जिन्होंने उत्तम काव्य लिखे, वे उतने उत्तम कवि नहीं थे जितने कि वे हैं, जिन्होंने कुछ नहीं लिखा। जो महापुरुष दुनिया को मालूम हैं, वे उतने बड़े नहीं हैं। उनसे भी बड़े वे महापुरुष हैं, जो दुनिया को मालूम नहीं हैं। "अव्यक्तलिंगा अव्यक्ताचाराः।" ज्ञानी का आचार अव्यक्त होता है, वह प्रकट नहीं होता। मालूम ही नहीं होता कि यह ज्ञानी है। आप हमारे अनुभव में शरीक हो जाइये, इतनी ही हमारी माँग है। शरीक हो जाने पर उसका प्रकाशन हो या न हो शब्दों में हो या कृति में हो एक प्रकार के शब्द में हो या दूसरे प्रकार के शब्द में हो एक प्रकार की कृति में हो या दूसरे प्रकार की कृति में हो इतने सारे प्रकार के प्रकाशन हों या अप्रकाशन भी हों तो भी उससे हमें मदद मिलेगी अप्रकाशन से ज्यादा मदद मिलेगी। हम इतना ही चाहते हैं कि आप हमारे साथ हमारे अनुभव में समभोगी रसभोगी हो जाइये। फिर वह शब्द में या कृति में प्रकट न हो सका तो हमें उससे ज्यादा मदद मिलेगी। वह चीज आपके अन्दर में रहेगी और आप हमारे अत्यन्त निकट रहेंगे।

आवाहन का भार नहीं

इसलिए जब हम साहित्यिकों से आवाहन करते हैं, तो साहित्यिकों पर हमारे आवाहन का कोई भार नहीं है। अगर किसीको महसूस हुआ कि विनोबा ने हम

पर बड़ी भारी जिम्मेदारी डाली है, तो वह क्या सर्वोत्तम लिखेगा? साहित्यिक बोझ नहीं उठा सकता और हम किसी पर बोझ नहीं डालेंगे। हम इतना ही चाहते हैं कि हमारे साथ शरीक होने में, उस रस की अनुभूति में आनन्द है। हम चाहते हैं कि आपको भी वह आनन्द प्राप्त हो। इसीका नाम है, साहित्यिकों का सम्मान और साहित्यिकों की मदद।

बलरामपुर में बंगाल के साहित्यिक इकट्ठे हुए थे। कभी-कभी मेरी समाधि लग जाती है। उस समय ऐसी योजना की गयी थी कि हमारे सामने दीपक रखे गये थे—पाँच सात नौ इस तरह से। मैं उनकी ओर देख रहा था। मैं मन में सोच रहा था कि पाँच दीपक हैं, तो पंचप्राण हो गये। सात हैं, तो सप्तर्षि। नौ हैं, तो नवद्वार। ग्यारह हैं, तो एकादश इन्द्रिय। इस तरह मैं कल्पना कर रहा था तो कल्पना-तरंग में मेरी समाधि लग गयी। उस दिन के हमारे भाषण का साहित्यिकों पर बहुत असर पड़ा, वे तन्मय हो गये, ऐसा हमने सुना। उन्होंने कहा कि आपके इस आन्दोलन से हमें नवजीवन मिला है। बंगाल के साहित्य की देशभर में प्रतिष्ठा है, परन्तु बीच में कुछ मन्दता आ गयी थी। अब फिर से ज्वार आयेगा। हमने सुना कि ताराशंकर बन्द्योपाध्याय इस विषय पर एक उपन्यास भी लिख रहे हैं। लेकिन हम उसकी ताक में नहीं हैं। हम किसीसे कुछ आशा नहीं रखते। एक अव्यक्त असर हो जाता है।

साहित्य वीणा की तरह है

साहित्य के लिए हमारी इतनी सूक्ष्म भावना है। साहित्य एक वीणा की तरह है। कुछ लोग समझते हैं कि वीणा बजानेवाला जोर से बजाये, तभी श्रोताओं पर असर होता है। परन्तु जो उत्तम कलावन्त होते हैं, वे बिलकुल बारीक आवाज से बजाते हैं, वह हृदय-वीणा पर बजा रहे हों। एक दफा मैं ऐसा ही वीणा-वादन सुन रहा था। धीमी शान्त आवाज जैसे झंकार की ध्वनि सुनाई दे रही थी। जिनमें रस ग्रहण नहीं था वे कहते थे कि यह कुछ बजा भी रहा है या नहीं! हमें तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा है। परन्तु मुझे ज़रा संगीत का ज्ञान है इसलिए मुझे आनन्द आ रहा था। कुछ लोग तो समझते हैं कि बजानेवाला

हमारा यह मानव समाज कब से अस्तित्व में है—कोई नहीं जानता कि कबसे है—तब से उसमें प्रेम के साथ झगड़े भी चलते ही रहे हैं। उस प्राचीन ज़माने में जो मानव समाज का आरंभ-काल माना जाता है और हिंसाएँ चलती रहीं और उनका निपटारा या प्रतिशोध या वैसी ही और हिंसाओं से किया जाता था। उससे समाज की हालत कुछ बिगड़ती गयी तो कुछ सुधरती गयी। आखिर समाज को यह एक युक्ति सूझी कि और हिंसा के बजाय व्यवस्थित हिंसा की जाय तो वह रुक जायगी। परिणामस्वरूप जिसे हम दण्ड शक्ति और शासन भी कहते हैं उसका आरंभ हुआ। व्यवस्थित हिंसा अर्थात् दंड शक्ति पहले-पहले कारगर साबित हुई। उसने और हिंसा को रोका। चंद दिनों तक वह सीमित अवस्था में रही और लाभदायी साबित हुई। इसलिए मानव ने उसे धर्म का अंग समझा। मनुस्मृति में हमें ऐसा भी वाक्य मिलता है कि "दंडं धर्मं विदुर्बुधाः"—बुधजनों ने दंड को धर्म समझा अर्थात् उस ज़माने के बुध जनों ने। परन्तु यह दंड शक्ति, जिसमें व्यवस्थित और आरम्भ में सीमित हिंसा थी फिर सीमित नहीं रह पायी। आहिस्ता-आहिस्ता उसकी सीमा विस्तृत होती चली गयी फैलती गयी चौड़ी होती गयी। फिर भी वह व्यवस्थित तो रही ही। अगर व्यवस्थित नहीं रहती तो शासन न कर पाती और न दंड शक्ति ही कहलाती। होते होते आज उसने महाहिंसा का रूप ले लिया है। आज व्यवस्थित और सीमित हिंसा या दंड शक्ति का रूपान्तर महाहिंसा में हुआ है। तो आज मानव भयभीत है। शायद इस समय सारा मानव समाज जितना भयभीत है उतना मानवीय इतिहास में वह कभी नहीं रहा होगा ऐसा कहने में किसी तरह से [illegible]-गौरव नहीं होगा। क्योंकि जहाँ तक हम जानते हैं, इतने व्यापक प्रमाण में भय कभी फैला ही नहीं था। दुनिया में इतनी व्यापक शक्तियाँ शायद

उन हमलों नहीं हुए थे। अतः अगर मानव की आज की भयभीत अवस्था की तह में प्राकृतिक कारणों से नहीं भय पैदा हुआ हो, तो अलग बात है।

मानव-मानस का यंत्र पीछे नहीं जा सकता

बड़े-बड़े भूकम्प प्रलय आदि हुए, पर मानव को मानव की हिंसा से आज जो अतिभय प्राप्त हुआ है वैसा इसके पहले कभी हुआ होगा ऐसा नहीं दीखता। भयभीत मानव अब कुछ विचार करने लगा है। वह सोचने लगा है कि यह अमर्यादित हिंसा जो अनियंत्रित है, वह छोड़ी जाय और फिर से सीमित नियंत्रित हिंसा कायम की जाय। यद्यपि सारे वैज्ञानिक नहीं तो भी कुछ वैज्ञानिक चर्चा या कहने लगे हैं कि इस आणविक शक्ति का ऐसा बाध और राजाजी जैसे महर्षि यह उद्गार प्रकट कर रहे हैं कि उसे रोकना चाहिए, वही मानव भी स्पष्टता से चाहता है कि इस हिंसा की अतिरिक्तता नष्ट की जाय। जैसे पीछे के जमाने में वह युद्ध-शक्ति के रूप में सीमित और नियंत्रित रही वैसी ही रह जाय। किन्तु प्रगति का क्रम रखते हुए इस बात को ज़रा सोचने पर मानवशास्त्रज्ञ महसूस करेंगे कि इस प्रगति का चक्र कभी पीछे नहीं जा सकता वह आगे ही जा सकता है। और हिंसा एक शक्ति में परिणत हुई सीमित, व्यवस्थित हिंसा उत्तरोत्तर विकृत ही होती गयी और अब वह अतिहिंसा के रूप में प्रकट हुई है, तो उसे इसके आगे ही जाना है, इसके पीछे वह नहीं जा सकती। जग में ऐसी शक्ति नहीं है। सामूहिक मानव-मानस-यंत्र ऐसा नहीं है कि उसे कोई एक मानव रोक सके और पीछे ले जा सके, क्योंकि वह सामूहिक मानव के मानस का अंग बन गया है। वह जिस गति से आगे बढ़ा है, उसी गति से उसे और आगे बढ़ना है। अब या तो उसे अपना रूप अहिंसा में विकसित करना है या उससे भी विकराल रूप धारण कर मनुष्य समाज की समाप्ति कर कृतार्थ होना है। इन दो में से कोई एक तो उसे करना ही है यह समझना ज़रूरी है।

एकपक्षी [illegible] भयकारी निर्भयता

अतः भयभीत मानव का यह प्रयत्न कि केवल उसका अतिरेक रोका जाय, सफल नहीं है। अगर यह बात ध्यान में आवे, तो इसके आगे दो ही परिस्थितियां

हो सकती हैं। एक में मानव का पूर्ण विनाश होगा और दूसरे में मानव को पूर्ण विकास का मौका मिलेगा। अगर अहिंसा अच्छी है, तो हमें जरा बल महसूस करना चाहिए। जिनको मानवता में विश्वास है, उन्हें भी अपने में जरा ताकत महसूस करनी चाहिए।

अभी टंडनजी ने रायफल-क्लब के बारे में कहा था। उसका कुछ जवाब उन्होंने कर लिया था। उसमें भी काफी सार है, रहस्य है। जब आदमी निर्वीर्य बन जाता है, तब वह थोड़ा सा साहस करने ही लगता है। पर अगर उस हिम्मत को बारीकी से सोचें तो वह भय का ही रूप है। उसमें भी निर्भयता वीर्यवान् या उत्तम निर्भयता नहीं होती। वह डरनेवाली निर्भयता है। उसमें कुछ साहस या हिम्मत होती है, इस तरह उसका कुछ जवाब अभी तक किया गया और आगे भी किया जा सकता है। अगर यह बात मान लें तो भी ऐसी छोटी-छोटी हिंसाएँ अब अपना रोब जमा सकेंगी यह संभव नहीं। अगर समाज पर किसीकी सत्ता चलेगी तो उसका पूर्ण संहार करनेवाली अतिहिंसा की ही चलेगी या फिर वह विसर्जित ही होकर अहिंसा में परिणत होगी।

मध्ययुगीन कल्पना से आगे बढ़ें

इसलिए हमें अब वह पुरानी कल्पना छोड़ देनी चाहिए। मध्ययुगीन जमाने में लोगों ने जिन गुणों का सम्मान किया उन्हींमें सीमित रहने के बजाय अब जरा हिम्मत कर अपने में थोड़ा बल महसूस करना चाहिए, और इस अतिहिंसा को समाप्त करके पूर्ण अहिंसा की तैयारी करनी चाहिए। दूसरी भाषा में इसका मतलब होता है, 'दण्ड-मुक्त शासन-मुक्त समाज' की जो बात हम करते हैं, उसके लिए कमर कसनी चाहिए। उसके लिए बुद्धि तैयार रखनी चाहिए और हृदय में भाव भरना चाहिए।

काल जाता अहिंसा की ही ओर

मेरी यह निष्ठा आज की नहीं है काफी अनुभव से मुझमें यह स्थिर हुई है। बरसों से म यह मानता हूँ। परन्तु मुझे लगता था कि दण्ड-मुक्त समाज और शासन-मुक्त समाज बनाने में काफी समय लगेगा। लेकिन जब से अतिहिंसा का

यह स्वरूप प्रगट हो गया है तब से मुझमें बड़ा भारी उत्साह आया और उम्मीद हो गयी कि शासन-मुक्त समाज बहुत जल्दी लाया जा सकेगा। अगर यह उम्मीद मैं आपको समझा सकूँ और उसका स्पष्ट रूप आपके हृदय को हो जाय तो हम सबका रूपान्तर परिशुद्ध परिनिष्ठ, आत्ममय मानवता में हो जायगा। इसीलिए जब कभी एटम और हाइड्रोजन बम की बात चलती है तो मुझे लगता है कि यह एक ईश्वरीय प्रेरणा ही हो रही है। सारी समाज रचना अब मेरे हाथ में आनेवाली है। बड़े जोरों के साथ हमारी तरफ आ रही है। यह पुकारकर कहती है कि अहिंसा देवी तू आ जा और इस शक्ति को बचा ले। अतः हमारे लिए सोचने की बात है कि हमारा काम इसके आगे हमारे लिए आसान है या कठिन? पर यह काम हमारे लिए आसान ही है। यह ध्यान में आना चाहिए कि कालचक्र ही इसे आसान बनाता जा रहा है। इसी दृष्टि से हिम्मत कर हमें आगे की सारी योजना करनी चाहिए। अब शासन मुक्त समाज के लिए ही तैयारी हो रही है।

१९५७ में शासन-मुक्त समाज क्यों नहीं?

मुझे कभी कभी ऐसा लगता है कि हममें से कुछ लोग इस उलझन में पड़े हैं कि इन दो सालों के अन्दर पाँच करोड़ एकड़ भूमि प्राप्त होगी या नहीं और इस समस्या के मुताबिक का हल होगा या नहीं? पर मुझे यह उलझन कभी नहीं रही है। मुझे तो लगता है कि १९५७ में सारी दुनिया में शासन-मुक्त समाज की स्थापना ही क्यों न हो? यह केवल एक कल्पना नहीं है। अगर हम ठीक हिम्मत रखें तथा इस दृष्टि से सोचें और गहराई में जायें तो ज्ञात होगा कि आखिर हम मानवता को मिटाना तो नहीं चाहते? मानव कितना ही मूढ़ बना हो, आखिर वह इतना मूढ़ तो नहीं बनेगा कि स्वजाति का ही नाश करने के लिए प्रवृत्त हो? हम काल ईश्वर की इच्छा नहीं जानते, परन्तु जो चीज रहा है, यह जो साफ समझता है—उस पर से ऐसा नहीं दीखता कि मानव की समाप्ति की ओर योजना हो रही है। ईश्वर अभी प्रलय नहीं चाहता, मानव के हाथ से मानव का नाश नहीं चाहता। बल्कि इसी पर से मालूम होता है कि ऐसी प्रेरणा हमें हो रही है। अगर ऐसा नहीं होता तो भगवान हम सबको वानर बनाता और आप और हम

यहाँ दण्ड-मुक्त समाज, शासन-मुक्त समाज-रचना की बात ही न कर सकते। भगवान् को जब प्रलय करना था तो यादवों को क्या सूझा! एक-एक ने शराब पीकर हाथ में लट्ठ लिया और एक दूसरे को मारने लगे। आखिर भगवान् ने कहा कि चलो भाई मैं भी तुम लोगों से अलग क्यों रहूँ! इसलिए प्रहार कर दिया और चले गये। कहते हैं, वहाँ सबका संहार हो गया।

ईश्वर प्रलय नहीं चाहता

अगर भगवान दरअसल न चाहता होता तो दण्ड-मुक्त शासन-मुक्त समाज बनाने की प्रेरणा मुझे क्यों होती? हम सब यहाँ इकट्ठा क्यों होते? इसके लिए हम एकत्र हो ही नहीं सकते थे। कोई अगर यह अहंकार करे कि ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध हम एक काम करने जा रहे हैं, दरअसल ईश्वर तो प्रलय चाहता हुआ दीखता है। लेकिन हमने तय किया है कि हम प्रलय न होने देंगे—इस तरह हम ईश्वर की मर्जी के खिलाफ कुछ करने जा रहे हैं तो वह असम्भव है इसलिए यह निश्चित ही समझ लेना चाहिए कि अब हम आपको ऐसी प्रेरणा हो रही है तो ईश्वर इस समय प्रलय नहीं चाहता। और अगर वह प्रलय नहीं चाहता तब तो यह भी स्पष्ट है कि हमें शीघ्र से शीघ्र हिंसा से मुक्त करना चाहता होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें यहाँ श्रद्धा रखनी चाहिए कि सत्युग बहुत नजदीक आ रहा है। पर सत्युग कब आता है जब कि कलियुग का परिपूर्ण अतिरेक होता है उसका घड़ा भर जाता है। तो हमें समझना चाहिए कि जब इतनी अधिक हिंसा समाज में पैदा हुई और समाज भयभीत बन गया तो इसके आगे शीघ्र ही सत्युग आ रहा है।

मानव को सर्वत्र समान प्रेरणाएँ

तो आज हमें यह बल का दर्शन हो रहा है। चार साल में हम इतनी जमीन प्राप्त हुई तो आगे दो साल में और कितनी जमीन प्राप्त होगी आदि गणित कर सोचना ठीक नहीं। हमें सोचना चाहिए कि सारी दुनिया में एक बड़ी भारी प्रेरणा काम कर रही है और उसके लिए हम निमित्त हो गये हैं। वह प्रेरणा हमसे कुछ कराना चाहती है यह समझ लेना चाहिए। हस्तिनापुर मे

देखा गया है कि कुल मानव का इतिहास दैवी प्रेरणाओं से प्रेरित है। आप देखेंगे कि एक जमाना था, एक युग था, जिसमें इधर बुद्ध भगवान् थे तो उधर कन्फ्यूशस और कुछ दिन के अन्तर से जरथुस्त्र। थोड़े दिन के बाद ऐसा हो गया। तो उन पाँच सौ साल के अन्दर आपको पैगम्बर ही पैगम्बर एक साथ दिखेंगे। फिर समाज में एक ऐसी प्रवृत्ति आयी इतिहास में एक ऐसा समय आया जिसमें आप अनेक सन्तों को देखते हैं। जब इधर वैष्णव आये, तो उधर और साधु-सन्त हुए। इस प्रकार उस समय हम सब तरफ सन्तों को देखते हैं। फिर जिधर देखो उधर हर देश में आजादी की बात चली। आज कुल देशों में भी प्रेरणा हो रही है कि मानव समाज में साम्ययोग की स्थापना होनी चाहिए, निर्भय-निर्वैर समाज की रचना स्थापित होनी चाहिए, आजादी चाहिए।

भौतिक बनाम चैतन्य 'परमाणु'

इसका मतलब यह है कि प्रेरणाएँ हुआ करती हैं और उनसे मानव-समाज प्रेरित और प्रवृत्त होता है। तो आज जो इस प्रेरणा को अभी तक की प्रेरणाओं का विकसित स्वरूप समझकर यह महसूस होना चाहिए कि ईश्वर हमें अपना औजार बना रहा है। अगर हमें यह भान हो जाय तो फिर हम कम ताकतवाले नहीं रहेंगे। आज वैज्ञानिक ने यह सिद्ध कर दिया है कि अणु में ऐसी शक्ति है कि वह संहार कर सकती है। तब फिर हमें यह समझना चाहिए कि एक साधारण भौतिक परमाणु में अगर इतनी शक्ति है, तो चैतन्य परमाणु में, ज्ञान परमाणु में कितनी शक्ति होगी!

भारत दैवी प्रेरणा का निमित्त

इसलिए मैं यह चाहता हूँ कि हम भूदान-यज्ञ की तरफ संकुचित दृष्टि से न देखें। अगर हम ऐसी दृष्टि से देखेंगे तो मौका गँवायेंगे। लेकिन व्यापक दृष्टि से देखेंगे तो ध्यान होगा कि सारी दुनिया में यह एक बड़ा भारी खेल हो रहा है उसका मध्यबिन्दु फिर से भारत बनने जा रहा है और इसीलिए हमें यह प्रेरणा मिली है। आप देखते हैं कि उधर पंडित नेहरू कोशिश कर रहे हैं कि सारी

दुनिया में शांति स्थापित हो। शांति के विचारों को बढ़ावा मिले यह प्रेरणा उन्हें हो रही है और वे जिस पद्धति से काम कर रहे हैं, उसमें वे अपनी पराकाष्ठा भी कर रहे हैं। यह प्रेरणा भी हिन्दुस्तान में से निकल रही है और आप देखते हैं कि भूदान-यज्ञ की प्रेरणा भी यहीं प्रकट हुई है। आपने यह भी देखा कि आजादी का जो एक तरीका आया वह भी हिन्दुस्तान में आया। इस तरह कुल बातें देखते हुए यह आभास होता है कि दुनिया में एक प्रेरणा काम कर रही है और उसके लिए फिर से भारत को निमित्त बनना है। अगर हम यह विश्वास मानकर ख्याल में रखेंगे तो फिर अपनी फौज कैसे बढ़ायेंगे ? फिर उसका कुछ उपयोग है या नहीं पाकिस्तान के खिलाफ हम टिकेंगे या नहीं रक्षण-बचाव का क्या होगा—आदि बातें बिलकुल क्षुद्र हो जाती हैं। इनका विचार करने की जरूरत ही नहीं मालूम होती।

दुनिया को दो साल का आह्वान

इसलिए हम सब इस दृष्टि से इस पर सोचें कि आज एक प्रस्ताव हुआ है और यह माँग की गयी है कि दो साल तक अपने बहुत सारे अच्छे-अच्छे कामों को भी छोड़ करके लोग इसमें जोर लगायें उसका क्या मतलब है ? शंकररावजी ने कहा कि दो साल तक जोर लगाने का अर्थ अगर यह हो कि आज की तारीख से उस तारीख तक ही जोर लगाया और फिर हम ढीले पड़ जायें तो वह ठीक नहीं। यह सावधानी की सूचना उन्होंने हमें दी। लेकिन प्रस्ताव में दो साल की जो बात बतायी गयी है वह प्रस्ताव बनानेवालों ने कुछ ज्यादा सोच विचार कर कही हो ऐसा नहीं है। उन्होंने यह स्थूल विचार ही किया कि १९५७ तक हमने काम करने का संकल्प किया था उसके अब दो साल बाकी हैं तो इसके लिए उतना ही समय दिया जाय। लेकिन यह समझें कि हम दो साल के लिए सब लोगों का जो यह आह्वान करते हैं यह सिर्फ हिन्दुस्तान के लोगों के लिए नहीं यह हम अपने उत्कैम प्रेमी लोगों तक ही सीमित होकर नहीं मांग रहे हैं। यद्यपि हमारा उन पर अधिकार है इस वास्ते उन्हीं का विशेष आह्वान कर रहे हैं फिर भी हमारा यह आह्वान सारी दुनिया को है कि आगामी दो साल जोर लगाइये और १९५७ तक दण्ड-मुक्त समाज स्थापित कीजिये।

विश्व-शांति के लिए वोट

आज हम यहाँ से जायेंगे। मल्लमस्वामी ने कहा कि कुछ लोग पैदल आते हैं और वापस जाते हैं ट्रेन से। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो आते भी पैदल और जायेंगे भी पैदल। पर कमार कम से कम एक ही दफा पैदल आने की योजना हो तो जाते समय पैदल जायें। आखिर यह बात उनको क्यों कही मैं भी सोच रहा था। क्या उसे सूझा? इसीलिए कि इस वक्त हम एक ऐसा संदेश मिल रहा है कि उसका फौरन प्रचार करने की जरूरत है। अगर हम यहाँ से पैदल निकल पड़ते हैं, तो यह सन्देश हर जगह सुनाते जायेंगे। क्योंकि 'मालूम होगी दो साल के अंदर मानव का उद्धार होनेवाला है'। यहाँ भी इस तरह का उत्थान हुआ है, यहाँ मानव ने अति तीव्रता से मनन किया है कि मुक्ति मेरे नजदीक है। जब मानव में ऐसी तीव्रता आती तभी धर्म का उत्थान और बहुत भारी कार्य हुए, इसे हम सब जानते हैं। इसलिए हमें न सिर्फ यही महसूस करना चाहिए कि दो साल के अन्दर यहां के मानव ऐसा प्रकट कर कुछ जमीन हासिल करेंगे बल्कि दो साल में हमें ऐसी कोशिश करनी है कि दुनिया सब शस्त्रों को निकम्मा समझकर एक नया समाज बनाने के लिए प्रेरित हो। इस युग में यह कोई असम्भव बात मानने की जरूरत नहीं। जब कि एक एक वर्ष की कीमत आज पुराने सौ सौ दो-दो सौ वर्ष के बराबर हो गयी है, तब बात भी ऐसा समझने की जरूरत नहीं कि दो साल के अन्दर यह बात असम्भव है। ऐसी ही भावना लेकर एक प्रेरणा से प्रेरित हो हम यहां से चले जायें। और यहाँ भी भूमि माँगने के लिए पहुँचें तो उन्हें समझायें कि भाइ आप जो दानपत्र देंगे वह विश्व शांति के लिए है। आप विश्व-शान्ति चाहते हैं या नहीं? यदि चाहते हैं, तो यहाँ की भूमि समस्या हल करने के लिए भूमिदान और सम्पत्तिदान की योजना में अपना हिस्सा दीजिये। आप जो यह भूमि हिस्सा देंगे, वह विश्व शान्ति के लिए वोट ही माना जायगा।

बिना श्रद्धा के सब तरीके बेकार

ऐसी ही भावना लेकर हम यह काम करें और सोचें कि इसमें कौन सी शक्ति पड़ी है? कुछ दिखावी आदमियों ने कहा, किस तरीके से इसने य-

काम चलाया उससे शायद यह मसला १६५७ तक निपटता नहीं दीखता। अतः एक हम कोई दूसरे तरीके ढूँढें। पर हम कहते हैं कि तरीकों की यहाँ कोई कीमत नहीं है। तरीका कोई कीमत ही नहीं रखता। यहाँ कीमत इसी बात की है कि हम कितनी श्रद्धा से भावित हैं ! यदि हममें श्रद्धा भावना की न्यूनता है तो इससे बेहतर तरीके हम ढूँढते चले जायें तो भी समझ लीजिये कि भूमि समस्या हल न होगी। यह समस्या हल होगी तो उसके साथ साथ मानव का यह निश्चय भी होगा कि हमें शासन मुक्त एवं मुक्त होना है। ऐसा निश्चय होने पर ही उस निश्चय के साथ यह समस्या भी अहिंसा से सुलझेगी।

हमारे कार्यों के फलस्वरूप पूरी ताकत नहीं

हमसे लोग पूछते हैं कि क्या आपका ऐसा विश्वास है ? आज ही भी पाटिल साहब ने भी पूछा था कि क्या आपको इस पर विश्वास है कि हर कोई मनुष्य अपना छठा हिस्सा दे ही देगा ? पर क्या यह सही सवाल माना जायगा ? ऐसा सवाल इसलिए उठता है कि हमारा दर्शन सीमित है। यदि हम व्यापक दर्शन करें और भावना से भावित होकर लोगों के पास पहुँचें तो आप देखेंगे कि यह महज हिन्दुस्तान की भूमि-समस्या हल करने की छोटी-सी बात नहीं है, जिससे यहाँ के थोड़े भूमिहीनों को थोड़ी सी मदद मिल जाय और थोड़ी शान्ति स्थापित हो 'लैंड हंगर' या जमीन की भूख कम शान्त हो जाय। इससे हिन्दुस्तान की नैतिक शक्ति ऐसी बनेगी कि उसके परिणामस्वरूप सारी दुनिया में शान्ति स्थापित होगी। यह बात ध्यान में आने के बाद हमारा यह तरीका अगर अभी तक कारगर नहीं हुआ हो तो फिर हमें संशोधन करना होगा। हमें समझना चाहिए कि हम अगर दुखियाँ होंगा तो कुछ दोष हममें होते होंगे। वाणी मन और कृति के दोष होते होंगे, इसी वास्ते हमें पूरी ताकत नहीं आती।

सत्याग्रह तीव्र-से-तीव्रतम नहीं सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतम

जब हम सत्याग्रह के बारे में सोचते हैं, तो करीब-करीब ऐसे ढंग से सोचते हैं कि जैसे मानव ने छोटी हिंसा से बड़ी हिंसा में और बड़ी हिंसा से प्रतिहिंसा में कदम रखा वैसे ही पहले तो हम एक सौम्य-सा सत्याग्रह करेंगे। आज हमारी

पर जो पद-यात्रा चल रही है, वह भी एक सत्याग्रह है ऐसा हम कहते हैं। लोगों ने भी इसे मान लिया और वे कहते हैं कि हाँ यह भी एक सौम्य सत्याग्रह है, पर अगर इससे काम नहीं बना, तो और तीव्र सत्याग्रह करेंगे। यदि उससे भी नहीं बना तो उससे और भी तीव्र सत्याग्रह होगा। इस तरह से हम उसकी तीव्रता बढ़ाते जायेंगे। किन्तु यथार्थ में हमारा चिन्तन इससे बिलकुल उलटा होना चाहिए। हमने जो सौम्य सत्याग्रह शुरू किया है अगर उससे काम बनता नहीं दीखता तो उससे कोई सौम्यतर सत्याग्रह ढूँढ़ेंगे, ताकि उसकी ताकत बढ़े। अगर उतने से भी काम न निकला तो कोई और सौम्यतम सत्याग्रह निकालेंगे, जिससे उसकी ताकत और बढ़े। आपको मालूम है कि होमियोपैथी में किया दिखाया जाता है कि औषधि कम मात्रा में दो और उसे सौम्य बना, बार-बार मथित किया जाय। मथना से जो मथित होता है वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होता हुआ अधिकाधिक परिणामकारी होता है। हिंसा शास्त्र में तो माना जाता है कि सौम्य शस्त्र से काम न चला, तो उससे तीव्र शस्त्र लेने से ताकत बढ़ेगी और वह कामयाबी होगा। किन्तु यहाँ इससे बिलकुल उलटी प्रक्रिया होनी चाहिए। ध्यान में आना चाहिए कि अगर यह काम इस तरह कामयाब नहीं हो रहा है तो इसका मतलब यह है कि हमारी सौम्यता में कुछ न्यूनता है, इस वास्ते हमें सौम्यता और बढ़ानी चाहिए।

सुरसा और हनुमान की मिसाल

यही सत्याग्रह का स्वरूप है। अभी तक आजादी के लिए जो सत्याग्रह हुए, उनमें प्रधान शासक अंग्रेजी सत्ता को यहाँ से हटाना इतना ही एक निगेटिव कार्य था। उस वक्त हिन्दुस्तान निःशस्त्र होकर निराश हो गया था। वह या तो भ्रान्त होकर इधर-उधर छोटे-बड़े दंगा करने लगा था—और हिंसा में कुद जाना चाहता था या निराश होकर बैठना चाहता था। उसी हालत में अहिंसा का यह विचार आया और लोगों ने उसे उतनी ही मात्रा में ग्रहण किया जितनी मात्रा में वे ग्रहण कर सकते थे। इस तरह उन दिनों सत्याग्रह की जो एक प्रक्रिया चली उसे परिपूर्ण न मानना चाहिए। वह विशिष्ट परिस्थिति की उपाधि से युक्त परि

स्थिति की एक प्रक्रिया हुई। किन्तु स्वराज्य प्राप्ति के बाद डेमोक्रेसी की आज की हालत देखते हुए और सारी दुनिया में काम करनेवाली शक्तियों का सूक्ष्म दर्शन पाकर हमें सत्याग्रह की मात्रा उत्तरोत्तर सौम्य करनी होगी। सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम इस तरह से अगर सत्याग्रह करता गया तब ही वह अधिकाधिक कारगर और अधिकाधिक शक्तिशाली होगा।

तुलसी-रामायण में सुरसा राक्षसी की कथा है। "सुरसा नाम अहिन की माता।" वह हनुमान के सामने खड़ी हो गयी। उसने अपना मुँह फैलाया और एक योजन का किया तो हनुमान दो योजन के बन गये। जब उसने दो योजन का मुँह बनाया तो हनुमान चार योजन के हो गये। जब हनुमान चार योजन के बन गये, तो सुरसा आठ योजन की बन गयी। आखिर जब वह आठ योजन की बनी तब हनुमान सोलह योजन के बन गये और जब हनुमान सोलह योजन के बन गये तब सुरसा 'बत्तीस भयउ'। अब हनुमान ने देखा कि इसके आगे गुणन-क्रिया करते रहने में सार नहीं। बत्तीस का चौंसठ होगा, चौंसठ का एक सौ अट्ठाइस। इसका कोई अंत नहीं है। यह 'न्यूक्लीयर वेपन' तक पहुँच जायगा। तो फिर "अति लघु रूप धरेउ हनुमाना"। फिर हनुमान ने अति लघु रूप धारण किया और उसके मुँह के अन्दर चला गया तथा नासारंध्र से बाहर निकल गया। मामला खत्म हो गया।

पाँव न टूटे तब तक चलते रहो

हमें समझना चाहिए कि जब विशाल सुरसा इतना भयानक रूप धारण कर ऐटम और हाइड्रोजन बम का रूप लेकर मुँह फैलाकर हमारे सामने खड़ी है तो हम बिलकुल अति लघु रूप धारण कर उसके अंदर चले जायें और नासिका रंध्र से पार हो जायें। हमें यही प्रेरणा होती है। गुजरात के एक भाई ने कहा है कि अब यहाँ काम बहुत मन्द पड़ गया। मैंने कहा नहीं, मन्द नहीं पड़ा। तुम बाहर से देखते हो। पर जरा अन्दर से देखो कि अपनी छाती में जो जीव है क्या वह मन्द पड़ी है? अपनी नाड़ी मन्द पड़ी है क्या? अगर छाती पर हाथ रखते हैं, तो अनुभव नहीं दीख पड़ता। विनोबा को तो उल्टा ही दीख

पड़ता है। इधर विनोबा चल रहा था तो उधर पैर के अन्दर बड़े जोर से दर्द शुरू हो गया। मैंने कहा 'वाह रे बाबा!' उसकी व्यथा लम्बी कहानी मैं यहाँ नहीं सुनाऊँगा पर पैर सुबह से शाम तक सतत ही दुखता रहा। पहले तो रात को नींद आती थी पर इन दिनों दर्द से रात में भी अक्सर टूट जाती थी। पर मन ने कहा पैर दुखता है, तो इसमें पैरों का क्या अपराध है? पाँव चल सकते हैं इसलिए यात्रा जारी रखो। आखिर लोगों ने बहुत आग्रह किया, तो तीन दिन पालकी में बैठा। कुल मिलाकर सात-आठ मील पालकी में चला फिर भी शेष पचास-पचपन मील तो चलना ही था। आखिर वह पैर बेचारा तो शान्त हो गया। यह विचार का चमत्कार हुआ एक छोटी-सी परीक्षा हुई। लेकिन हमें यही लगा कि पाँव तो परमेश्वर ने नहीं तोड़े और जब पाँव नहीं तोड़े तो इसमें उसका सन्देश स्पष्ट है कि "चलते रहो"। जब फिर यात्रा बन्द करने का मुझे सूझेगा तब मैं पाँव तोड़ डालूँगा। यह उसका संकेत समझ गया तो मेरा उत्साह बढ़ा। मैं पूछता हूँ कि इधर आपको कितनी जमीन मिली? कोई कहते हैं कि गढ़वाल से कोई तीन-चार लाख एकड़ कम मिली। पर यह कोई बात नहीं है। इस पर सोचो ही मत। यहाँ से अपने हृदय में तीव्र भावना लेकर जाओ यही आपसे मुझे कहना है।

ये नम्र लोक विश्वहिताय

आज सर्व-सेवा-संघ में आप कार्यकर्ताओं के सामने जो प्रस्ताव रखा है तो वह आदेश नहीं दे रहा है। आप सबको आज्ञा करने की उसमें शक्ति नहीं है। अगर वह कुछ कर सकता है, तो प्रार्थना कर सकता है और वह प्रार्थना भी अपने के लिए नहीं, सब के लिए ही कर सकता है। इस वास्ते आज का प्रस्ताव अति नम्र है। वह ऐसा संस्था नहीं है कि अपने चन्द लोगों को ही आज्ञा दे जैसे कि कोई प्राइवेट मालिक अपने नौकरों को हुक्म देता है और उससे अपने मुताबिक काम करवाता है। सर्व-सेवा-संघ ऐसा संस्था नहीं बन सकता। तो इस प्रस्ताव में सारी दुनिया से प्रार्थना की गयी है कि वो सब ओर फैलाओ और इस अरसे में अपना समाज शासन-मुक्त करने की कोशिश करो। जब हम समाज को शासन-मुक्त करेंगे तभी अहिंसा में प्रगति होगा। नहीं तो अगर हम यह

कोशिश करेंगे कि हिंसा सीमित बने और उसके अतिरिक्त शस्त्र ही क्षीण हो जायें तो घटना-चक्र में यह बात बैठनेवाली नहीं है। ऐसा समझकर हम इस प्रस्ताव का अर्थ यही करते हैं कि हम लोग सारी दुनिया के हित के लिए, विश्व हित के लिए यह बोल रहे हैं।

सर्वभूतहिते रताः

हमें अपने पूर्वजों ने क्या सिखाया, यह महारोगी-सेवा-मण्डल की एक पुस्तक की प्रस्तावना लिखते समय मैं सोच रहा था। मैंने लिखा कि "ह्युमैनिटी" का विकास ईसाई-धर्म में हुआ है और उसके परिणामस्वरूप वहाँ कुष्ठ-रोगियों की सेवा आदि चलने लगी। इस 'ह्युमैनिटी" शब्द का तर्जुमा करना मुझे मुश्किल मालूम हुआ, क्योंकि भाषा में 'ह्युमैनिटी' के लिए कोई शब्द ही नहीं है। हमारी भाषा में जो शब्द है, वह है "भूतदया' और यहाँ तो चाहिए 'मानवदया"। मानव-दया जैसी सीमित वस्तु हमने बनायी ही नहीं। हमने तो "भूतदया' नाम से लिया है और कहा है 'सर्वभूतहिते रताः'। इतना विशाल शब्द पूर्वजों ने हमारे सामने रखा है कि उससे अधिक विशाल दूसरा कोई शब्द है ही नहीं। 'सर्व" कह दिया, 'भूत' कह दिया एवं 'हित' कह दिया। तब और कहने को क्या बाकी रहा? याने पूरा-का-पूरा मनुष्य जितनी ऊँची उड़ान उड़ सकता है, उतनी पूरी ऊँची उड़ान इस शब्द में पड़ी है।

"सर्वभूतहिते रताः" का अर्थ भगवान् भाष्यकार लिखते हैं, "अहिंसकाः इत्यर्थः" अर्थात् इसका अर्थ अहिंसा है, यह एक ही शब्द में बता दिया। सर्वभूत हिते रताः यही शब्द लेकर हम सम्मेलन में आ रहे हैं। हम लोगों के पास जायें और कहें कि यही काम हम कर रहे हैं। हमें केवल यहाँ की भूमि-समस्या ही हल करनी नहीं है। दुनिया की कुल सरकारें, जो कि हिंसा को सीमित करने में कारगर नहीं हो सकतीं, मिटाने और परिणामस्वरूप दुनिया में अहिंसा की स्थापना करने के लिए, विश्व शान्ति के लिए हम आपसे दान माँग रहे हैं। क्या आप विश्व शान्ति के लिए जमीन का छठा हिस्सा नहीं दे सकते? क्या आप विश्व-शान्ति के लिए अपनी सम्पत्ति का भी छठा हिस्सा नहीं दे सकते? लोगों के पास जाकर उन्हें हम यह समझायें।

भावना

हमारे यहाँ चार साल अच्छे-अच्छे कामों में लगे हैं। अब हम उनसे कुछ प्यार की बात करना चाहते हैं। हमारा एक दावा है। वह हम आपके सामने पेश करते हैं। दावा यह है कि जितनी निष्ठा से रचनात्मक कार्य हमने किया उससे अधिक निष्ठा से कर नहीं सकते थे। उससे ज्यादा निष्ठा हमारे पास उपलब्ध ही नहीं। हमने छोटे-छोटे अनेक रचनात्मक काम बीस-पचीस साल तक बड़ी निष्ठा से किये हैं। हमारी आत्मा कह रही है कि अगर इस समय गांधीजी होते तो वे ही छोटी-छोटी सेवाएँ चलतीं। उनमें जो तृप्ति थी वह छोटी नहीं थी। हमें उनमें विशाल तृप्ति महसूस होती थी। आज तो हम लोगों के सामने हाथ जोड़ते हैं, लेकिन उन दिनों ऐसे मस्त थे कि यदि कोई हमारे सामने भी आये, तो परवाह नहीं करते थे। लोग कहते थे यह कैसा उन्मत्त मनुष्य है कि शिष्टता भी नहीं। लेकिन वही हम आज आपके सामने नम्र बनकर प्रार्थना कर रहे हैं कि वे जो छोटे-छोटे काम हमने चलाये हैं, वे दो एक साल के लिए कृपया छोड़ दें। उससे उन कामों का नुकसान नहीं होगा। हमारा नुकसान नहीं होगा तथा देश और दुनिया का भी नुकसान नहीं होगा। क्योंकि आगे हमें इतना काम उपलब्ध होगा कि संभव है कि उन कामों को करने के लिए हम पर्याप्त समय भी शामिल न होंगे। इस वास्ते थोड़ी देर के लिए उन्हें छोड़िये, ऐसी हमारी प्रार्थना उन साथियों के लिए है। रचनात्मक कामों में बहुत श्रद्धा रखनेवालों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इस आन्दोलन में आप यदि उन कामों को छोड़ देंगे अगर छोड़ देंगे तो भी कोई नुकसान न होगा। न उन कामों का और न हम जनता का ही कोई नुकसान होगा।

पुरी
१०-३-५५

उत्कल   पुरी-सम्मेलन के बाद

[१ अप्रैल '५५ से ३० सितम्बर '५५ तक]

एक भाई ने सवाल उठाया है कि पश्चिम और हिन्दुस्तान के समाजशास्त्रों में पश्चिम से क्या फर्क है? अवश्य ही पश्चिमवालों ने विज्ञान को बहुत आगे बढ़ाया है। उस क्षेत्र में हमें उनसे बहुत कुछ सीखना है। फिर भी वहाँ अभी समाजशास्त्र बना ही नहीं, उसका आरम्भ ही हुआ है। हमने यहाँ जो भूदान चलाया है, वह यहीं के समाजशास्त्र का एक अंग है। यहाँ का समाजशास्त्र काफी विकसित है। इसका यह मतलब नहीं कि आगे प्रगति की ओर गुंजाइश ही नहीं है। अभी काफी प्रगति करनी है, फिर भी यहाँ के समाजशास्त्र के कुछ बुनियादी सिद्धान्त हैं।

समाज सन्तुलन के लिए नित्य-दान

पहला बुनियादी सिद्धान्त यह है कि मनुष्य को समाज के लिए खुद की शक्ति का एक हिस्सा सतत देते रहना चाहिए। अपने पास सम्पत्ति हो तो वह अपने लिए नहीं समाज के लिए है, यह समझकर उसका एक हिस्सा समाज को अर्पण कर देना चाहिए। अपने पास जमीन हो तो उसकी मालकियत समाज की समझकर या कभी माँग हो उसका एक हिस्सा समाज को देना चाहिए। अपने पास की श्रम शक्ति और बुद्धि-शक्ति भी समाज के काम में सतत लगाते रहना चाहिए, क्योंकि वह समाज के लिए ही है। नित्य-दान की इस कल्पना में समाज का सन्तुलन रखने की जो बात है, वह अभी पाश्चात्यों के समाजशास्त्र में नहीं आयी है। वे जो दान चलाते हैं, उसे 'चैरिटी' कहते हैं। लेकिन एक तो वह धर्म-दान में दिया जाता है—जैसे चर्च आदि के लिए और दूसरे बीमार, दुःखी आदि के सहाय। पहले एक धर्म-संस्थाओं के लिए दिया जाता है तो दूसरा दया से प्रेरित होकर। ये दोनों प्रकार के दान हिन्दू धर्म में हैं और अन्य धर्मों में भी। दान के परिणाम स्वरूप स्वर्गसुख की इच्छा या ईश्वर की कृपा की अपेक्षा भी की जाती है। दोनों दान अच्छे हैं।

नये मूल्यों की प्रतिष्ठापना के लिए

लेकिन हमारे यहां एक तीसरा भी दान है और वह समाजशास्त्र का अंग है। मन्दिर, मस्जिद, मठ आदि के लिए जो दान दिया जाता है, उसमें परलोक में फल पाने की पारलौकिक प्रेरणा होती है और जो दया के कारण दिया जाता है, उसमें चित्त-शुद्धि की भावना रहती है। किन्तु हमने जो भूदान और सम्पत्तिदान यज्ञ शुरू किये हैं, वे तो समाज-परिवर्तन के लिए हैं। समाज रचना बदलने और समाज का सन्तुलन रखने के लिए हैं। दोनों में भूमि और सम्पत्ति की मालकियत मिटाने का सवाल है। अगर कोई पारलौकिक कामना की जाय, तो उसका इस यज्ञ के साथ कोई मेल नहीं खाता—यद्यपि परलोक में भी इसका फल मिलेगा ही। इसके अलावा इसमें जो भूमि और संपत्ति का बँटवारा होगा उससे चित्त-शुद्धि भी हो सकती है। तात्पर्य पारलौकिक कल्याण और चित्त-शुद्धि का साधन होते हुए भी इसका मुख्य उद्देश्य है : समाज का संतुलन रखना समाज में समता लाना और साम्ययोग की स्थापना करना। समाज में नये मूल्यों की प्रतिष्ठापना करना और व्यक्ति का जीवन समाज के लिए समर्पित करना। जिसका परलोक पर विश्वास न हो वह भी इस यज्ञ में हिस्सा ले सकता है। जिनको चित्त शुद्धि के दूसरे साधन उपलब्ध हों उन्हें भी इसमें योग देना चाहिए।

भूदान का पूरा और अधूरा पक्ष

गीता में यज्ञ दान और तप की जो कल्पना थी, वह इस तरह के समाज-संतुलन और साम्ययोग की स्थापना के लिए ही थी। तो इस यज्ञ के मूल में रहनेवाली यह कल्पना भारतीय समाजशास्त्र की एक मूलभूत कल्पना है। धर्मशास्त्र में पारलौकिक कल्याण की तो भक्ति-मार्ग में चित्त-शुद्धि की कल्पना की जाती है परन्तु इसमें समाजशास्त्र की कल्पना है। यह बात बहुतों के ध्यान में नहीं आती। इसी लिए यह उनकी समझ में नहीं आता कि भूदान-यज्ञ से क्या होगा। हमारे समाजवादी भाई आक्षेप उठाते हैं कि समाज बदलने और जमीन का मसला हल करने की यह बात इतनी बड़ी है कि कानून से ही हो सकती है। अतः कानून बनाने के लिए सरकार पर दबाव लाना चाहिए। पर दान और तप के द्वारा व्यक्ति की

शक्तियाँ समाज को समर्पित कराकर समाज मे स्थिर मूल्य कायम करने की बात वे लोग नहीं समझ पाते। हम उन्हें समझाते है कि भाई सरकार पर दबाव लाने की बात करते हो तो इस यज्ञ के परिणामस्वरूप वह भी आ जायगा। अगर इस यज्ञ को पूरा यश मिला—यह यज्ञ परिपूर्ण सिद्ध हुआ—और आप सब योग देंगे तो पूर्ण यश जरूर मिलेगा—तो फिर कानून की जरूरत ही न रहेगी। लोक-शक्ति से ही जमीन बँटेगी और समस्या हल हो जायगी। लेकिन अगर इसे पूरा यश नहीं मिला तो भी उतना काम तो जरूर हो जायगा जितना ये साम्यवादी और समाजवादी भाई चाहते हैं। याने सरकार पर दबाव आयेगा और परिणामस्वरूप सरकार को कानून में परिवर्तन करना होगा गरीबों के हित मे कानून बनाना होगा। अगर ऐसा हुआ तो वे लोग समझेंगे कि भूदान-यज्ञ को पूरा यश मिला। तो उनमें और हममे इतना ही फर्क है कि हम जिसे अधूरा यश कहते हैं, उसे वे पूरा यश कहते हैं और जिसे हम पूरा यश कहते हैं, उस पर इनका विश्वास ही नहीं। इसके अलावा हमारा उनके साथ कोई खास विरोध है ऐसा हम नहीं मानते।

गरीब दान क्यों दें ?

कल एक कम्युनिस्ट भाई हमसे मिलने आये। उन्होंने हमसे बातचीत की और आखिर हमारी बात समझ ली। उनके और हमारे बीच तय हुआ कि हम एक साथ काम कर सकते हैं। उन्होंने कहा : आप जो विश्व शान्ति की बात करते हैं, वह हमें मंजूर है। हमने कहा ठीक! इस बारे मे हम दोनों का मतैक्य हो गया। फिर उन्होंने कहा हम चाहते हैं कि न केवल जमीन की बल्कि कारखानों की भी मालकियत मिटे। हमने कहा : ठीक! यह भी हमें मंजूर! इसमें भी हम दोनों एकमत हो गये। फिर उन्होंने कहा : हम नहीं मानते कि इस यज्ञ के जरिये सारा मसला हल होगा, इसके लिए तो सरकार पर दबाव आना चाहिए। हमने कहा : ठीक है अगर इसमें पूरा यश नहीं आया तो भी सरकार पर दबाव आयेगा ही। इसलिए इस विषय मे भी आपमें और हममें मतभेद होने का कोई कारण नहीं। सरकार पर दबाव लाने के जो भी प्रकार

हो सकते हैं, उनमें यह भी एक हो सकता है। भूदान-यज्ञ के जैसा जोरदार आन्दोलन चलाने पर उससे जो वातावरण पैदा होगा उसका प्रभाव सरकार पर भी पड़ेगा ही। उन्होंने कहा : यह बात ठीक है, परन्तु आप गरीबों से दान क्यों लेते हैं ? इस विषय में आपका और हमारा मतभेद है।

किन्तु बात यह है कि समाज के हर अंग को समाज के लिए कुछ-न-कुछ अर्पण करना ही चाहिए। जो दान को केवल दया का साधन मानते हैं, वे यह समझ ही नहीं सकते कि गरीबों से दान क्यों लिया जाता है ? वे तो मानते हैं कि दान श्रीमानों से ही लेना चाहिए। लेकिन जो लोग यज्ञ, दान और तप को समाज शास्त्र का एक अंग समझते हैं, उनके ध्यान में यह बात आ जायगी कि इसमें गरीब और श्रीमान् दोनों को कुछ करना चाहिए। दोनों समाज के अंग हैं अवश्य हैं, इसलिए दोनों को इसमें योग देना चाहिए। हाँ यह ठीक है कि जिनके पास ज्यादा जमीन है, उनसे हम बहुत ज्यादा माँगेंगे और जिनके पास थोड़ी है, वे जो कुछ थोड़ा-सा दें उसीसे हम संतुष्ट हो जायेंगे। जिनके पास कुछ भी जमीन नहीं, वे श्रमदान देंगे। इस तरह हरएक को कुछ-न-कुछ देना होगा। जमीन सम्पत्ति, श्रमशक्ति, बुद्धि, सब कुछ समाज का है अपना नहीं। उसे समाज की सेवा में समर्पित करने से जो इनकार करेगा, वह समाज का अंग नहीं बन सकता। और, चूँकि गरीब लोग समाज के अंग हैं, इसलिए उन्हें समाज की सेवा में अपना कुछ-न-कुछ हिस्सा अर्पण करना ही चाहिए।

ग्राम-मन्दिर की नींव पर विश्व-कल्याण-मन्दिर

हमने कई बार कहा है कि यह हमारा भक्ति-मार्ग चल रहा है, लेकिन मुख्यतः यह समाज शास्त्र का काम चल रहा है और भक्ति-मार्ग उसके साथ जुड़ गया है। भक्ति शास्त्र और स्वतंत्र वस्तु है, ऐसा हम नहीं मानते। हम तो यही मानते हैं कि समाज शास्त्र और मनुष्य जीवन के साथ उसे जोड़ देना चाहिए। इसलिए मुख्यतः-परमार्थतः लोगों से भी हम कहते हैं कि आइये, इसमें हिस्सा दीजिये। जब लोग समझ जायेंगे कि हमारा मुख्य विचार समाजशास्त्रीय है तब उन्हें इस यज्ञ के लिए बड़ी ही स्फूर्ति बड़ी ही प्रेरणा मिलेगी जैसे कि हमें मिली

है। हम रोज घूमते हैं जगह-जगह पर लोगों को समझाते हैं। हमें विश्वास है कि इससे यह बात बनेगी क्योंकि हम जानते हैं कि 'भारतीय समाजशास्त्र' में मुख्य बात सारे गाँव का एक परिवार बनाना और सारे विश्व का एक कुटुम्ब बनाना है। यह काम हमें करना है। हम सारे गाँव का एक परिवार बनायेंगे यह हमारी बुनियाद होगी और सारे विश्व का एक कुटुम्ब बनायेंगे, यह शिखर होगा। इस तरह विश्व-कल्याण का मन्दिर बनेगा। मन्दिर बनाने का आरम्भ होता है तो बुनियाद से ही होता है शिखर से नहीं। इसलिए गाँव की कुल जमीन और संपत्ति गाँव की होनी चाहिए। बुनियाद बनाने का यह काम हमें करना है और उसका आरम्भ छठा हिस्सा संपत्ति-दान तथा भूदान से होता है।

कम्युनिस्ट भूदानवाले बनेंगे

इस तरह अगर कम्युनिस्ट लोग भारतीय परिस्थिति और भारतीय संस्कृति का कुछ विचार करें तो उनके ध्यान में आ जायगा कि भारतवर्ष में यह बहुत ही कारगर तरीका है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि अहिंसा पर बुनियादी विश्वास हो। आज अहिंसा के बारे में बहुत ज्यादा मतभेद की गुंजाइश नहीं। जब ऐटम बम और हाइड्रोजन बम बन गये तब अहिंसा पर विश्वास रखे बगैर चारा ही नहीं। इसीलिए कम्युनिस्ट भाई भी आजकल विश्वशान्ति की बात करते हैं। कारण हिंसा का विचार इनके आगे टिक नहीं सकता ऐसी परिस्थिति निर्माण हुई है। वैसे कम्युनिस्ट लोग गरीबों के लिए प्रेम भी रखते हैं। अब अगर उन्हें अहिंसा की और विश्वशान्ति की बात समझ में आ जाय, तो हम देखते हैं कि निकट भविष्य में सब कम्युनिस्ट भूदानवाले बन जायेंगे। इसलिए हमारा जो मिशन है उसके बारे में हमें बहुत निष्ठा और विश्वास है।

बेगुनिया
५-३-५५

मैंने देखा कि नयी तालीम से जो अपेक्षाएँ की जाती हैं, वे पूरी नहीं हो रही हैं। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थियों में भी कुछ असन्तोष-सा है। आसाम में कांग्रेस ने नयी तालीम के बारे में प्रस्ताव किया। पण्डित नेहरू ने वह उसे रखा। 'इस साल के बाद नयी तालीम ही सरकारी तालीम होगी' यह उसमें कहा गया है। इसलिए आज नयी तालीम के जो स्कूल चलते हैं, वे नमूने के होने चाहिए। तब उनसे जो अपेक्षा की जाती है, वह पूरी होगी और हिन्दुस्तान भर में उसका अनुकरण होगा। नहीं तो करेंगे कुछ, और चलेगा कुछ! आज के बेसिक याने 'स्कूल' इस तरह चलते हैं कि उनसे नरसिंहावतार ही बनना होगा—न पूरा मानव, न पूरा पशु। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम लोग कुछ नमूने के विद्यालय चलायें। लेकिन इसका मानी क्या है, इस बारे में चित्त में सफाई होनी चाहिए।

दूषित कल्पनाएँ

बहुत-से लोग समझते हैं कि लड़कों को थोड़ा-सा उद्योग दिया, कुछ चरखा चलाया, तो नयी तालीम हो गयी। कुछ लोग समझते हैं कि ज्ञान की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया तो नयी तालीम हो गयी और कुछ लोग समझते हैं कि ज्ञान का काम के साथ जोड़ पैदा किया तो नयी तालीम हो गयी। फिर वह जोड़ सहज रूप से बैठता है या नहीं, इस तरफ ध्यान देने की भी जरूरत नहीं। किन्तु ये तीनों कल्पनाएँ दूषित हैं।

उद्योग में प्रवीणता

नयी तालीम के विद्यार्थियों को कुछ थोड़ा-सा उद्योग देने से काम न चलेगा। नयी तालीम के लड़के तो उद्योग में इतने प्रवीण होंगे कि जैसे मछली पानी में तैरती है, वैसे ही काम करेंगे। हमारे लड़कों में यह हिम्मत आनी चाहिए कि

हम चार घण्टे उद्योग कर अपने पेट के लिए। कुछ लोग नमूने के तौर पर थोड़ा-सा कातना बुनना जान लिया, इतने भर से काम न चलेगा। कुछ लोग कह सकते हैं कि हमें उद्योग में प्रवीण होने की क्या जरूरत? हम तो स्कूल में पढ़ानेवाले हैं। माँ छोटे बच्चों को सिखाती है कि खाना कैसे खाया जाता है। जब वे सीख जाते हैं, तो यह नहीं कहा जाता कि जब वे खाने की कला सीख गये, तो फिर उन्हें खाने की क्या जरूरत? खाने का ज्ञान हुआ इतने से काम पूरा नहीं होता मनुष्य को हर रोज खाना मिलना ही चाहिए। जिस तरह मनुष्य के लिए खाना नित्य की चीज है, उसी तरह नयी तालीम के शिक्षकों को और लड़कों को भी नित्य चार घण्टे शरीर-परिश्रम करना चाहिए। उन्हें उद्योग में इतना प्रवीण होना चाहिए कि गाँव के बढ़ई किसान आदि उनके पास सीखने आयें। औजारों में सुधार करने की कला भी उन्हें हासिल होनी चाहिए। उन्हें खेती का आचार्य बनना चाहिए। आज ग्रामोद्योग टूट गये हैं, इसलिए नयी तालीम के जरिये ग्रामोद्योगों को फिर से खड़ा करना है।

ज्ञान या तो सोलह आने या शून्य

नयी तालीम में पुस्तकों का महत्त्व नहीं है, इसलिए ज्ञान की उपेक्षा नहीं की जाती। अक्सर माना जाता है कि इसमें तो जितना सहज ज्ञान मिलेगा उतना ही बस है। लेकिन यह खयाल गलत है। नयी तालीम में जीवन की सभी बुनियादी चीजों का पूरा ज्ञान होना चाहिए। सन्-संवत्, थोड़ा इतिहास और निकम्मे राजाओं की नामावली याद रखने की कोई जरूरत नहीं है। उससे तो विद्यार्थियों के सिर पर नाहक बोझ बढ़ता है। लेकिन जीवन के जो बुनियादी विचार हैं, जिनसे हमारा जीवन नियन्त्रित होता है, उनका ज्ञान जरूरी है। तत्त्वज्ञान धर्म-विचार नीति-विचार, इन सबकी जानकारी आवश्यक है। हमारे समाज की और दूसरे समाज की विशेषताएँ क्या हैं, इसका भी ज्ञान होना चाहिए। विज्ञान के मूलभूत विचार लड़कों को मालूम होने चाहिए। उन्हें आरोग्यशास्त्र आहारशास्त्र स्वच्छता रसोईशास्त्र आदि का उत्तम ज्ञान होना चाहिए। इस तरह नयी तालीम में ज्ञान की कोई कमी न होनी चाहिए। भाषा का भी उत्तम ज्ञान होना चाहिए।

इस समय ज्ञान चल रहा है या उद्योग यही हमारी पद्धति होगी। ज्ञान और कर्म में फर्क नहीं किया जायगा। ज्ञान की प्रक्रिया चलती है, तो कर्म की भी प्रक्रिया चलेगी और कर्म की प्रक्रिया चलती है, तो ज्ञान की भी प्रक्रिया चलेगी। कर्म और ज्ञान एक-दूसरे से इतने ओतप्रोत होंगे कि किसी भी तरह का जोड़ बैठाने का काम न लिया जायगा। बाहर से ज्ञान लेने की बात नहीं रहेगी। उद्योग के जरिये ही ज्ञान का विकास किया जायगा और ज्ञान के जरिये ही उद्योग का। यही हमारी पद्धति है। ज्ञान और कर्म की सिलाई कर जो पद्धति बनायी जायगी वह हमारी नहीं होगी। हमारी पद्धति में तो ज्ञान और कर्म एक-दूसरे में ओतप्रोत रहेंगे।

नयी समाज रचना ही लक्ष्य

नयी तालीम के बारे में जो गलतफहमियाँ हैं, उनके बारे में मैंने अभी कहा। अब एक महत्त्व की बात कहूँगा। नयी तालीम आज की समाज-रचना कायम रखकर नहीं दी जा सकती। आज की समाज-रचना के साथ नयी तालीम का पूरा विरोध है। अगर कोई कहे कि नयी तालीम तो तालीम का एक प्रकार है उद्योग के जरिये तालीम देने की एक पद्धति है तो ऐसा कहना गलत है। नयी तालीम तो नये समाज का ही निर्माण करेगी। आज की समाज-रचना में ही नयी तालीम को बैठाया जाय और शिक्षकों की तनख्वाह में फर्क बैसी रहे डिग्री के के अनुसार तनख्वाह दी जाय, यह सब उसमें नहीं चलेगा। अगर नयी तालीम में ही शिक्षकों की तनख्वाह में फर्क रहा तो 'स्टेट' में कैसे अमल होगा? आज तो 'स्टेट' का जो सारा ढाँचा बना है उसमें योग्यता के अनुसार तनख्वाह दी जाती है, दर्जे बने हुए हैं। नयी तालीम इसे खतम कर देगी। अगर नयी तालीम का उसके साथ विरोध नहीं आता और नयी तालीम उसे नहीं तोड़ती तो वह नयी तालीम ही नहीं। नयी तालीम में शारीर-परिश्रम और मानसिक परिश्रम की नैतिक और आर्थिक योग्यता समान मानी जायगी। इसका मतलब है कि आज की कुल आर्थिक रचना ही हमें बदलनी है और उसे बदलने के लिए ही नयी तालीम है।

रामपुरमठ (पुरी)
१०-२-५५

अपने विचार ठीक ढंग से प्रकाशित करने की कला मालूम होनी चाहिए। अक्षर सुन्दर होने चाहिए, साहित्य का ज्ञान होना चाहिए। इस तरह हमारी तालीम में ज्ञान की कमी नहीं होगी, लेकिन निकम्मा ज्ञान न होगा।

आजकल की युनिवर्सिटियों में विद्यार्थियों के सिर पर नाहक निकम्मे ज्ञान का बोझ डाला जाता है और कहते हैं कि ३३ प्रतिशत नम्बर मिले, तो पास होंगे। इसका मतलब है कि ६७ प्रतिशत भूलने की गुंजाइश रखी गयी है। वास्तविक ज्ञान में तो १०० प्रतिशत पास रहना चाहिए। जो रसोइया ८० प्रतिशत अच्छी रोटी बना सकता है उसे कौन नौकरी देगा? ज्ञान में कच्चापन न होना चाहिए। ज्ञान या तो है या नहीं है। सोलह आना है या नहीं है। क्या यह हो सकता है कि कोई मनुष्य ८० प्रतिशत जिन्दा है और २० प्रतिशत मरा? अगर वह जिन्दा है तो पूरा जिन्दा है और मरा है, तो पूरा मरा। बीस-तीसवाली बात ज्ञान में नहीं चलती। ज्ञान तो पूरा और निश्चित होना चाहिए, संशययुक्त नहीं। लेकिन हमारे विश्वविद्यालयवालों ने ६७ प्रतिशत भूलने की गुंजाइश रखी है, क्योंकि वे भी जानते हैं कि निकम्मा ज्ञान सिखाया जाता है। नयी तालीम में इस तरह भूलने की गुंजाइश न होगी। जितना भी सिखाया जायगा, उतना सब का सब रखने लायक होगा और विद्यार्थी सब याद रखेगा, क्योंकि वह ज्ञान जीवन में काम आयेगा। वास्तव में जो क्रिया होती है, उसे मनुष्य भूलता नहीं और जिसे भूलता है, वह क्रिया नहीं है। इस तरह नयी तालीम में हम ऐसी क्रिया सिखायेंगे जो भूली नहीं जा सकती। नयी तालीम पाकर तो महाज्ञानी लोग निकलने चाहिए।

ज्ञान और उद्योग का समवाय

अब ज्ञान और काम का जोड़ करने की बात लीजिये। हमने तो 'समवाय' शब्द बनाया है। जैसे मिट्टी और घड़ा। ये दोनों एक-दूसरे में इतने ओतप्रोत हैं कि उनका अलगाव ही नहीं बताया जा सकता और न कल्पित ही। इस तरह जहाँ द्वैत और अद्वैत का निश्चय नहीं होता, उस सम्बन्ध को 'समवाय' कहते हैं। जिस शिक्षा-पद्धति में ज्ञान और उद्योग का समवाय होगा और हम पता न लगा सकें कि

इस समय ज्ञान चल रहा है या उद्योग वही हमारी पद्धति होगी। ज्ञान और कर्म मे फर्क नहीं किया जायगा। ज्ञान की प्रक्रिया चलती है तो कर्म की भी प्रक्रिया चलेगी और कर्म की प्रक्रिया चलती है तो ज्ञान की भी प्रक्रिया चलेगी। कर्म और ज्ञान एक-दूसरे से इतने ओतप्रोत होंगे कि किसी भी तरह का जोड़ बैठाने का काम न किया जायगा। बाहर से ज्ञान लेने की बात नहीं रहेगी। उद्योग के जरिये ही ज्ञान का विकास किया जायगा और ज्ञान के जरिये ही उद्योग का। यही हमारी पद्धति है। ज्ञान और कर्म की शिक्षा" कर जो पद्धति बनायी जायगी वह हमारी नहीं होगी। हमारी पद्धति मे तो ज्ञान और कर्म एक-दूसरे मे ओतप्रोत रहेंगे।

नयी समाज-रचना ही लक्ष्य

नयी तालीम के बारे मे जो गलतफहमियाँ हैं उनके बारे मे मैंने अभी कहा। अब एक महत्त्व की बात कहूँगा। नयी तालीम आज की समाज-रचना कायम रखकर नहीं दी जा सकती। आज की समाज-रचना के साथ नयी तालीम का पूरा विरोध है। अगर कोई कहे कि नयी तालीम तो तालीम का एक प्रकार है उद्योग के जरिये तालीम देने की एक पद्धति है तो ऐसा कहना गलत है। नयी तालीम तो नये समाज का ही निर्माण करेगी। आज की समाज-रचना में ही नयी तालीम को बैठाया जाय और शिक्षकों की तनख्वाह" मे कम ज्यादा रहे डिग्री के के अनुसार तनख्वाह दी जाय यह सब उसमें नहीं चलेगा। अगर नयी तालीम में ही शिक्षकों की तनख्वाह" मे फर्क रहा तो स्टेट में कैसे बन्द होगा? आज तो 'स्टेट' का जो सारा मन्त्र बना है उसमें योग्यता के अनुसार तनख्वाह की श्रेणी है बने बने हुए हैं। नयी तालीम इसे खतम कर देगी। अगर नयी तालीम का उसके साथ विरोध नहीं आता और नयी तालीम उसे नहीं तोड़ती तो वह नयी तालीम ही नहीं। नयी तालीम में शरीर परिश्रम और मानसिक परिश्रम की नैतिक और आर्थिक योग्यता समान मानी जायगी। इसका मतलब है कि आज की कुल आर्थिक रचना ही हमें बदलनी है और उसे बदलने के लिए ही नयी तालीम है।

रामकृष्णपुरम (पुरी)
१०-३-'५५

[कन्या के बीच विनोबाजी ने चर्चा के सिलसिले में संचित किया अर्थ-पूर्ण सात अनमोल उपदेश-रत्न प्रकट किये। ये सातों उपदेश भूदान यज्ञ की पूरी पार्श्वभूमि पर व्यापक प्रकाश डालते हैं।]

खिलाकर खाइये

उड़ीसा के जिन गाँवों में अपना सर्वस्वदान दे दिया गया है, वहाँ के गाँववालों ने अभी तक इसे देखा तक नहीं और न उन्हें देखने की जरूरत ही है। क्रांति तो तब होती है, जब कुल समाज देने को खड़ा होता है। हम जमीन माँगते हैं और जमीन पर पैदल चलते हैं लेकिन हमारी श्रद्धा हवा पर चलती है। यह हवा फैल जायगी तो देखते-देखते काम पूरा हो जायगा। उसमें कोई गणित या हिसाब की बात न रहेगी। हिंदुस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है कि हर मनुष्य में एक ही आत्मा विराजमान है। यह समझ लेंगे कि जब सबमें एक ही आत्मा है तो आत्मा के सिवा दूसरी कोई सत्ता नहीं हो सकती। सारी चिंता सारे झगड़े झमेले संभव इसीलिए हैं कि हमने अपने सिर पर मालकियत उठा ली है। अगर हम उसे नीचे पटक दें तो बड़े प्रेम से परमेश्वर का ध्यान करते और उसका दिया हुआ खाना खायेंगे जैसे कि पक्षी खाते हैं।

इसके लिए कार्यकर्ताओं को अब आत्मज्ञान की तरफ ध्यान देना चाहिए। इतना बुनियादी जीवन-परिवर्तन का कार्य केवल बाहरी विचार से नहीं हो सकता। हमें यही समझना और समझाना होगा कि एक ही आत्मा सारे मानव-समाज में व्याप्त है इसलिए उसको खिलाकर ही खा सकते हैं, खिलाकर ही पी सकते हैं, सबको सुखी बनाकर ही सुखी बन सकते हैं। दूसरों के सुख से ही हम सुखी हो सकते हैं, दूसरों के दुःख से दुःखी हो सकते हैं। दूसरों को दुःखी रखकर हम कभी सुखी नहीं हो सकते।

नैतिक और भौतिक उन्नति साथ-साथ।

अक्सर पूछा जाता है कि क्या नैतिक और भौतिक उन्नति साथ-साथ हो सकती है? वास्तव में दोनों में कोई विरोध नहीं बल्कि दोनों मिलकर एक ही चीज बनती है। दूसरे की मदद करना बहुत बड़ा धर्म-कर्म है, उससे चित्त-शुद्धि होती है। यह बात देश को भी लागू होती है। अगर हिन्दुस्तान दूसरे देशों को लूटकर अपने देश को सम्पन्न बनाने की बात सोचे तो भौतिक उन्नति के साथ ही आध्यात्मिक पतन भी होगा। और जहाँ आध्यात्मिक पतन होगा वहाँ भौतिक उन्नति भी ज्यादा दिन टिक न सकेगी। फिर देशों के बीच लड़ाइयाँ शुरू हो जायेंगी और साथ-साथ भौतिक अवनति भी। इसके विपरीत भू-दान-यज्ञ के जरिये लोगों में सद्भावना निर्माण होगी यानी आध्यात्मिक उन्नति होगी। जब गरीबों में जमीन बँटेगी तो वे उसमें से खूब फसल पैदा करेंगे यानी भौतिक उन्नति होगी। मनुष्य अपने सामाजिक कर्म परमेश्वर का अर्पण करता जाय तो भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। यही भक्ति-मार्ग की खूबी है।

आत्मा व्यापक और निर्भय

आज के अखबार में इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री चर्चिल साहब के बारे में एक खबर थी। उन्होंने पार्लमेंट के सदस्यों के सामने एक सन्दूक रखकर कहा कि जिस देश के हाथ में इस पेटीभर 'यूरेनियम' आयेगा वही देश सारी दुनिया पर शासन करेगा। किन्तु हमें दो सबक लेने होंगे पहला यह कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज में लीन करना और दूसरा यह समझना कि हम देह नहीं आत्मा हैं। इसलिए कोई हम देह को तकलीफ दे तो भी हम उसके वश न होंगे। भूदान-यज्ञ इन्हीं दो सिद्धान्तों पर खड़ा है—आत्मा व्यापक और निर्भय है। अगर हम इतना करेंगे तो फिर चाहे किसी देश के हाथ में सन्दूकभर 'यूरेनियम' आ जाय तो भी डरने का कोई कारण नहीं।

पक्षियों का भी हक है

भूमि ईश्वर की देन है। उस पर मनुष्य का ही नहीं पशु-पक्षियों का भी

[यात्रा के बीच विनोबाजी ने पत्रों के सिलसिले में उड़ीसा [illegible] पूछे सात अनमोल उपदेश-रत्न प्रकट किये। ये सभी उपदेश भूदान-यज्ञ की पूरी पार्श्वभूमि पर व्यापक प्रकाश डालते हैं।]

खिलाकर खाइए

उड़ीसा के जिन गाँवों में अपना सर्वस्वदान दे दिया गया है, वहाँ के गाँववालों में अभी तक हमें पैसा तक नहीं और न उन्हें देने की जरूरत ही है। जमीन तो बन होती है, पर कुछ सम्पत्ति देने को ऐसा होता है। हम जमीन माँगते हैं और जमीन पर पैदल चलते हैं, लेकिन हमारी श्रद्धा हवा पर आधारित है। यह हवा फैल जायगी तो धीरे-धीरे काम पूरा हो जायगा। इसमें कोई गणित या हिसाब की बात न रहेगी। हिन्दुस्तान का बच्चा-बच्चा जानता है कि हर मनुष्य में एक ही आत्मा विराजमान है। जब समझ लिया कि सब लोगों में एक ही आत्मा है तो प्रेम के सिवा दूसरी कोई सत्ता नहीं हो सकती। सारे विश्व के सारे क्लेश आज संभव इसीलिए हैं कि हमने अपने सिर पर मालकियत उठा ली है। अगर हम उसे नीचे पटक दें तो सारे प्रेम से परमेश्वर की संतान बनते और उसका दिया हुआ खाते जैसे कि पक्षी खाते हैं।

इसके लिए कार्यकर्ताओं को अब आत्मज्ञान की तरफ ध्यान देना चाहिए। इतना क्रांतिकारी जीवन परिवर्तन का कार्य केवल बाहरी विचार से नहीं हो सकता। हमें यही समझना और समझाना होगा कि एक ही आत्मा सारे मानव-समाज में व्यापक है, इसलिए सबको खिलाकर ही खा सकते हैं, पिलाकर ही पी सकते हैं, सबको सुखी बनाकर ही सुखी बन सकते हैं। दूसरों के सुख से ही हम सुखी हो सकते हैं, दूसरों के दुःख से दुःखी हो सकते हैं। दूसरों को दुःखी रखकर हम कभी सुखी नहीं हो सकते।

'मानपुर' का आस्ट्रेलिया पर आक्रमण

सर्वोदय विचार की यही खूबी है कि वह किसी संघ बिना, यह अकेला भी उस पर अमल कर सकता है। एक शख्स भी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए सारी दुनिया के खिलाफ खड़ा हो सकता है। यही सत्याग्रह का तत्त्व है जिसका उदय इस देश में हुआ है। इन दिनों जब शस्त्र छोड़ने की बात चलती है तो हर राष्ट्र यही कहता है कि सामनेवाला शस्त्र छोड़ेगा तभी मैं छोड़ूँगा। इस तरह इधर शस्त्र बढ़ते जा रहे हैं और उधर शान्ति की बातें चलती हैं। यह दुष्चक्र (Vicious Circle) तभी टूट सकता है, जब कोई एक व्यक्ति, गाँव या समाज हिम्मत कर आगे बढ़े।

दुनिया का हर मनुष्य हर देश का नागरिक है यह भारत का विचार है। भूदान का यह विचार अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में फैलेगा जिसका नेतृत्व यहाँ के गाँव करेंगे। इसीलिए मैं कहता हूँ 'मानपुर' (उड़ीसा का पहला ग्रामदान) का आक्रमण आस्ट्रेलिया पर होनेवाला है।

मथुरा में पैसा है या कंस भी

हम चाहते हैं कि हर गाँव गोकुल बने। गाँववाले सारे गाँव का एक परिवार मानकर प्रेम से, मिल जुलकर रहें। गाँव की जमीन सबकी बन जाय। सब मिल जुलकर काम करें और बाँटकर खायें। गाँव के सब बच्चों को खूब दूध, दही मक्खन खाने को मिले जैसे गोकुल के ग्वालबालों को मिलता था। आज गाँव वाले खुद दूध मक्खन आदि पैदा करते हैं पर बच्चों को खिलाते नहीं और न खुद ही खाते हैं। वे उसे शहरों में जाकर बेच आते हैं। हम चाहते हैं कि दूध मक्खन पहले अपने बच्चों को खिलायें बाद और बचा हुआ बेचा करें। लेकिन आज गाँववाले (गाँववालों को) दूध मक्खन बेचना पड़ता है क्योंकि बाहर जैसी अच्छी जरूरत की चीजें खुद नहीं बनाते। कपास पैदा करते हैं परंतु उसे बेचते हैं और शहरवालों का बनाया मिल का कपड़ा खरीदते हैं। तिलहन पैदा करते हैं पर उसे बेचकर बाहर का तेल खरीदते हैं। गन्ना पैदा करते हैं पर उसे बेचकर चीनी खरीदते हैं। होना तो यह चाहिए कि कपास पैदा कर खुद

अधिकार है। भारत का गरीब किसान भी इसे मानता है। एक बार एक गरीब विधवा बहन मुझे अपना दुःख सुनाने आयी। उसका इकलौता बच्चा मर गया था। उसके पास एक खेत था जिसमें वह खुद मेहनत कर फसल पैदा करती थी। लेकिन वह फसल की रक्षा नहीं कर पाती थी। चिड़ियाँ आकर उसे खा जाती थीं। अपना दुःख सुनाते हुए उसने चिड़ियों की बात कही। कहते-कहते बोल उठी : 'चिड़ियों को भी तो भगवान् ने ही पैदा किया है। उनका भी खाने का अधिकार है।'

एक बार मैं सुबह घूमने जा रहा था। एक किसान पंछियों से खेत की रक्षा करता मचान पर बैठा था। सूर्योदय की बेला थी। मैंने देखा कि वह हाथ-पर हाथ धरे बैठा था और चिड़ियाँ फसल खा रही थीं। जब मैंने उससे पूछा कि 'तू इन्हें उड़ाता क्यों नहीं?' तो वह फौरन बोला : 'अभी सूरज उग रहा है। यह राम-प्रहर है। अभी थोड़ी देर इन्हें खा लेने दीजिये। फिर उड़ाऊँगा।' हिन्दुस्तान की सभ्यता कितनी गहरी है, उसका दर्शन गरीब किसान के इस बयान से होता है।

तीन बल

हमारे आन्दोलन के पीछे तीन बल हैं। पहला बल है, सत्य। यह सत्य है कि जमीन की मालकियत नहीं हो सकती। जमीन सबके लिए है। इसलिए जो काश्त करना चाहते हैं, उन्हें जमीन मिलनी चाहिए। यह केवल मानवीय सत्य नहीं, बल्कि ईश्वरीय सत्य है। ईश्वर ने जो सम्पत्ति दी है उस पर उसके सब पुत्रों का समान अधिकार है। हमारा दूसरा बल है भूमिहीन किसानों की तकलीफ। वे रात-दिन खेतों में खटते रहते हैं, फिर भी जिन्हें मेहनत का पूरा फल नहीं मिलता। तकलीफ कभी निष्फल नहीं जाती। तीसरा बल है, भूमिवानों के, श्रीमानों के, मालदारों के हृदय का प्रेम और उदारता। हमें विश्वास है कि वे हमारी माँग को पहचानेंगे। भले ही आज वे एक प्रवाह में बह रहे हों फिर भी उनका हृदय अन्दर से सिकुड़ा नहीं है। भारत में दान की एक महान् परम्परा ही रही है।

आदि चीजें गाँव में ही बनें। आज आप कपड़ा बनाते नहीं, इसलिए कपड़ा खरीदने के लिए पैसा चाहिए। पैसा कहाँ से आये? लाचार हो पैसे के लिए दूध, मक्खन बेचना पड़ता है। अगर आप अपना कपड़ा खुद बना लेंगे, तो आपको मक्खन बेचना न पड़ेगा।

आज हर किसान पैसे के पीछे पड़कर अपनी अच्छी-से-अच्छी चीजें बेचता है। मथुरा में भी झगड़ा शुरू होता था। कृष्ण भगवान् यशोदा मैया से कहते कि 'मक्खन तो बच्चों को खाने के लिए है।' तो यशोदा मैया उन्हें समझातीं: 'बेटा! मक्खन खाने की चीज नहीं, बेचने की चीज है। मथुरा जाकर मक्खन बेचूँगी, तो पैसा मिलेगा।' इस पर कृष्ण भगवान् माँ से कहते: 'मथुरा में पैसा है, तो कंस भी है। क्या तू कंस को पसंद करती है? अगर पैसा चाहिए, तो कंस को भी मानना पड़ेगा।' हम भी गाँववालों को यही समझाते हैं कि पैसे की माया में मत पड़ो। खूब दूध, घी, फल, तरकारियाँ पैदा करो। बच्चों को खिलाओ, खुद खाओ और फिर बचा हुआ बेचो। आज तो आप शहरों में दूध, मक्खन बेचने जाते हैं, तो शहरवाले चाहे जितने कम दाम में आपसे उन्हें खरीद लेते हैं, क्योंकि चार-छह मील चलकर शहर के बाजार में आने पर आप बिना बेचे तो वापस नहीं जा सकते। लेकिन गाँव का परिवार बनाओगे, गाँव में उद्योग खड़े करोगे, मिल-जुलकर रहोगे, तो फिर शहरवाले खुद होकर आपके पास दूध, घी माँगने आयेंगे। फिर आप उनसे कहेंगे कि 'चाहे जितने पैसे दोगे, तो भी आपको मक्खन नहीं देंगे, वह तो हमारे बच्चों के खाने के लिए है।' फिर वे बहुत आग्रह करेंगे, तो भी आप उनसे कहेंगे कि 'सिर्फ बचा हुआ आधा सेर मक्खन मिल सकता है और वह भी दस रुपये सेर के दाम से।' इस तरह हमारा विचार समझकर उस पर अमल करोगे, तो आपकी ताकत बढ़ेगी और आप सुखी होंगे।

और किसकी हालत के विषय में शंकाकुल मन से पत्र निकाले जाते हों। किसी दिन अच्छा पत्रक निकला, तो चिन्ता कुछ कम हो जाती है और किसी दिन खराब निकला तो चिन्ता बढ़ती है—ऐसी हालत आज दुनिया की है। दुनिया के महापुरुषों को इस बात की बड़ी चिन्ता है कि यहाँ (दुनिया में) अशान्ति की ज्यादा प्रगति न हो। इसलिए उनकी कोशिशें हो रही हैं और उन्हें कुछ यश भी मिल रहा है, यह खुशी की बात है। किन्तु इस रोगी का जो रोग है, वह एक बुनियादी या मूलभूत रोग है। ऊपर-ऊपर की दवा से भले रोगी को थोड़ी देर के लिए कुछ सान्त्वना, कुछ राहत मिले, पर उस रोग से तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती, जब तक इस मूल रोग के परिहार का उपाय न ढूँढ़ा जाय।

अहिंसा निर्भयता का पर्याय

दुनिया में बहुत बातें बढ़ रही हैं। विज्ञान के युग ने न केवल मनुष्य के हाथ में शक्ति दी, बल्कि शक्तियों के हाथ में मनुष्य को भी दे दिया है। मनुष्य शक्ति का इस्तेमाल करे, यह एक हालत है। लेकिन शक्ति ही मनुष्य को नचावे, उस पर मनुष्य का काबू न चले, उलटा वही मनुष्य पर काबू चले, यह दूसरी हालत है। आज दुनिया इसी दूसरी हालत में पहुँची है। शायद यह कहना अत्युक्ति न होगी कि जहाँ तक हम जानते हैं, मानव के इतिहास में यह पहला ही मौका है, जब कि दुनिया में इतने बड़े पैमाने पर भय मानसा फैली हुई हो। हम लोगों ने माना है कि लोगों को सुख हो, उन्हें सब प्रकार की सहूलियतें हासिल हों, कुछ गुण भी हों, लेकिन सबसे बढ़कर जीवन-व्यवहार में अभय होना है। आज सर्वत्र अभय का अभाव दीख रहा है, सारी दुनिया भयभीत है। उसकी यह भयभीतता न मिटेगी, अगर मानव में निर्भयता पैदा न हो। और यह निर्भयता भी शस्त्रास्त्र पैदा करके नहीं हो सकती। बिल्ली चूहे के सामने शेर साबित होती है, लेकिन कुत्ते के सामने तो बिल्ली ही बन जाती है। शेर भी रसशेषा के सामने शेर साबित होता है, लेकिन कोई बन्दूकवाला मिल जाय, तो उसके सामने बिल्ली बन जाता है—भाग जाता है। अपरंच निर्भयता नाखूनों और दाँतों के आधार पर नहीं होती, वह तो आत्मिक आधार पर होती है। यह

उसी आत्मिक शक्ति से आयेगी, जिसे हम मर्यादित भाषा में 'नैतिक शक्ति' या अधिक स्पष्ट और शुद्ध भाषा में अहिंसा की शक्ति कह सकते हैं। अहिंसा का निर्भयता के साथ गहरा सम्बन्ध है, दोनों एकरूप ही हैं। अगर कोई अहिंसक दीख पड़े—बाहे ऊपर से हिंसा करता हुआ न दीखे—लेकिन उसके मन में डर हो तो वह अहिंसक है ही नहीं। अहिंसा निर्भयता का वचन है। इसके विपरीत कोई वीर पुरुष दीख पड़ता हो, शस्त्रों के आधार पर उसकी वीरता का प्रदर्शन हो रहा हो फिर भी वह कायरता ही है। वह आत्मा के अन्दर शक्ति महसूस नहीं करता इसीलिए शस्त्रों का आधार लेता है।

निर्भयता के लिए मन-परिवर्तन जरूरी

दुनिया को निर्भय बनाने के लिए हमें अपने को निर्भय बनाना होगा। यह कार्य शस्त्र-संहार बढ़ाने की दिशा में जाने से नहीं हो सकता बल्कि उससे उल्टी दिशा में जाने से ही होगा। 'उल्टी दिशा में जाने' का अर्थ कोई अगर इतना ही करे कि 'हमें शस्त्रास्त्रों के त्याग का कार्यक्रम शुरू करना चाहिए' तो वह ठीक नहीं। शस्त्रास्त्र-त्याग के उस बाह्य कार्यक्रम से निर्भयता नहीं आयेगी। निर्भयता के लिए मनुष्य के अभी तक बने मन में बदल करना होगा। अगर हम आज की मनो-वृत्तियों को प्रमाण मानकर चलें तो आजकल के युग में निर्भयता नहीं आ सकती है। तब तो हम चिन्ता और व्याकुल रहेंगे। हमारी अवस्था शोचनीय रहेगी। इसलिए हमें मन में ही परिवर्तन लाना होगा, नया मानव बनाना होगा, नये मूल्यों की स्थापना करनी होगी और अपना जीवन बदलना होगा।

नया शब्द और जीवन में परिवर्तन

मैंने सुना कि आवड़ी में एक प्रस्ताव हुआ और एक शब्द Socialistic pattern of Society मिल गया, तो मुझे खुशी हुई कि जिन लोगों को शब्द की आवश्यकता थी, जो अपने को शब्द विहीन महसूस करते थे, उन्हें शब्द मिल गया, अब शक्ति बढ़ेगी। लेकिन इस शब्द से शक्ति बढ़ती है या नहीं बढ़ेगी या नहीं बढ़ेगी—इसका प्रमाण तो यही होगा कि इस शब्द के उच्चारण के बाद इसे उच्चारण करने या मान्य करनेवाला ने अपने जीवन में कुछ परिवर्तन करना

शुरू किया था नहीं। इस प्रस्ताव के पहले मेरा जो जीवन था, वही अगर प्रस्ताव के बाद भी जारी रहा, तो मैं आशा नहीं कर सकता कि इस शब्द से हिन्दुस्तान और दुनिया में कोई चमत्कार हो सकेगा। तब तो यह एक ऐसा शब्द होगा, जो प्रचलित स्थिति में अपने को बदल लेगा, उसका अर्थ हमें बतानेवाला व्यक्ति न होगा। दुनिया में कुछ ऐसे शब्द होते हैं, जो मानव को बचा लेते हैं, पर निर्भय नहीं बनाते। वैसा ही यह भी एक शब्द हो जायगा। चाहे इससे दुनिया में कुछ की प्रेरणा निर्माण हो, कुछ गुण बढ़ें, लेकिन वह निर्भय नहीं बना सकता। इसलिए हमारा पहला कार्यक्रम होगा, हमारे मन में परिवर्तन और दूसरा कार्यक्रम होगा हमारे जीवन में परिवर्तन। मैंने तो एक छोटी-सी कसौटी अपने सामने रखी है और मानता हूँ कि उसी कसौटी पर हमें अपने को कस लेना होगा। मैं अपने को पूछूँगा कि जब से यह शब्द आया, तब से मेरे जीवन में कितना फर्क पड़ा? मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं ऐसा हूँ, जिसका जीवन बदलने के लिए इस शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा जीवन परिपूर्ण है और इस शब्द के आने-जाने से उसमें कोई फर्क पड़ने की जरूरत नहीं। अगर एक नया शब्द मिला है, तो मेरे जीवन में फौरन परिवर्तन होना चाहिए। यह एक कसौटी मैं मानता हूँ। फिर उस शब्द का असर दुनिया पर हो सकता है।

हमारी कसौटी स्वयंशासन

आज हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग कहते हैं कि हम शान्ति चाहते हैं। हमारे नेता शान्ति के पक्ष में बोलते हैं, इसका हम गौरव महसूस करते हैं, और यह उचित भी है। माना जाता है कि हिन्दुस्तान शान्ति के पक्ष में है। हमारे राष्ट्र के जैसे नीतिविशारद और तत्त्वज्ञानी महान् पुरुष हिम्मत के साथ दुनिया के सामने कुछ बातें रख रहे हैं। दुनिया से कह रहे हैं कि उसे किस दिशा में जाना होगा, क्या करना होगा? लेकिन हमें सोचना चाहिए कि क्या हम अपने देश में वह ताकत पैदा करने की दिशा में काम कर रहे हैं, जिससे समाज-जीवन से हिंसा मिटेगी और समाज-जीवन का आधार अहिंसा होगा? इसकी कसौटी यही होगी कि समाज के साथ हम शामिल होंगे। कुछ विचारों का शासन कबूल करेंगे और

अपने को उस शासन में रखेंगे। स्वयं शासित होने की दिशा में हम लोग कदम बढ़ा रहे हैं या नहीं यही हमारी कसौटी मानी जायगी।

आक्रमणकारी अहिंसा

आज अमेरिका के मन में रूस के लिए कुछ डर है और रूस के मन में कुछ डर है अमेरिका के लिए। हमारे मन में कुछ डर है पाकिस्तान के लिए और पाकिस्तान के मन में कुछ डर है हमारे लिए। सारांश क्या छोटे और क्या बड़े सभी देश एक-दूसरे से डर रखते हैं। तब क्या कोई देश अपनी ओर से निर्भय बन सकता है? हाँ हो सकता है। जैसा कि राजाजी ने कहा है कि "यूनी लेटरल ऐक्शन" याने अपनी तरफ से आक्रमणकारी अहिंसा, हम अहिंसा का आक्रमण करें। जैसे हिंसा का आक्रमण होता है वैसे ही अहिंसा का भी हो सकता है। आज नहीं तो कम-से-कम दस साल के अन्दर 'सारे शस्त्रास्त्रों का परित्याग कैसे हो' इस दिशा में हम अपने देश को ले जा सकते हैं—ऐसी हिम्मत हम अपने देश में ला सकते हैं। उस दिशा में काम कर हम दुनिया के सामने माथा ऊँचा कर सकते हैं। हमारी नैतिक शक्ति से दुनिया में शान्ति की स्थापना हो सकती है।

विज्ञान की दिशा

हम नहीं समझते कि विज्ञान की खोजों को रोका जा सकेगा। उन्हें रोकने की जरूरत है ऐसा भी हम नहीं समझते। हम इतना ही मानते हैं कि वह नैतिक शक्ति के मार्ग-दर्शन में रहे। विज्ञान एक शक्तिमात्र है, उसमें बुद्धि नहीं है। शक्ति को बुद्धि के ताबे में रहना चाहिए। यह योजना हो जाय तो शक्तियाँ चाहे जितनी ही बढ़ें उससे कोई खतरा नहीं हो सकता बल्कि लाभ ही पहुँचता है। हम अहिंसा इसीलिए चाहते हैं। जहाँ तक मेरा ताल्लुक है दस साल से मेरा यह ख्याल रहा है कि अहिंसा के खिलाफ अगर कोई चीज खड़ी है, तो वह हिंसा नहीं हमारे मन की सनातन अवस्था है। इस मन को हम नष्ट करेंगे तो अहिंसा पनपेगी। विज्ञान के इस युग में दो ही रास्ते हैं, या तो हम विज्ञान बढ़ायें या उसे रोकें। अगर हम विज्ञान को रोकना चाहते हों तो कुछ थोड़ी हिंसा चल भी सकती है।

वैसे हर हालत में हिंसा से नुकसान तो होता ही है फिर भी पुराने जमाने में उससे कुछ काम भी होते थे। क्योंकि उस समय हिंसा सीमित थी उसका पैमाना छोटा था। उस समय विज्ञान इतना बढ़ा नहीं था इसलिए उस समय के साधु पुरुष भी हिंसा का उपयोग कर लेते थे। हिंसा का दुनिया के हित में प्रयोग करनेवाले कई साधु पुरुष हो गये हैं। किन्तु अगर हम आज विज्ञान को बढ़ाना चाहते हैं, तो हिंसा को रोकना ही पड़ेगा। विज्ञान तो हर हालत में बढ़ेगा ही; लेकिन अगर हम हिंसा को रोकेंगे तो वह लाभकारी दिशा में बढ़ेगा। नहीं तो विनाशकारी दिशा में बढ़ पहुँचेगा।

एक ही रास्ता

इसलिए हमें नैतिक शक्ति बढ़ानी होगी। परमेश्वर ने हिन्दुस्तान की हालत ऐसी की है कि यहाँ नैतिक शक्ति ही बढ़ सकती है, दूसरी शक्ति नहीं। हमारे इतिहास और सभ्यता ने हमें कुछ शक्ति दी है, कुछ मर्यादाएँ भी पैदा की हैं। उन्हें और हिन्दुस्तान की जन-संख्या देखते हुए हम कह सकते हैं कि आज की हालत में हिन्दुस्तान को या तो नैतिक शक्ति बढ़ानी चाहिए या तो निस्तेज हो जाना चाहिए। हमारे सामने यही रास्ता है। इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि हमें नैतिक शक्ति बढ़ानी होगी उस दिशा में काम करना होगा। हम कोई ग्रन्थ पढ़ते हैं, धर्म शास्त्रों का श्रवण करते हैं। इससे कुछ मानसिक बल मिल सकता है। परन्तु उतने से काम नहीं होगा। काम तो तब होगा जब हमारे समाज के आसन्न मसले के बड़े-बड़े मसले हल हों जिनके हल के बिना मानवता उठ नहीं सकती है। ऐसे मसले हमें शान्ति के तरीके से, प्रेम से या अहिंसा की ताकत से हल करने चाहिए।

भूदान का इतिहास

इसी बारे में सोचते सोचते यह भूदान-यज्ञ मुझे सूझा। अचानक ही यह बात सूझ ही एक गयी लेकिन उस बारे में बरसों से मेरा चिन्तन चलता रहा। मैं अभी उसका थोड़ा सा इतिहास कहूँगा। गांधीजी के प्रयाण के बाद मैं शरणार्थी

चिन्ता और प्रेम दोनों की सेवा के लिए दिल्ली पहुँचा। वहाँ कुछ अनुभव आये। पश्चिम पाकिस्तान से जो शरणार्थी आये, उनमें हरिजन भी बहुत थे। हरिजनों ने जमीन की माँग की। उन्हें जमीनें मिलनी चाहिए, इस बारे में कुछ चर्चा हुई। उनकी माँग मंजूर नहीं हो रही थी। आखिर पंजाब सरकार की तरफ से आश्वासन दिया गया कि हम हरिजनों के लिए कुछ लाख एकड़ जमीन देंगे। यह आश्वासन राजेन्द्र बाबू और दूसरे सज्जनों के समक्ष दिया गया जिनमें मैं भी एक था। वह शुक्रवार का दिन था। उसके बाद मुझे प्रार्थना के लिए राज घाट पर जाना था। वहाँ मैंने जाहिर किया कि बहुत खुशी की बात है कि पंजाब की सरकार ने हरिजनों के वास्ते जमीन देना मान्य किया है। इसलिए मैं पंजाब की सरकार का अभिनन्दन करता हूँ।

किन्तु उसके एक-दो महीने बाद दूसरी ही बात सुनने को मिली कि यह नहीं हो सकता। इसके कई कारण होंगे लेकिन हरिजन इससे बहुत दुःखी हुए। रामेश्वरी नेहरू को तीव्र वेदना हुई। वह मेरे पास आकर कहने लगीं कि हरिजन सत्याग्रह करना चाहते हैं तो क्या उन्हें सत्याग्रह करने देना चाहिए? उन्हें जमीन न देने में यह दलील दी गयी थी कि पाकिस्तान से जो शरणार्थी आये हैं, उनमें जिनके पास वहाँ जमीन नहीं थी उन्हें यहाँ भी वह नहीं दी जा सकती। जिस नमूने पर वे वहाँ रहते थे उसी नमूने पर यहाँ रह सकते हैं। वैसे हमारे पास जमीन ही कम है। इसलिए उनके पास वहाँ जितनी जमीन थी उतनी तो हम यहाँ नहीं दे सकते हैं, कुछ कम ही देंगे। इसलिए जिन हरिजनों को वहाँ बिलकुल जमीन नहीं थी उन्हें जमीन देना एक प्रकार का अन्याय होगा। यह दलील बलवान् थी या दुर्बल इसमें मैं न पड़ूँगा। परन्तु इतना तो सच ही है कि जो एक वादा किया गया वचन दिया गया वह टूट गया। मैं सोच में पड़ गया। मैंने हरिजनों से कहा कि देश की आज की हालत में मैं आपको सत्याग्रह करने की सलाह नहीं दे सकता। आपको इस मसले पर मैं अभी मदद नहीं पहुँचा पाया इसका मुझे दुःख है। लेकिन मेरे मन में यह बात, यह दुःख भावना रही कि कोई ऐसी युक्ति खोजनी चाहिए, जिससे बेजमीनों को जमीन मिले। इसी प्रसुप्त भावना को तेलंगाना में मौका मिल गया और एक आन्दोलन आरंभ हो गया।

भूदान से नया उत्साह

इन दिनों हमारे जो भाई रचनात्मक काम में लगे हैं और मेरी सलाह लेते हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि यह सारे रचनात्मक काम तो शाखा-पारिडल्स हैं टहनियाँ हैं और यह मूलमाही विचार है। इस जड़ को हम पकड़ रखेंगे तो इसके आधार से बाकी के सारे रचनात्मक काम और सर्वोदय-विचार फैलेंगे फूलेंगे। नहीं तो चार साल पहले सारे रचनात्मक काम करनेवालों में मायूसी फैल गयी थी यह आप जानते ही हैं। वे समझते थे कि इससे कुछ नहीं होगा। गांधीजी का विचार अभी हमारे सामने तो खतम हो गया। आगे कभी यह आ जाय तो आ सकता है, परन्तु अभी हमारे हाथ से कुछ नहीं होगा। कुछ लोगों ने तो हमसे यहाँ तक कहा कि 'हम यह प्रार्थना वगैरह न छोड़ेंगे क्योंकि आदत बनी है लेकिन हम समझ गये हैं कि ये चीजें हिन्दुस्तान में न चलेंगी। लेकिन आज चार साल के बाद मैं देखता हूँ कि मायूसी नहीं रही है और देश में उत्साह आ गया है। अगर हम इस उत्साह का ठीक उपयोग करें और इस दृष्टि से इस ओर देखें तो हम समझते हैं कि इससे देश में एक बड़ी चीज बनेगी।

दान-पत्र विश्व शान्ति के लिए वोट

मैंने जब यह कहा कि 'जो भूदान में प्रेम से और समझ-बूझकर जमीन देगा उसका दान विश्व-शान्ति के लिए वोट होगा—वह विश्व शान्ति में मदद करेगा' तो एक अखबार ने उस पर टीका करते हुए लिखा : "कभी-कभी विवेकी पुरुष का भी विवेक छूट जाता है और वे उत्साह में आकर या आन्दोलन के प्रवाह में बहते हुए कुछ ऐसी बातें बोलने लगते हैं। विनोबा ने कहा है कि भूदान से विश्व शान्ति स्थापित हो सकती है। पर विश्व-शान्ति के साथ भूदान का सम्बन्ध ही क्या है ? यह तो ऐसी ही बात हुई कि जैसे गांधीजी ने कहा था कि सारे कष्ट जो यह जो भूकम्प हुआ वह तुम्हारे और हमारे पाप का फल है और वह पाप है अस्पृश्यता। इसलिए उसे मिटाना हमारा कर्तव्य है। जैसे गांधीजी ने भूकम्प के साथ अस्पृश्यता को जोड़ दिया उसी कोटि का विनोबा का यह वाक्य है।" उस भूकम्पवाली बात में मैं नहीं पड़ना चाहता। उसमें भी कोई रहस्य

भूदान से दुनिया की नैतिक शक्ति बढ़ेगी

यह एक ऐसा मसला है, जो सारी दुनिया का बुनियादी है। हिन्दुस्तान के लिए तो है ही, लेकिन एशिया के दूसरे देशों में भी है। ऐसे मसले का अगर हम अहिंसात्मक तरीके से कुछ हल कर सकें, तो उससे अहिंसा की ताकत, नैतिक शक्ति बढ़ेगी। इसी दृष्टि से मैंने इसकी तरफ देखा है। इसके कई पहलू हैं। यह एक पेचीदा सवाल है। इसमें धार्मिक सवाल भी आते हैं। मैं आहिस्ता-आहिस्ता उनमें चिन्तन करता गया। देखा, भूदान-यज्ञ से बेज़मीनों को ज़मीन मिलती है, एक मसला हल होता है। इस काम का जितना महत्त्व है, उससे ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि एक तरीका हाथ में आया। अहिंसा की शक्ति निर्माण करने की एक युक्ति हमारे हाथ में लगी। इस युक्ति को हाथ से जाने न देना चाहिए, उसका पूरा उपयोग कर लेना चाहिए। इससे अहिंसा की शक्ति पर विश्वास बढ़ेगा और उसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान में ग्राम-स्वराज्य, आत्म-निष्ठा पैदा होगी। फिर दुनिया पर उसका असर हो सकेगा। फिर हम हिम्मत के साथ कह सकेंगे कि भारत की नैतिक शक्ति का दुनिया को बचाने में उपयोग होगा। इसी दृष्टि से इस काम की ओर देखिये।

मैं बार-बार कहता हूँ, मेरे सामने एक दर्शन ही है—जैसे मैं आँख से देखता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि अभी हमारे सामने दो साल की अवधि पड़ी है। इन दो सालों में भूमि के मसले का कुछ हल हो जाय, एक दर्शन पैदा हो जाय। जैसा मैंने कहा कि छठा हिस्सा ज़मीन हासिल हो, यह ज्यादा माँग नहीं है। इतना अगर हो जाय, तो उससे हमारी ताकत बढ़ेगी। और किसी विचार से इसकी तरफ मत देखिये। इससे अपने पक्ष के लिए क्या लाभ हो सकता है, व्यक्तिगत लाभ क्या हो सकता है, इस तरह न सोचते हुए केवल सेवा की भावना से देखिये। इससे अहिंसा की शक्ति बढ़ेगी, विश्व-शान्ति में मदद मिलेगी, ऐसी भावना से सब की सारी ताकतें दो साल के लिए इसमें लगाइये। मान लीजिये कि दो साल में हम इस मसले का हल निकाल लेते हैं, तो सारी दुनिया कबूल करेगी कि अहिंसा की शक्ति का सामाजिक क्षेत्र में आविर्भाव हो गया। उसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान के दूसरे मसले भी हल हो सकते हैं।

भूदान से नया उत्साह

इन दिनों हमारे जो भाई रचनात्मक काम में लगे हैं और मेरी सलाह लेते हैं, तो मैं उनसे कहता हूँ कि यह सारे रचनात्मक काम तो शाखा-पारिवस है इसलिए हैं और यह मूलभूत विचार है। इस पद को हम पकड़ रखेंगे तो इसके आधार से बाकी के सारे रचनात्मक काम और सर्वोदय-विचार फैलेंगे फूलेंगे। नहीं तो चार साल पहले सारे रचनात्मक काम करनेवालों में मायूसी फैल गयी थी यह आप जानते ही हैं। वे समझे थे कि इससे कुछ नहीं होगा। गांधीजी का विचार अभी हमारे सामने तो खतम हो गया। आगे कभी वह आ जाय तो आ सकता है, परन्तु अभी हमारे हाथ से कुछ नहीं होगा। कुछ लोगों ने तो इससे यहाँ तक कहा कि "हम यह प्रार्थना वगैरह न छोड़ेंगे क्योंकि आदत बनी है लेकिन हम समझ गये हैं कि ये चीजें हिन्दुस्तान में न चलेंगी। लेकिन आज चार साल के बाद मैं देखता हूँ कि मायूसी नहीं रही है और देश में उत्साह आ गया है। अगर हम इस उत्साह का ठीक उपयोग करें और इस दृष्टि से इस ओर रमें तो हम समझते हैं कि इससे देश में एक बड़ी चीज बनेगी।

दान-पत्र विश्व शान्ति के लिए वोट

मैंने जब यह कहा कि 'जो भूदान में प्रेम से और समझ-बूझकर जमीन देगा उसका दान विश्व-शान्ति के लिए वोट होगा—वह विश्व शान्ति में मदद करेगा' तो एक अखबार ने उस पर टीका करते हुए लिखा "कभी-कभी विवेकी पुरुष का भी विवेक छूट जाता है और वे उत्साह में आकर या आन्दोलन के प्रवाह में बहते हुए कुछ ऐसी बातें बोलने लगते हैं। विनोबा ने कहा है कि भूदान से विश्व शान्ति स्थापित हो सकती है। पर विश्व-शान्ति के साथ भूदान का सम्बन्ध ही क्या है? यह तो ऐसी ही बात हुई कि जैसे गांधीजी ने कहा था कि बिहार का भूकम्प यह तुम्हारे और हमारे पाप का फल है और वह पाप है अस्पृश्यता। इसलिए उसे मिटाना हमारा कर्तव्य है। जैसे गांधीजी ने भूकम्प के साथ अस्पृश्यता को जोड़ दिया उसी कोटि का विनोबा का यह वाक्य है।" इस भूकम्पवाली बात में मैं नहीं पड़ना चाहता। उसमें भी कोई गहरा

है या नहीं यह एक गहरा विचार है। फिर भी मैं यह नम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि मेरी मिसाल उस भूकम्प वाली मिसाल की कोटि की नहीं।

भारत की शक्ति : नैतिक शक्ति

तो आज हिन्दुस्तान में आशा पैदा हुई है। एक तो हिन्दुस्तान का इतिहास और फिर गांधीजी ने हमें जो तरीका सिखाया वह तरीका, जिससे हमारी स्वराज्य प्राप्ति शान्ति से बनी हुई बातें हैं। वैसे आजादी की लड़ाइयाँ दुनिया के दूसरे देशों में भी लड़ी गयीं, पर हमारा अपना एक ढंग था। फिर परमेश्वर की कृपा से हमें जो नेतृत्व उपलब्ध हुआ, उन सबकी बदौलत हिन्दुस्तान की आवाज आज भी दुनिया में कुछ काम करती है। हम यह नहीं कहते कि दुनिया को आकार देने की शक्ति हममें है और ऐसा अहंकार रखना भी नहीं चाहिए, परन्तु यह सच है कि आज हिन्दुस्तान की आवाज कुछ काम कर रही है। वह नैतिक आवाज ही है। नहीं तो हिन्दुस्तान में आज कौन-सी शक्ति है? भौतिक-शक्ति हमारे पास क्या है? हमारी सेना कितनी छोटी है। दूसरे बड़े-बड़े देशों के पास जो सारा शस्त्र-संभार है, उसकी तुलना में हमारी कोई शक्ति ही नहीं। आज हिन्दुस्तान के पास बड़ी दौलत भी नहीं है। हाँ, धीरे-धीरे बढ़ सकती है। कुल मिलाकर हमारे पास न भौतिक शक्ति है और न दौलत। उस हालत में भी अगर हमारी कुछ-न-कुछ आवाज सुनाई देती है, तो इसका कारण सिवा इसके क्या हो सकता कि यहाँ नैतिक शक्ति का थोड़ा-सा आविर्भाव हुआ। वह शक्ति बहुत बढ़ेगी, अगर हम यह अहम मसला शान्ति के तरीके से हल करें।

दुनिया की आँखें भारत की ओर

आखिर दुनिया के लोग इस काम को देखने के लिए क्यों आते हैं? मैंने तो कभी कुछ प्रचार नहीं किया। न मैंने कभी अंग्रेजी में कुछ लिखा और न विदेश के साथ मेरा कुछ पत्र-व्यवहार चला। लेकिन "बात तो बात चैल गयी! क्यों फैल गयी? इसीलिए कि इसमें एक ऐसी चीज है, जिससे दुनिया आश्वासन पाती है। आज दुनिया प्यासी है। आज दुनिया के दूसरे मुल्कों में भी ऐसे मसले पड़े हैं। वे बिना शस्त्र के हल नहीं हो सकते, ऐसी मान्यता हरएक देश में है। अशान्ति

तो कोई नहीं चाहता, फिर भी सब देश लाचार हो शस्त्रास्त्र बढ़ा रहे हैं। इससे छूटने की कोई तरकीब हाथ आये, तो दुनिया उसे चाहती है। इसीलिए उसे शंका हो रही है कि शायद भूदान में से ऐसी तरकीब निकल पड़े। अभी तो यहाँ कोई बड़ा काम नहीं हुआ, थोड़ा-सा ही हुआ है। लेकिन जो हुआ, वह एक विशेष ढंग से हुआ है। इसलिए दुनिया सोचती है कि शायद इसमें कोई गर्भित शक्ति (पोटेन्शियल) हो। इसलिए अगर आप-हम सब भाई भाई इसे हाथ में लें, लोगों के पास पहुँचें और प्रेम से जमीन माँगें, तो कितना काम होगा। हमें किसीको धमकाकर नहीं माँगना है, प्रेम से ही माँगना है। मैंने एक-दो जगह पर धमकाने की बात सुनी, तो कहा कि धमकाने से ही काम हो जाता, तो उसके लिए हमारी क्या जरूरत है? वह करनेवाले बहादुर तो दुनिया में बहुत पड़े हैं। उसके लिए हमें गाँव-गाँव घूमने की क्या जरूरत है? इसलिए हमें तो लोगों को प्रेम से समझाना और कहना चाहिए कि इससे विश्व-शान्ति की स्थापना होगी, विश्व-शान्ति के लिए छठा हिस्सा दान दो।

दान पूर्ण विचार से ही प्राप्त

इस तरह जब दूर की विश्वव्यापक दृष्टि रखेंगे, तो काम होगा। फिर आज जो छोटी-छोटी बातें, पक्ष-भेद चलते हैं, उन्हें हम भूल जायेंगे। अवश्य ही उनका भी कुछ मूल्य है, पर इस समय हम जब उन्हें भूल जायें, तो एक बड़ी चीज हो सकती है। मैंने जब सुना कि एक-दो जगह कुछ कार्यकर्ताओं ने किसीको धमकाया और कहा कि 'दान न दोगे, तो तुम्हारा भला नहीं होगा', तो बिहार में मुंगेर की मीटिंग में—जो उससे बड़ी सभाओं में से एक थी—मैंने जाहिर किया कि अगर कोई डरा-धमकाकर आपसे जमीन माँगे, तो आप हरगिज न दीजियेगा। इस तरह मैं जमीन का एक छोटा टुकड़ा भी नहीं चाहता। जो कुछ मिले, वह पूर्ण विचार से मिले, तभी उसकी कीमत है। यह ध्यान में रखकर हम सबको काम करना चाहिए।

सत्य का अधिकार

इस बार कांग्रेस की तरफ से मेरे पास एक पत्र आया, जिसमें कांग्रेस के वार्षिक समारम्भ में आने के लिए निमंत्रण था। इस तरह हर साल निमंत्रण आता

है। मैं यह तो नहीं पाता फिर उसका कुछ खास उत्तर देने की भी प्रेरणा नहीं होती। इस वक्त भी ऐसा ही होता। मैंने कोई खास सभ्यता का कथन तो नहीं माना है और बावजूद गांधीजी की संगति के, मैं असभ्य ही रहा। लेकिन इस समय ऐसा हुआ कि जब आवडी में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था, उस समय एक शख्स जो कि आवडी जा रहे थे बीच में मुझसे मिलने आये। मुझे लगा कि ईश्वर का इशारा हुआ और मुझे जवाब देने का मौका मिला है। इसलिए मैंने एक पत्र लिख भेजा उसमें एक वाक्य यह था कि 'एक शख्स भूख रहा है ऐसी आशा से कि आप उसकी मदद में कमी न करेंगे और आयेंगे। वह समझता है कि आपसे मदद पाने का वह हकदार है।" उसके उत्तर में हमारे देश भाई ने कहा कि "विनोबा को इस तरह हमसे मदद पाने का क्या हक और क्या अधिकार है ?" अब पहली मर्तबा मैं इस सभा में आ रहा हूँ ऐसे मनुष्य को यहाँ के लोगों से मदद पाने का क्या अधिकार हो सकता है ? लेकिन अधिकार है। वह सत्य का अधिकार है जो सबको कबूल करना होगा।

मजहब का बयान

हिन्दुस्तान में आज भूमि का बँटवारा गलत हुआ है भूमिहीनों का भूमि पर हक है यह सबको कबूल करना होगा। मैंने यह विचार बार-बार दुहराया है और इस सभा में भी दुहराऊँगा क्योंकि यह मेरा मजहब है कि जैसे हवा पानी और सूरज की रोशनी भगवान् ने पैदा की है और सबके लिए है वैसे ही जमीन भी भगवान् ने पैदा की और वह सबके लिए है। भगवान ही उसके मालिक हो सकते हैं, मनुष्य नहीं। जो मनुष्य अपने को उसका मालिक समझता है वह ईश्वर का विरोध करता है। मैं लोगों के पास जाता हूँ तो यही समझाता हूँ। किसी घर में बूढ़ा मनुष्य हो तो मैं उसका लड़का बन जाता हूँ और उसे कहता हूँ कि आपके चार बेटे हैं तो मैं पाँचवाँ हूँ और आपके पाँच बच्चे हैं तो मैं छठा हूँ। किसी घर में बड़ा भाई मान हो तो मैं कहता हूँ कि मैं आपका एक भाई हूँ मुझे अपना हक दीजिये।

एक किस्सा याद आ रहा है। हम एक मुसलमान भाई से जमीन माँगने गये

थे। उसके पास काफी जमीन थी और उसने कुछ देना भी कबूल किया था। मैंने उसे समझाया कि छठा हिस्सा देना चाहिए। उसने पूछा : 'आपका उसूल क्या है?' मैंने समझाया : 'अक्सर हर घर में पाँच भाई होते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ इसलिए मैं छठा भाई बनकर छठा हिस्सा माँगता हूँ।' उसने कहा : बिल्कुल ठीक। हमारे घर में हम पाँच ही भाई हैं, परन्तु हम मुसलमानों में बहनों का भी अधिकार होता है। हमें दो बहनें हैं।" ज्यों यह बात उसके मुँह से निकली मैंने उसके चेहरे की तरफ देखा। मुझे उसके चेहरे में अल्लाह का दर्शन हुआ। उसी वक्त मैंने कहा : 'आपकी बात मुझे मंजूर है। आप सात भाई-बहन हैं तो मैं आठवाँ हुआ। मुझे नवाँ हिस्सा दीजिये।' उसने भी फौरन कबूल कर लिया और आठवाँ हिस्सा दे दिया।

यह किस्सा मैंने इसलिए सुनाया कि हिन्दुस्तान का दिल कितना पवित्र है, इसका इससे भान होता है। मैं कहना चाहता हूँ कि मैं अत्यन्त कठोर-हृदय हूँ। मुझ पर न किसीकी मृत्यु का परिणाम होता है और न किसीके जन्म की खुशी। कोई बीमार पड़ता है, तो मुझे बहुत चिन्ता नहीं होती। लेकिन भूदान-यज्ञ में जो अनुभव आये उनसे मैं अत्यन्त कोमल बन गया मेरा हृदय बहुत थोड़े में द्रवित होने लगा मुझे भक्ति लाभ हुआ। जो भक्ति-लाभ एकान्त चिन्तन और ध्यान-साधना में भी नहीं हुआ वह इसमें हुआ। मेरा दिल कोमल और नम्र हो गया। बहुत ही पवित्र अनुभव आये। लोगों की चित्त शुद्धि का भान हुआ तो मेरे ध्यान में आया कि अपने देश में एक शक्ति पड़ी है। वह कहाँ से आयी यह जानने के लिए तो इतिहास में जाना पड़ेगा। परन्तु देखता हूँ कि देश में एक शक्ति है जिसके आधार पर हम अपने देश को मजबूत बना सकते हैं। परमेश्वर की कृपा से हमारे देश में दूसरी शक्तियाँ कम हैं।

हर कोई देनेवाला है

"मैं अरु मोर तोर तें माया"—मैं मेरा और तू-तेरा यह सब माया है, यह बात हिन्दुस्तान के हर कान में पहुँची है। यहाँ तक कि यह भावना हिन्दुस्तान के पत्थरों तक भी पहुँची है। वे मानते हैं कि हमारा जो जीवन चलता है, वह मिथ्या

है। और विनोबा जो कहता है कि मालकियत गलत है, भूमि पर सबका हक है, यह बात भी ठीक है। मुझे आज तक एक भी शख्स ऐसा नहीं मिला, जिसने इसका खण्डन किया हो। कोई मोह के कारण न दे, तो दूसरी बात है। मैं मानता हूँ कि जो आज नहीं देता, वह इसीलिए नहीं देता कि वह कल देनेवाला है। कोई आज नहीं मरा, इसलिए मुझे पक्का विश्वास हो जाता है कि वह कल मरनेवाला है। इसलिए जिसने आज दान नहीं दिया, वह कल देनेवाला है, ऐसा विश्वास मेरे मन में है। उसके लिए दान लेना लाजिमी है। हिन्दुस्तान के हवा में ही यह बात है।

दो साल का समय दीजिये

इसलिए मेरी आपसे माँग है कि आप बाकी के दो साल इसमें लगा दीजिये, तो फिर इसका परिणाम दीख पड़ेगा। मैं हरएक से दो साल की माँग करता हूँ। एक भाई ने मुझसे पूछा : आप कहते हैं कि सब छोड़कर इसमें आइये, तो क्या सब कुछ छोड़ना चाहिए? मैंने कहा : पेरिस फ्रिलोस स्पिरिट लेकर—यानी बुद्धि का उपयोग करना चाहिए, इसका आश्चर्य न लेकर मानार्थ लेना चाहिए। मानार्थ से मैं कहना चाहता हूँ कि हम जितने काम आमेर करते हैं, उतने कामों में रचनात्मक काम का मसला है। जब कोई रचनात्मक काम करनेवाले भाई मुझसे पूछते हैं कि 'क्या हम इसके लिए अपने सब काम बन्द करें?' तो मैं नम्रता से कहता हूँ, भाई, मेरा सारा जीवन जीवन के तीस वर्ष रचनात्मक काम में गये। वही मैं आपके सामने आज कह रहा हूँ कि यह बुनियादी चीज हाथ में लीजिये, तो बाकी के सारे काम चलेंगे। यह मत समझिये कि इसमें बुद्धि नहीं है इसमें गहरी बुद्धि है। इससे ताकत पैदा होनेवाली है, नहीं तो हमें पूछता ही कौन था? हम खादी की बात करते थे, तो हमें कौन पूछता था? लेकिन आज पूछते हैं। जैसे 'सर्वोदय' शब्द सब से मिलता, सब से लोग कहते हैं कि यह बहुत अच्छा शब्द है, परन्तु आज अमल में नहीं आ सकता। यह विचार अच्छा है, पर अव्यवहार्य है। लेकिन आज लोगों का ख्याल हो रहा है कि यह अच्छा आदर्श तो है ही, व्यवहार्य भी है। उनमें यह इत्मीनान पैदा हुआ

पैदा हो रही है कि इस जमाने में भी इसके अनुसार कुछ हो सकता है। मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस इस काम को उठा ले और पक्षरहित दृष्टि से दूसरे पक्षों का सहयोग ले और इसे अपना ही काम समझकर करे। वैसे कांग्रेसवालों ने काफी मदद की है। परन्तु इसे अपना निज का कार्यक्रम समझकर सुव्यवस्थित ढंग से एक 'टारगेट' (लक्ष्य) बनाकर सब लोग इसमें लगते हैं, ऐसा दर्शन करने को मिले ऐसी मेरी प्रार्थना है।'

बेदखली मिटाने का काम उठाइये

इसीके साथ जुड़ी हुई और एक चीज है। उसके बारे में भी मैं कुछ कह देना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान में बेदखलियाँ बढ़ रही हैं। इसमें भूदान का कोई कसूर नहीं है। किन्तु लोगों के मन में डर पैदा हुआ है कि कोई कानून बनेगा न मालूम क्या कानून बनेगा और कब बनेगा? और उसके परिणामस्वरूप बेदखलियाँ शुरू हुई हैं। भूदान-यज्ञ के लिए इसमें जिम्मेवारी आती है, क्योंकि भूदान से हम इन पर असर नहीं डाल सके। इसलिए हमने भूदान में यह काम कम मान लिया है कि जिस किसीने दूसरे को बेदखल किया हो और परिणामस्वरूप वह भूमिहीन बन गया हो तो हम भूमिवालों के पास पहुँचेंगे और उनसे प्रार्थना करेंगे कि आप भूदान में जमीन दीजिये, ताकि हम वह जमीन उसीको दे दें जो बेदखली के कारण बेजमीन हुआ है। इससे आपसे भी एक गलत काम हुआ वह दुरुस्त हो जायगा और उसके बजाय वात्सल्य भी पैदा होगी—दान भी बनेगा। इस तरह हम लोगों को समझाते हैं, फिर भी कोई उपाय इसका परिणाम नहीं हुआ। तब मुझे भूमिहीनों से कहना पड़ा कि तुम अपनी जमीन पर डटे रहो। अगर तुम्हारा मानना सही है कि तुम उस जमीन पर दस-पन्द्रह साल से काम करते हो तो उस पर डटे रहो और मालिक को भी डरो। इससे भूमि-हीनों को ही तकलीफ हो सकती है। लेकिन ऐसा कहने की नौबत मुझ पर आयी और लाचार हो मैंने यह कह दिया। इसलिए मैं चाहता हूँ कि बेदखली मिटाने का काम भी कांग्रेस उठा ले। भूदान-यज्ञ और बेदखलियाँ मिटाना दोनों मिलाकर एक ही काम है। उसी बुनियाद पर हमें आज काम करना है।

ग्रामदान

भूदान-यज्ञ में एक अद्भुत बात हुई है, जिसकी आशा लोगों ने कभी नहीं की थी लेकिन मेरे मन में था कि कभी-कभी यह जरूर होगा। वह बात है, गाँव की कुल जमीन गाँव की बनना। गाँव के कुछ लोग कुछ जमीन का दान सर्वस्व दान दें, फिर जमीन गाँव की हो और गाँववाले जैसा चाहें, वैसा प्रयोग करें। हम कहते थे कि ऐसे दान हमें मिलने चाहिए और साथ ही छठे हिस्से की भी माँग करते थे, जो प्राथमिक माँग थी। मुझे कहने में खुशी होती है कि अब तक १ से अधिक पूरे गाँव दान में मिल चुके हैं। जिनमें कुछ छोटे हैं, तो कुछ बड़े। इस तरह मन इतना तैयार हुआ है, तो काम बढ़ सकता है। इसमें जीवन का बिलकुल ही नया दर्शन हो सकता है। भूदान के साथ सम्पत्ति-दान, कूपदान आदि भी निकले हैं। उन्हें भी हमें आगे बढ़ाना है। यह तत्त्व मान्य करना है कि हर मनुष्य को उसके पास जो कुछ सम्पत्ति है, उसका एक हिस्सा समाज को अर्पण करके ही बाकी के हिस्से का भोग करना चाहिए। यह एक जीवन-विचार है।

अहिंसा और कानून

हम चाहते तो ही कानून की माँग कर रहे हैं। कोई भी कबूल करेगा कि भूमि का मसला इस तरह से हल हो तो भी जल्दी ही करना पड़ेगा। फिर हम तो दो ही साल की बात करते हैं। दो साल जोर लगाने के बाद जो कुछ बनेगा, वह सरकार के जरिये होगा। तब तक इतना वातावरण तैयार हो जायगा कि उसके बाद बननेवाला कानून अहिंसा में ही आ जायगा। उससे कुछ नुकसान न होगा, बल्कि लाभ ही होगा। अहिंसा में यह बात आती है कि आखिर में कानून की मुहर लगेगी। लेकिन आखिर में भी कानून से थोड़ा भी करना पड़ा, तो हम मानेंगे कि हमें पूर्ण यश नहीं मिला। अगर इस ढंग से ही यह काम हुआ तो मैं मानूँगा कि पूर्ण यश मिला। मैंने तो कहा है कि इससे मसला हल हुआ तो मैं नाचूँगा। लेकिन इससे काफी वातावरण तैयार हुआ और फिर कानून बना तो भी मुझे खुशी होगी। हम तो चाहते हैं कि यह मसला इसी तरह लोक-शक्ति से हल हो।

कुछ दिन पहले कम्युनिस्टों से बोलने का मौका आया था। उन्होंने कहा कि आपका काम ठीक चल रहा है, ऐसा आप समझते हैं, तो हम भी आशा करते हैं कि आपको यश मिले। परन्तु हम चाहते हैं कि सरकार पर दबाव आये और कानून बने। मैंने कहा कि दबाव लाने की जरूरत नहीं है। सरकार पर दबाव तो आज भी आ रहा है। लेकिन सरकार पर दबाव आया और सरकारी शक्ति से काम हुआ, भूदान-यज्ञ के परिणामस्वरूप सरकार को कानून बनाना पड़ा तो आप उसे पूर्ण यश कहेंगे। लेकिन मैं उसे आधा यश कहूँगा। जिसे आप पूर्ण यश मानते हैं, उसे मैं आधा यश मानता हूँ। मेरा पूर्ण यश इसीमें होगा कि यह मसला प्रेम और जन शक्ति से ही हल हो।

परमेश्वर के हाथ से फलदान होता है। किन्तु जिसने प्रेरणा दी, वह फलदान भी करता है, इसी श्रद्धा से हम आपसे मित्र के नाते मदद चाहते हैं। आप अधिक-से-अधिक शक्ति इसमें लगायें तो हमारे देश में एक बड़ा भारी काम सम्पन्न होगा।

अजपुर
६-५-'५५

आज एक कार्यकर्ता ने सवाल पूछा कि सरकार का स्वरूप कैसा होना चाहिए ? लेकिन यह तो लोगों की हालत पर निर्भर है। मान लीजिये कि किसी कुटुम्ब में बिलकुल छोटे-छोटे बच्चे और जवान माता-पिता हैं। वहाँ माता-पिता की आज्ञा ही चलेगी और छोटे बच्चों को उनकी आज्ञा में रहना पड़ेगा। यही उस कुटुम्ब का स्वरूप होगा। जिस कुटुम्ब में लड़के बिलकुल छोटे नहीं हैं; समझदार हो गये हैं और माता-पिता प्रौढ़ होकर कुछ काम कर सकते हों, वहाँ दोनों के सहयोग से काम चलेगा, केवल माता-पिता की आज्ञा नहीं चलेगी—उस कुटुम्ब का स्वरूप यह होगा। और जिस कुटुम्ब में लड़के प्रौढ़ और माता-पिता बिलकुल बूढ़े हो गये हों, वहाँ लड़के ही सारा कारोबार चलायेंगे। माता-पिता सिर्फ सलाह देंगे—न उनकी आज्ञा चलेगी, न उनका बच्चों के साथ सहयोग होगा।

सरकार का स्वरूप जनता की शक्ति पर निर्भर

इस तरह कुटुम्ब का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होगा। लेकिन तीनों हालतों में उसका मुख्य तत्त्व प्रेम ही रहेगा और उसे बाधा न पहुँचे, इसी दृष्टि से उसके बाह्य स्वरूप में फरक होगा। जैसे कुटुम्ब का मूल तत्त्व प्रेम है, वैसे ही समाज का मूल तत्त्व सर्वोदय होना चाहिए। 'सर्वोदय' समाज का मूलतत्त्व दिखाने का एक उत्कृष्ट शब्द है। जिस समाज में प्रजा-जन बिलकुल अज्ञानी हों, उन्हें सोचने की शक्ति प्राप्त न हुई हो, उस समाज की सरकार के हाथ में ज्यादा शक्ति रहेगी और लोग सरकार से संरक्षण की अपेक्षा रखेंगे, जैसे छोटे बच्चे माता-पिता से संरक्षण की अपेक्षा रखते हैं। जहाँ प्रजा की दशा अज्ञानी की और हालत कमजोर हो, वहाँ की सरकार सर्वोदय चाहनेवाली लेकिन कल्याणकारी सरकार होगी। उस सरकार को 'मा-बाप सरकार' का स्वरूप आयेगा। किन्तु जैसे-जैसे प्रजा की शक्ति, योग्यता और ज्ञान बढ़ेगा, प्रजा में परस्पर सहयोग का

तो फौरन कर देंगे। जिस तरह आज समाज में व्यभिचार बहुत बुरा माना जाता है, लोग उससे बचे ही रहना चाहते हैं—चाहे उसके विरुद्ध कोई सरकारी कानून न भी हो तो भी लोगों के विचार में व्यभिचार न करना कानून माना जाता है। इसी तरह समाज में 'संग्रह गलत है' यह विचार मान्य हो जायगा। फिर उस समाज में 'अपरिग्रह' भी माना जायगा। तब आज के बहुत मसलों का समाधान हो जायगा। 'चोरी करना पाप है' यह विचार ठीक है, पर वह एकांगी है। किन्तु जब 'संग्रह करना पाप है' यह विचार भी समाज को मान्य हो जायगा तो दोनों मिलकर पूर्ण विचार बन जायगा। तब समाज का स्वास्थ्य बढ़ेगा। आज जिसके पास ज्यादा संग्रह है, उसीका समाज में गौरव होता है। किन्तु तब ऐसी स्थिति आयेगी कि जिसके पास ज्यादा संग्रह हो उसकी अवस्था चोर जैसी मानी जायगी।

सर्वोदय-समाज की ओर

इस तरह जब समाज-रचना का आधार 'अपरिग्रह' हो जायगा तब सरकार की शक्ति की भी कम-से-कम आवश्यकता पड़ेगी। गाँव के लोग ही अपने गाँव का सारा कारोबार देख लेंगे और ऊपर की सरकार केवल निमित्तमात्र रहेगी। वह केवल सलाह देनेवाली सरकार होगी हुकूमत चलानेवाली नहीं। ऐसी सरकार में जो लोग होंगे वे नीतिमान्, चरित्रवान् और सदाचारी होंगे। इसलिए उनके हाथ में नैतिक शक्ति रहेगी भौतिक नहीं। हम इसी प्रकार का सर्वोदय समाज लाना चाहते हैं। हमें इसी दिशा में अपनी सारी कोशिश करनी चाहिए।

सुशासन की बातें शासन-मुक्ति के गर्भ में

आजकल 'समतावादी समाज रचना' या और भी जो बातें चलती हैं, सारी 'सुशासन' की बातें हैं, शासन-मुक्ति की नहीं। इसलिए वे 'शासन-मुक्ति' के पेट में आ जाती हैं। जैसे माता के पेट में गर्भ रहता है, तो उसे माता से पोषण मिलता है—यह अवस्था भी नहीं कि उसे माता से पोषण मिल रहा है—वैसे ही सर्वोदय-विचार से उसके गर्भ की समतावादी समाज रचना आदि बातों को पोषण मिलता है। इसमें 'अशासन' या 'शासन-हीनता' से 'सुशासन' की ओर और

सुशासन से 'शासन-मुक्ति' की ओर जाना है। इस तरह हम एक-एक कदम आगे बढ़ेंगे। लेकिन अगर हमारा अन्तिम आदर्श शासन-मुक्ति का होगा तो हमें सुशासन भी इस तरह चलाना होगा कि शासन मुक्ति के लिए राह खुली रहे। जैसे साधारण असंयमी मनुष्य को गृहस्थाश्रम की दीक्षा दें, तो वह गृहस्थ बनता और उसमें संयम आ जाता है। किन्तु यदि वह गृहस्थाश्रम में ही स्थिर हो जाय और वानप्रस्थाश्रम की ओर न बढ़े तो आगे नहीं बढ़ सकता। फिर तो वह गृहस्थाश्रम संयम के लिए उसे साधक हुआ वही बाधक बन जाता है। सारांश असंयम मिटाने के लिए गृहस्थाश्रम की स्थापना करनी होगी और गृहस्थ को अपने सामने वानप्रस्थ का आदर्श रखना होगा—गृहस्थाश्रम इस तरह चलाना होगा कि आगे कभी-न-कभी वानप्रस्थ लेना है। इसी तरह समाज की आज की हालत में हमें एक तरफ से शासन मुक्ति की ओर ध्यान देते हुए सुशासन चलाना चाहिए और दूसरी तरफ से शासन मुक्ति के लिए जनशक्ति संगठित करने का भी प्रयत्न चलाना चाहिए।

हमारा दोहरा प्रयत्न

इसीलिए हम भूदान-यज्ञ में जनता की शक्ति को जगाना चाहते हैं जनता को अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते हैं। दूसरी ओर शासनकर्ता के लिए कानून बने ऐसी भी अपेक्षा करते हैं क्योंकि शासनकर्ता के खिलाफ काफी जनमत तैयार हो चुका है। ऐसी हालत में अगर शासनकर्ता न होगी तो देश में सुशासन न होगा—कुशासन होगा जो शासन-मुक्ति में बाधा देगा। इसलिए हम शासनमुक्ति चाहते हुए भी शासनकर्ता कानून की माँग भी करते हैं। लेकिन जमीन के बारे में हम चाहते हैं कि गाँव की कुल जमीन गाँव की हो। इस तरह का वातावरण लोगों में पैदा हो लोग उसे मान्य करें इसलिए पहले कदम के तौर पर हम गाँव की कुल जमीन का छठा हिस्सा माँग रहे हैं। हम चाहते हैं कि लोग प्रेम से इतना दें कि गाँव में कोई भूमि हीन न रहे। इस तरह उधर तो हम स्वतन्त्र रीति से लोक शक्ति संगठित करने का प्रयत्न करते हैं और इधर शासन को सुशासन में परिवर्तित करने की कोशिश भी करते हैं।

तो फौरन बाँट देंगे। जिस तरह आज समाज में व्यभिचार बहुत बुरा माना जाता है, लोग उससे बचे ही रहना चाहते हैं—चाहे उसके विरुद्ध कोई सरकारी कानून न भी हो तो भी लोगों के विचार में व्यभिचार न करना कानून मान्य जाता है। इसी तरह समाज में 'संग्रह गलत है' यह विचार मान्य हो जायगा। फिर उस समाज में 'अपरिग्रह' भी माना जायगा। तब भाव के सब मसलों का समाधान हो जायगा। 'चोरी करना पाप है' यह विचार ठीक है, पर यह एकांगी है। किन्तु जब 'संग्रह करना पाप है' यह विचार भी समाज को मान्य हो जायगा तो दोनों मिलकर पूर्ण विचार बन जायगा। तब समाज का स्वास्थ्य बढ़ेगा। आज जिसके पास ज्यादा संग्रह है, उसीका समाज में गौरव होता है। किन्तु तब ऐसी स्थिति आयेगी कि जिसके पास ज्यादा संग्रह हो उसकी अवस्था चोर जैसी मानी जायगी।

सर्वोदय-समाज की ओर

इस तरह जब समाज-रचना का आधार 'अपरिग्रह' हो जायगा, तब सरकार की शक्ति की भी कम-से-कम आवश्यकता पड़ेगी। गाँव के लोग ही अपने गाँव का सारा कारोबार देख लेंगे और ऊपर की सरकार केवल निमित्तमात्र होगी। वह केवल सलाह देनेवाली सरकार होगी, हुकूमत चलानेवाली नहीं। ऐसी सरकार में जो लोग होंगे वे नीतिमान्, चारित्र्यवान् और सदाचारी होंगे। इसलिए उनके हाथ में नैतिक शक्ति रहेगी, भौतिक नहीं। हम इसी प्रकार का सर्वोदय समाज बनाना चाहते हैं। हमें उसी दिशा में अपनी सारी कोशिश करनी चाहिए।

सुशासन की बातें शासन-मुक्ति के गर्भ में

आजकल 'समाजवादी समाज रचना' की ओर भी जो बातें चलती हैं, सारी 'सुशासन' की बातें हैं, शासन-मुक्ति की नहीं। इसलिए वे 'शासन-मुक्ति' के पेट में आ जाती हैं। जैसे बच्चा माँ के पेट में गर्भ रहता है, तो उसे माता से पोषण मिलता है—वह जानता भी नहीं कि उसे माता से पोषण मिल रहा है—वैसे ही सर्वोदय-विचार के उदर में गर्भ की समाजवादी समाज रचना आदि बातों का पोषण मिलता है। इसमें 'अशासन' या 'शासन-हीनता' से 'सुशासन' की ओर और

सुशासन से 'शासन-मुक्ति' की ओर जाना है। इस तरह हम एक-एक कदम आगे बढ़ेंगे। लेकिन अगर हमारा अन्तिम आदर्श शासन-मुक्ति का होगा तो हमें सुशासन भी इस तरह चलाना होगा कि शासन मुक्ति के लिए राह खुली रहे। जैसे साधारण असंयमी मनुष्य को गृहस्थाश्रम की दीक्षा दें, तो वह गृहस्थ बनता और उसमें संयम आ जाता है। किन्तु यदि वह गृहस्थाश्रम में ही स्थिर हो जाय और वानप्रस्थाश्रम की ओर न बढ़े तो आगे नहीं बढ़ सकता। फिर तो जो गृहस्थाश्रम संयम के लिए उसे साधक हुआ वही बाधक बन जाता है। सारांश असंयम मिटाने के लिए गृहस्थाश्रम की स्थापना करनी होगी और गृहस्थ को अपने सामने वानप्रस्थ का आदर्श रखना होगा—गृहस्थाश्रम इस तरह चलाना होगा कि आगे कभी-न-कभी वानप्रस्थ लेना है। इसी तरह समाज की आज की हालत में हमें एक तरफ से शासन मुक्ति की ओर ध्यान देते हुए सुशासन चलाना चाहिए और दूसरी तरफ से शासन मुक्ति के लिए जनशक्ति संगठित करने का भी प्रयत्न चलाना चाहिए।

हमारा दोहरा प्रयत्न

इसीलिए हम भूदान-यज्ञ में जनता की शक्ति को जगाना चाहते हैं जनता को अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते हैं। दूसरी ओर शराबबन्दी के लिए कानून बने, ऐसी भी अपेक्षा करते हैं, क्योंकि शराबबन्दी के खिलाफ अभी जनमत तैयार हो चुका है। ऐसी हालत में अगर शराबबन्दी न होगी तो देश में सुशासन न होगा—कुशासन होगा जो शासन-मुक्ति में बाधा देगा। इसलिए हम शासनमुक्ति चाहते हुए भी शराबबन्दी कानून की माँग भी करते हैं। लेकिन जमीन के बारे में हम चाहते हैं कि गाँव की कुल जमीन गाँव की हो। इस तरह का वातावरण लोगों में पैदा हो लोग उसे मान्य करें इसलिए पहले कदम के तौर पर हम गाँव की कुल जमीन का छठा हिस्सा माँग रहे हैं। हम चाहते हैं कि लोग प्रेम से कहना है कि गाँव में कोई भूमिहीन न रहे। इस तरह ऊपर तो हम स्वतन्त्र रीति से लोकशक्ति संगठित करने का प्रयत्न करते हैं और इधर शासन को सुशासन में परिवर्तित करने की कोशिश भी करते हैं।

कानून याने समाप्तम्

गाँव की कुल जमीन गाँव की बन जाय। अगर इस तरह का संकल्प लोक-मत बन जाय यानी लाखों लोग भूदान दे दें, तो आगे गाँव की जमीन गाँव की हो, इस तरह का कानून बनेगा। वह कानून लोकमतानुसारी होगा—वह लोगों को प्रिय होगा, अप्रिय नहीं। मान लीजिये कि हर गाँव के ८० फीसदी लोगों ने जमीन दान की और २० फीसदी लोग दान देने को तैयार न हुए। उन्हें मोह है इसलिए तैयार नहीं हुए, पर उन्होंने विचार को तो पसन्द किया ही। उस हालत में भी सरकार का कानून बन सकता है। इसलिए इधर हमारी कोशिश तो यही रहेगी कि सारे-के-सारे लोग इस विचार को पसन्द करें, ताकि सरकार के लिए सिर्फ उसका नोट लेना, उस पर मुहर ठोकना, इतना ही काम बाकी रह जाय। जैसे हम एक अध्याय पूरा-का-पूरा लिख डालते हैं और जहाँ लिखना खतम होता है वहाँ आखिर में 'समाप्तम्' लिख देते हैं, वैसे ही जनता एक काम को कर डालती है, तो वहाँ 'समाप्तम्' लिखने का काम सरकार का होता है। लेकिन लोकशक्ति से अध्याय लिखने का काम पूरा न हो, अध्याय अधूरा ही रह जाय और उस पर भी सरकार 'समाप्तम्' लिख दे, तो केवल वह लिखने से अध्याय पूरा नहीं होता, पूरा लिख डालने से अध्याय पूरा होता है। जैसे बाल-विवाह नहीं होना चाहिए। इसका अध्याय हम लिख रहे थे, तो सरकार ने बीच में लिख डाला कि 'समाप्तम्'। परन्तु वह खतम नहीं हुआ और आज भी बाल-विवाह जारी है।

सरकार का भी एक काम होता है। अहिंसक व्यवस्था में सरकार का जोर काम नहीं होता, पर आज की हालत में होता है। लेकिन आज भी जनता पहले आगे आयगी और जनता के पीछे-पीछे चलने का काम सरकार का होगा। इस तरह सुशासन भी रहेगा और हम शासन-मुक्ति की तरफ भी आगे बढ़ेंगे। हम शासन-मुक्ति की कोशिश करते हैं, तो कम-से-कम सुशासन तो हो ही जायगा। क्योंकि ऊपर का प्राप्त करने की आशा रखते हैं, तो नीचे का स्वयं हो ही जाता है।

युवकों का आह्वान

इस तरह ऐसा महान् उद्देश्य सामने रखकर भूदान के जरिये जनता में

जाकर जन-क्रान्ति करने का मौका हमें मिला है। अतः हमें अत्यन्त उत्साह आना चाहिए। बाबा वृद्धावस्था में भी चार साल घूम चुका और उसका उत्साह कम नहीं हुआ। लोग पूछते हैं कि आप कब तक घूमेंगे? बाबा कहता है कि रामचन्द्रजी को तो चौदह साल घूमना पड़ा था, बाबा तो अभी चार साल ही घूमा है। रामचन्द्र को रावण-वध के लिए अगर चौदह साल लगे, तो इस काम के लिए इतना समय लग रहा है, इसकी हमें कोई फिक्र नहीं। परन्तु इस काम के पीछे जो महान् तत्त्वज्ञान है, वह इतना उज्ज्वल, इतना व्यापक और इतना परिपूर्ण है कि हर जवान को इसमें उत्साह आना चाहिए। और जवानों को इस काम में कूद पड़ना चाहिए। विचार को ठीक से समझकर तत्त्वज्ञानपूर्वक जवान लोग इसमें कूद पड़ेंगे, तो हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि दो साल के अन्दर यह मसला हल हो सकता है।

दिगापहंडी
१४-५-'५५

आज का भक्ति-मार्ग

: २७ :

यहाँ चैतन्य-सम्प्रदाय का एक मठ है। उस मठ के एक सेवक हमसे मिलने आये थे। वे भूदान काम में कुछ काम करना चाहते हैं, पहले से कुछ करते भी हैं। भूदान के बारे में बहुत सहानुभूति से बात करते हुए उन्होंने एक विशेष बात बतायी कि चैतन्य महाप्रभु का किस तरह का दैनिक व्यवहार था और उनका जो आदेश था, ठीक उसके अनुसार भूदान का कार्य चल रहा है। मैंने यह कहा तो लिखा ही था कि मैं उन महापुरुषों के नक्शेकदम पर चल रहा हूँ और उन्हींसे मुझे भूदान यज्ञ की प्रेरणा मिली है। किन्तु खुशी की बात है कि उन्हींमें से एक भाई इस बात को कबूल कर रहे हैं। हम जानते हैं कि हम जो आज भूदान के काम में पड़े हैं, उनका आचरण उतना उत्तम कोटि का नहीं है, जितना भक्ति-मार्ग के लिए होना चाहिए। फिर भी हम भक्ति-मार्ग पर चलने की कोशिश कर रहे हैं।

प्राचीन और अर्वाचीन भक्ति-मार्ग

एक जमाना था जब कि सारा समाज आज जितना व्यवहार में व्यस्त नहीं था। जमीन काफी थी और लोक संख्या कम। उस जमाने में लोगों का ढाँचा दूसरे ही प्रकार का था। आज से एक हजार साल पहले हिन्दुस्तान की अवस्था आज से दसमास्य रही होगी। और लोग आज जितनी तंगी महसूस करते हैं, उतनी उस समय न करते होंगे। इसलिए उस हालत में भक्ति मार्ग का जो प्रारम्भ हुआ वह एकान्त ध्यान-साधना से हुआ। उससे मन पर अंकुश रखने के लिए मदद मिलती और चित्त की शुद्धि हो जाती थी। समाज के सामने एक अच्छा आदर्श उपस्थित हो जाता था। इस तरह समाज पर अपना भार न डालते हुए जो लोग मूर्ति की उपासना करते थे चिन्तन-परायण होते थे, उन निर्मल पुरुषों से समाज को प्रेरणा मिलती थी।

लेकिन आज की हालत दूसरी है। आज हम लोगों को केवल नैतिक उपदेश देते रहें, तो उससे काम न होगा। आज तो हमें लोगों की मुसीबतें तकलीफें दूर करनी होंगी तभी उनमें सद्विचार स्थिर होंगे। जिस वक्त आसपास आग लगी हो उस वक्त हम मूर्ति का ध्यान करने बैठें तो वह भक्ति-मार्ग का लक्षण न होगा। उस समय तो हाथ में बालटी लेकर आग बुझाने के लिए दौड़ पड़ना ही भक्ति-मार्ग का लक्षण है। जब समाज में चारों ओर दुःख का हलकोल चलता हो हम लोगों की आपत्तियाँ प्रत्यक्ष देखते हों भूखे लोगों को भूख के कारण कुछ न सूझता हो और इसीलिए वे गलत काम करते हों तो वैसी स्थिति में कोई शान्त बैठकर ध्यान करना चाहे तो भी उसे ध्यान न सूझेगा।

सच्चा भक्त कौन ?

इसीलिए तुलसीदासजी ने जहाँ भक्ति का वर्णन किया है वहाँ उसके लक्षणों मे एक लक्षण यह भी बताया है कि गरीबों को मदद पहुँचायी जाय। उन्होंने कहा है: "सम दम दया दीन-पालन"—जो भक्त होता है वह चित्त में शान्ति रखता है, इन्द्रियों का दमन करता है, तभी वह सेवा के लिए लायक बनता है। फिर वह अन्तःकरण में दया रखकर दीनों का पालन करता है। भक्त के ये

वहाँ आकर दर्शन करते और फिर घर जाकर भोजन करते थे। इस तरह गाँव के लोगों के भोजन का एक निश्चित समय होता था। फिर शाम को भगवान् की आरती का समय होता तो गाँववाले अपना सारा काम बन्द कर मन्दिर में जाते थे और आरती के समय सारे भाई-भाई इकट्ठा होते। फिर रात में भगवान् के सोने का समय होता तो उन्हें सुलाने के लिए गीत गाये जाते। सारे लोग उनमें सम्मिलित होते और भगवान् का नाम लेकर घर जाकर सोते। सारांश सोने का भी एक निश्चित समय होता था। इस तरह सारे गाँव की जो दिनचर्या होनी चाहिए, उसका नियमन मन्दिर की दिनचर्या से होता था। इस प्रकार मन्दिर के जरिये लोगों को शिक्षा मिलती थी।

मानव सेवा ही भक्ति

लेकिन आज तो यह होता है कि मन्दिर में भगवान् के नैवेद्य का समय हो जाने पर भी जिसके घर में खाने को चोज ही न हो, वह भगवान् का क्या स्मरण करेगा! जब देश के लोग भूखे, नंगे और रोग से पीड़ित हों उस हालत में उनकी सेवा में लग जाना ही भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम कार्यक्रम है। मुझे खुशी हो रही है कि वैष्णव-सम्प्रदाय के एक सेवक ने यह महसूस किया कि भूदान यज्ञ के काम के जरिये भक्ति मार्ग का ठीक तरह से प्रचार हो रहा है। हम लोगों को बार-बार यही समझाते हैं कि हमारे आसपास जितने प्राणी हैं, वे सब हमारे स्वामी हैं और हम उनकी सेवा के लिए जन्मे हैं। यह स्वामी-सेवक भाव भक्ति-मार्ग की आत्मा है। जहाँ हम भूत मात्र को हरिरूप देखते हैं उन्हें स्वामी समझते हैं और अपने को सेवक वहाँ हमारी हरएक कृति भक्ति मय भी बन जाती है। इस लिए भक्तों को बहुत नम्र होना चाहिए। उनमें परस्पर अत्यन्त प्रेम होना चाहिए और यह महसूस होना चाहिए कि हम भगवान की सेवा में लगे हैं। इसलिए मन में किसी भी प्रकार के राग द्वेष को स्थान न देना चाहिए। लोग हमारे जीवन की कसौटी भक्तों के जीवन से करेंगे। वे देखेंगे कि जो लोग भूदान में लगे कार्य कर्ता हैं, उन्होंने उसके अनुसार अपना जीवन और हृदय बनाया है या नहीं?

इसलिए इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि अगर हम अपने जीवन में जागृति रखें तो भूदान का काम अग्नि के जैसा फैलेगा।

पुदामारी
१५-५-५५

ग्रामदान—अहिंसा का अणुबम : २८ :

आज आपने जो काम किया उसमें भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट हैं। भगवान् का आपको आशीर्वाद प्राप्त है। इसी तरह आपकी धर्म प्रेरणा और भावना बढ़े और आपका कल्याण हो। लोग कहते हैं कि यह तो कलियुग है। किन्तु हमने 'भागवत' में पढ़ा कि कलियुग तो बड़ा अच्छा युग होता है। उसमें सबके हृदय में प्रेम होता है। कलियुग कितना अच्छा है इसका दर्शन तो आज इस गाँव में हुआ। यहाँ आप सब लोगों ने बड़ा ही प्रेम का काम किया। ऐसा काम देखकर भी जिनकी ईश्वर पर श्रद्धा न बैठेगी वे परम अभागे होंगे। अभी आपने सुना कि इस गाँव का काम देखकर दूसरे गाँववालों ने भी तय किया है कि हम अपने गाँव का ग्रामदान करते हैं। मैंने तो भूदान का काम शुरू किया तो अपने मन से नहीं शुरू किया। केवल ईश्वर की आज्ञा समझकर ही शुरू किया। मैंने विश्वास रखा कि हिन्दुस्तान के सभी भक्त जन इस यज्ञ का महत्त्व जानेंगे और भारी जमीन भगवान् की समझकर दान में देंगे।

अभूतपूर्व घटना

अभी घटना दुनिया के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना गिनी जायगी कि हिन्दुस्तान के लोगों ने पूरे-के-पूरे गाँव दान में दिये। ऐसी बात कभी किसीने सुनी नहीं थी। इसमें किसी भी प्रकार का दबाव नहीं है और न कोई लालच है। इसमें काम दबाव से नहीं बनता। यह घटना ही ऐसी है [illegible] मेरे हाथ में कुछ [illegible] का देखना हुआ है। अभी तक इस तरह पूरे-के-पूरे [illegible] गाँव मिल गये हैं। पहले गाँव मिला था उसका नाम है मंगरौठ जो आज हिन्दुस्तान में मशहूर हो गया है। अभी तक मैंने वह गाँव नहीं

देखा। मैं यहाँ से एक मील पर से गुजरा था। गाँववालों ने रास्ते में मेरा स्वागत किया। गाँव का पूरा दान दे दिया और मुझे यह खुशखबर सुनायी। उसके बाद आपके इस उड़ीसा प्रान्त में 'मानपुर' में आने का मुझे अवसर मिला। यहाँ भी गाँव की कुल जमीन दान में मिली है। किन्तु यहाँ की जमीन का बँटवारा मेरे हाथों नहीं हुआ, पहले ही हो चुका था। इसलिए यह पहला ही गाँव है, जो ग्राम-दान हुआ है और अपने हाथों जमीन बाँटने का सौभाग्य मुझे मिला।

ईश्वर का साक्षात् दर्शन

हमारे देश के एक बड़े नेता राजाजी ने कहा है कि 'भूदान-यज्ञ ईश्वर पर श्रद्धा बढ़ानेवाला यज्ञ है।' आज तो हम इस गाँव में ईश्वर को साक्षात् देख रहे हैं। आप लोगों ने कितना प्रेम बताया है। हम समझते हैं कि भगवान् ने आपको यह प्रेम इसलिए दिया कि आपका कल्याण हो। भगवान् जिसका कल्याण चाहता है, उसे सद्भावना देता है। वही सद्भावना देता है, वही अच्छे काम कराता है और वही कल्याण भी करता है। हम नहीं समझते कि यह काम आपने किया और हमने कराया है। यह काम तो ईश्वर ने किया है और ईश्वर ने ही कराया है। ऐसा काम कानून से, डराने या धमकाने से नहीं हो सकता। यह काम तो केवल श्रद्धा, प्रेम और समझाने से ही हो सकता है।

गाँववालों का कर्तव्य

अब आप लोग गाँव में एक परिवार जैसे रहेंगे। कोई झूठ न बोलेगा और एक-दूसरे के साथ झगड़ा न करेगा। सब प्यार-मुहब्बत से रहेंगे और आलस नहीं करेंगे, आलसी नहीं बनेंगे, एक-दूसरे को मदद देंगे और सब मिलकर भगवान् का नाम लेंगे। आप लोगों ने हमारी माँग पर इतना काम किया है, तो हमारी जिम्मेवारी बहुत बढ़ जाती है। हम समझते हैं कि आपका हम पर उपकार हुआ है। आप लोग भी अपनी जिम्मेवारी समझ लीजिये। आपको जितनी मदद हो सकती है, उतनी मदद करने की जिम्मेवारी हम लोगों की हो जाती है। हम आप लोगों को स्वावलम्बी बनाना चाहते। चाहते हैं कि आपका बल बढ़े और आपके बल से ही आप आगे बढ़ें। लेकिन इस तरह का उत्साह-प्रदर्शित देना और जो कुछ संभव हो

थोड़ी मदद भी दिलाना हम लोगों का कर्तव्य हो जाता है। मैं तो चाहता हूँ कि ऐसे गाँव-के-गाँव थाने-के-थाने पूरे मिल जायें तो उनमें हम ग्रामराज्य, रामराज्य की योजना बना सकते हैं। जमीन के बँटवारे के बाद गाँवों में उद्योग बढ़ाने होंगे आपको कपास बोनी होगी सूत कातना बुनना और अपना कपड़ा खुद बनाना होगा। अपने गाँव का झगड़ा कभी भी गाँव के बाहर नहीं जाना चाहिए। उसके बिना गाँव में स्वराज्य नहीं हो सकता।

ग्रामदान से दुनिया की हवा शुद्ध हो जाती है

मैं समझता हूँ कि ऐसे गाँवों ने जो काम किया है, उससे सारी दुनिया में शान्ति की स्थापना हो सकती है। मैंने तो पुरी के सर्वोदय सम्मेलन में कहा था और जयपुर की अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की मीटिंग में दुहराया भी था कि भूदान यज्ञ में जो दान देता है, वह विश्व-शान्ति के लिए वोट देता है, विश्व-शान्ति स्थापन करने में मददगार होता है। पश्चिम भी विचार पढ़े लोग बहुत अच्छे हो गये हैं। वे ऐटम की शक्ति देखते हैं, एक परमाणु में कितनी शक्ति है ऐसा कहते हैं। लेकिन उससे भी ज्यादा शक्ति ग्राम दान में है। हम समझते हैं कि जो पराक्रम ऐटम और हाइड्रोजन से हिंसा के क्षेत्र में होता है, वही ग्रामदान से अहिंसा के क्षेत्र में होता है। ऐटम और हाइड्रोजन को हिंसा-शक्ति का सबसे बड़ा पराक्रम माना जाता है, उसी तरह ग्राम शक्ति से सर्वस्व-दान अहिंसा-शक्ति का सबसे बड़ा पराक्रम माना जायगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब ऐटम और हाइड्रोजन फूटता है, तब सारी दुनिया की हवा बिगड़ जाती है। हम समझते हैं कि जब ऐसा एक ग्राम-दान मिलता है, तो सारी दुनिया की हवा शुद्ध हो जाती है।

आखिर में हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको आरोग्य दे तुष्टि दे पुष्टि दे। आप अपने बाल-बच्चों के साथ उसका नाम लेते रहें। आप लोगों ने बहुत ही पवित्र कार्य किया है। आपको मेरे भक्ति भाव से प्रणाम!

मकिमी

१२-५-५५

आज हमने इस गाँव की कहानी सुनी। यह गाँव बड़े अरसे से बसा है, असल में यह खतम ही होने जा रहा था। हमारे देश की हालत ऐसी है कि पाँच लाख देहातों में क्या क्या घटनाएँ होती हैं इसका अन्दाजा शहरवालों को नहीं हो सकता। शहर में एक छोटी-सी घटना हो जाती है, तो वह फौरन अखबार में आती है, लेकिन इधर गाँव के गाँव खतम होते जाते हैं, फिर भी अखबार में खबर नहीं आती। किन्तु हमें यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि इस गाँव के संकट के समय हमारे कुछ कार्यकर्ता यहाँ दौड़े आये और उन्होंने कुछ मदद की, जिससे गाँव बच गया। विशेष गौरव की बात तो यह है कि यहाँ 'कस्तूरबा ट्रस्ट' का शिक्षण पायी हुई बहनें काम करती हैं। वे हिम्मत के साथ अकेली रहती और गाँव गाँव घूमकर गाँववालों को हिम्मत देती हैं। हम आशा करते हैं कि ऐसे गाँव तो हमें पूरे-के-पूरे मिल जाने चाहिए। जिस गाँव ने संकट का अनुभव किया हो उसे मालूम होता है कि मिल-जुलकर काम करने से क्या लाभ होता है। परमेश्वर ने संकट भेजकर गाँववालों को यह सबक सिखाया कि तुम लोग गाँव का एक परिवार बनकर रहो। *इस जिले में हमें सारे गाँव सर्वस्व-दान में मिले हैं।* अब उनमें कुल जमीन गाँव की बनेगी। काश्त करने के लिए परिवार को थोड़ी-थोड़ी जमीन दी जायगी पर मालकियत किसीकी भी नहीं रहेगी। जिस किसीके खेत में मदद की जरूरत हो सब लोग दौड़े जायेंगे। आगे चलकर अगर गाँव वाले चाहें, तो सारे गाँव का एक खेत भी बना सकते हैं। *समग्र ग्राम-दान देने से क्या क्या लाभ होते हैं, यह समझने की जरूरत है।* अगर लोगों को इन लाभों का भान हो जाय तो हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में एक भी ऐसा गाँव न रहेगा जो अपनी पूरी जमीन दान में न देगा।

पहला लाभ : आर्थिक आजादी

जमीन की मालकियत मिटाकर सारे गाँव की जमीन एक करने से पहला

जानते हैं कि घर के अन्दर चोरी नहीं होती। लड़के ने कोई चीज ले ली तो उसे 'चोरी' नहीं कहा जाता है। माँ लड़के से इतना ही कहती है कि तू मुझे पूछकर ले जाता, तो अच्छा होता। इस तरह जहाँ गाँव का एक घर बन जाता है, वहाँ चोरी मिट जाती है। उससे नीति बढ़ती है। आज दुनिया में नीति का स्तर इतना गिर चुका है कि लोगों ने अपने आर्थिक लाभ के लिए अलग-अलग घर बना रखे हैं। परसों हमने एक भिखारी की गठरी खुलवायी थी तो उसमें दो आने और एक साबुन का टुकड़ा था लेकिन उसने पक्की गाँठ बाँधकर रखा था। इस तरह लोग अपने दो-चार आने हों या दो हजार रुपये हों, पक्की गाँठ बाँधकर रखते हैं। फिर छीना-झपटी और चोरियाँ चलती हैं, लूटने और ठगने के तरीके ढूँढे जाते हैं। डाक्टर भी किसी बीमार को देखने के लिए जाता है, तो कहता है कि पहले अपनी गठरी खोलो। इस तरह लोगों ने अपना एक संकुचित हृदय बनाया, छोटा घर बनाया। इसलिए दुनिया में झगड़े चल रहे हैं। लेकिन जहाँ जमीन और सम्पत्ति की मालकियत मिट जाती है, वहाँ मनुष्य की नीति जरूर सुधरेगी। इस नैतिक लाभ को हम सबसे श्रेष्ठ लाभ कह सकते हैं। अगर दुनिया को यह लाभ हो तो दुनिया नाच उठेगी। आज तो दुनिया परेशान है। परस्पर स्वार्थों की जो टक्करें चलती हैं, उनसे दुनिया दुःखी है और परिणामस्वरूप हिंसा बढ़ रही है। इसलिए अगर हम गाँव की जमीन और सम्पत्ति गाँव की बना देते हैं, तो सारी दुनिया को नैतिक उत्थान का रास्ता मिल जाता है।

सहज ही आसक्ति से मुक्ति

और एक बड़ा लाभ यह होगा जिसे चाहे दुनिया के लोग समझें या न समझें, लेकिन हिन्दुस्तान के और खासकर देहात के लोग समझ जायँगे। जब हम कहते हैं कि यह मेरा घर है मेरा गाँव है—इस तरह मेरा मेरा चलता है—तो मनुष्य आसक्त बन जाता है, मैं-मैं करता है। लेकिन जब मनुष्य मैं और मेरा, यह सब छोड़ देगा और कहेगा कि यह सब हमारा है, मेरा कुछ नहीं है तो वह आसानी से मुक्त हो जायगा। आज सब लोगों का मन कैसा हुआ है, क्योंकि

मेरा-तेरा छूटता नहीं है। इसके छूटने के लिए ऋषियों ने कई उपाय बताये हैं, फिर भी लोग मुक्ति नहीं पाते।

अक्सर कहा जाता है कि घर-बार सब कुछ छोड़ भागना तो यह मैं और मेरा छूटेगा। लेकिन ऐसी बात नहीं है। इस तरह भाग जाने से मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति की युक्ति तो यह है कि हम अपना घर छोटा न समझें। सारा गाँव हमारा घर है और हमारा जो छोटा घर हम मानते हैं, वह भी सबका है ऐसा समझें। मैं किसीका नहीं और कोई मेरा नहीं ऐसा कहने से मनुष्य मुक्त नहीं होता। मनुष्य तो मुक्त तब होता है जब वह समझता है कि मैं सबका हूँ और सब मेरे हैं। अभी तक हिंदुस्तान में जिन्होंने मुक्ति के लिए कोशिश की उन्होंने ऐसी ही कोशिश की कि मेरा कुछ भी नहीं है। इसीलिए सब छोड़कर जाना पड़ता था। लेकिन इससे सच्ची मुक्ति नहीं मिलती। मनुष्य सब छोड़कर जाता है तो आखिर एक लँगोटी पहनता ही है। तो उसकी सारी आसक्ति उस लँगोटी में रह जाती है। इसलिए हमारे पास जो कुछ है वह सारा गाँव का है, मैं भी गाँव का हूँ और गाँव मेरा है—ऐसी भावना जब बनती है, तब मनुष्य आसक्ति से मुक्त होता है। यह एक बहुत बड़ा लाभ है।

सुबलीकमिली (कोरापुट)
५-६ ५५

हिन्दुस्तान के इतिहास की ओर हम देखते हैं, तो मालूम होता है कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि अपने समाज को एकरस बनायें और सारे कृत्रिम भेदों को मिटा दें। छूत-अछूत भेद, ऊँच नीच भेद, गरीबी अमीरी, अपढ़ और पढ़ा लिखा आदि सारे भेद मिटाने होंगे। हम अपढ़ को पढ़ाकर यह भेद मिटा सकते हैं, श्रीमानों की सम्पत्ति गरीबों में बाँटकर गरीबी-अमीरी का भेद मिटा सकते हैं और आत्मा की निर्मलता अछूत को देकर छूत अछूत का भेद मिटा सकते हैं। जिसके पास जो चीज है, वह आसपास के लोगों में बाँटनी होगी।

शिक्षित रोज एक घंटा विद्यादान दें

आज हिन्दुस्तान में १५.२ फीसदी पढ़े-लिखे लोग हैं और बाकी के सारे अपढ़ हैं। सरकार के सामने सबको पढ़ाने की समस्या हो रही है। उसके लिए जो योजनाएँ बनती हैं, उनमें करोड़ों और अरबों रुपयों की बात चलती है। लेकिन अगर हम एक सादी सी योजना चलायें तो सारा हिन्दुस्तान शिक्षित हो सकता है। हर गाँव में जो कोई पढ़ा लिखा हो वह हर रोज अपना एक घंटा गाँव के अपढ़ लोगों को पढ़ाने के लिए दे। एक मनुष्य तीन महीने में १ मनुष्यों को पढ़ना-लिखना सिखा सकता है। इस तरह अगर सारे शिक्षित लोग विद्यादान दें तो तीन साल के अन्दर सारा समाज शिक्षित बन जायगा और उसके लिए कौड़ी का भी खर्चा नहीं आ पैगा। लेकिन आजकल तो विद्या बेचना शुरू हुआ है। जितनी शिक्षा ज्यादा हो उतना ही ज्यादा दाम माँगा जाता है। यहाँ तक होता है कि शादियों में भी लड़के की पढ़ाई देखकर दहेज माँगा जाता है। इसका मतलब है कि ऊँचों के खानदान के लोग अपने लड़कों को बाजार में बेचते हैं। एम. ए. अगर है, तो दो हजार रुपया दाम और सहन की

परीक्षा पास किया हुआ मजदूर है, तो उसका पाँच हजार रुपया दाम। किन्तु हमारे ऋषियों की यह कल्पना नहीं थी। वे जितने ज्ञानी होते थे, उतने ही अपरिग्रही भी थे। वर्किंग्स आनरस —ज्ञानदान को सोदा नहीं करना चाहिए। वह समाज को शिक्षा देता जायगा और समाज उसे खिलाता जायगा। हम चाहते हैं कि हमारे शिक्षित लोग यह प्रण करें कि देश के लिए हमें एक घण्टे का निर्माण देना है।

मान लीजिये, हम हिन्दुस्तान में दाँत घिसने के कारखाने खोलेंगे तो एक मनुष्य के दाँत घिसने के लिए एक मजदूर को दस मिनट का समय देना पड़ेगा। इसका मतलब हुआ कि एक मजदूर द्वारा घण्टे में ५ मनुष्यों के दाँत घिस देगा। इस हिसाब से हिन्दुस्तान के ३५ करोड़ लोगों के दाँत घिसने के लिए कितनी फैक्टरियाँ खोलनी पड़ेगी! कितने करोड़ों का खर्चा आयेगा आप ही हिसाब लगाइए। लेकिन दाँत घिसने के बारे में हमने औद्योगीकरण (इण्डस्ट्रियलाइजेशन) नहीं किया। हर मनुष्य प्रतिदिन सुबह अपने दाँत घिस लेता है, तो सारे देश का दाँत घिसने का काम दस मिनट में खतम हो जाता है। इसी तरह हमने अनुभव किया है कि मनुष्य हर रोज आधा घण्टा सूत कातकर तो अपने लिए सालभर का कपड़ा बना लेता है। लेकिन इन दिनों इस तरह की योजनाएँ नहीं बनतीं बड़े-बड़े कारखाने खोलने की ही योजनाएँ बनती हैं, जिनसे लोग परावलम्बी बन जाते हैं। हमने देखा है कि बिलकुल बंगाली लोग भी आज कपड़े के मामले में परावलम्बी बन गये हैं।

सहकार का सूत्र

हर मनुष्य देश के लिए आधा घण्टा श्रम करे —या हर गाँव के लोग आपस में ... सभी लोग एक-दूसरे के गाँव में जाकर काम कर देंगे। लेकिन आज इस काम में बाधा इसलिए आती है कि मनुष्य सोचता है कि मैं दूसरे के ... में जाकर काम क्यों करूँ? इसलिए हमने कहा है कि गाँव की सारी जमीन सबकी है ऐसा समझना चाहिए। एक दिन हमने ग्राम की सभा में ... की देखरेख ... सब लोग निकल पड़े और ... के खेत में

बाकर उसे साफ करने का काम करने लगे। खेत में कितने कंकर-पत्थर थे सारे उठाकर मेंड़ बनायी और खाद भरने से सारा खेत सुन्दर बन गया। बाद में पता लगने पर मालूम हुआ कि वह एक विधवा का खेत था जिसकी मदद करने वाला कोई नहीं था। उस काम से हमें कुछ भी तकलीफ नहीं हुई बल्कि थोड़ा सा व्यायाम हो गया और उस विधवा को सहायता मिली। इस तरह अगर गाँव के सब लोग समझें कि गाँव की कुल जमीन सबकी है तो हर कोई हर किसीके खेत में जाकर काम कर देगा। लेकिन आज हालत यह है कि हर किसान रात को जागता है, इसलिए कि पड़ोसी का बैल उसकी फसल न खा जाय। पड़ोसी पड़ोसी एक दूसरे से डरते हैं और दोनों रात को जागते हैं। अगर सारे गाँव की खेती एक हो जाती है तो इस तरह हर किसान को रातभर जागना न पड़ेगा।

जमीन के साथ पैसा का भी दान

यहाँ दान की परम्परा चले तो हमारा देश सुखी हो सकता है, एकरस बन सकता है। जब प्रेम के साथ कुछ बढ़ता है, तो वह पुन कल्याणकारी होता है। कुछ लोग पूछते हैं कि बाबा दान क्यों माँगता है, सरकार से कानून क्यों नहीं करवा लेता? हम कहते हैं कि सरकार का काम सरकार करेगी और बाबा का काम बाबा करेगा। बाबा का काम सरकार नहीं कर सकती। सरकार जमीन छीन सकती है, पर प्रेम पैदा नहीं कर सकती। बाबा जमीन माँगता है, तो देनेवालों और लेनेवालों में प्रेम पैदा होता है। सरकार जमीनें छीनती है तो जमीनवालों से यह नहीं कह सकती कि और पैसा भी दीजिये; उल्टे सरकार को ही उन लोगों को मुआवजा देना पड़ता है। लेकिन बाबा लोगों से कहता है कि जमीन दी है तो अब बैल दीजिये, बीज भी दीजिये, तो लोग देते हैं। हम कहते हैं कि आपने किसीको अपनी लड़की दी और वह आदमी गरीब है तो आप उसको और भी मदद देते हैं न! तो इसी तरह भूमि हीन को और मदद देनी चाहिए। बिहार के पूर्णियाँ जिले से वैद्यनाथ बाबू ने हमें लिखा है कि वे एक गाँव में जमीन का बँटवारा करने गये थे तो भूमि-हीनों को भूमि देने के बाद उन्होंने दाताओं से कहा कि आपने जमीन तो दी पर उसके साथ बैल भी चाहिए। तुरंत दाताओं ने कितनी बैल जोड़ियों की जरूरत थी उतनी

दे दी। सरकार जमीन छीन सकती है लेकिन क्या वह इस तरह कैश भी छीन सकती है? इसलिए यह सरकार का काम नहीं है। यह तो प्रेम बढ़ाने का काम है और उसके साथ-साथ जमीन मिलेगी। यह केवल जमीन बाँटने का काम नहीं, हिन्दुस्तान को एकरस बनाने का काम है। दिल के साथ दिल जोड़ने का काम है हृदय शुद्धि का काम है। यह एक नैतिक आन्दोलन है, यह एक धर्म प्रक्रिया का काम है।

नागरिक सम्पत्तिदान दें

नागरिकों से मेरी माँग है कि आप जीवनभर अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा समाज को अर्पण करने का दान-पत्र बाबा को दीजिये। बाबा अपने पास सिर्फ कागज रखेगा। एक अखबारवाले ने हम पर टीका की थी कि 'बाबा इतना भोला है कि अपने पास सिर्फ कागज ही रखता है। उसे न जमीन चाहिए और न सम्पत्ति उसे तो कागज ही चाहिए। उनके कहने का मतलब यह था कि लोग बाबा को ठगेंगे और बाबा के हाथ में सिर्फ कागज ही रह जायेंगे। लेकिन बाबा के पास सैकड़ों पत्र आते हैं, जिन लोगों ने सम्पत्ति-दान दिया है वे बार-बार बाबा से पूछते हैं कि आपका पैसा हमारे पास पड़ा है वह किस काम में लगाया जाय इस बारे में कुछ निर्देश दीजिये। हमें अभी तक एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिला जिसने सम्पत्ति का दान पत्र लिखकर हमें ठगा हो। बाबा विश्वास रखता है और यही बाबा की ताकत है। जो मनुष्य विश्वास के साथ काम देता है वह सोच-विचार करके काम करता है। हमने नियम किया है कि जो मनुष्य सम्पत्ति दान देगा वह अपनी पत्नी और परिवारवालों की सम्मति से देगा। एक पचास रुपया कमानेवाले भाई ने हमें लिखा कि मैं आपको प्रति रुपया एक पैसा देना चाहता हूँ। तब मैंने उससे कहा कि आपको अपनी पत्नी की सम्मति लेनी चाहिए तो उसने उत्तर दिया कि यह कोई ज्यादा दान नहीं है इसमें क्या पूछना। हमने उनको लिखा कि आप पचास रुपया तनख्वाह में से रुपये पीछे एक पैसा दे रहे हैं तो हम आपका दान बहुत बड़ा मानते हैं। इसलिए जब तक आप अपनी पत्नी से नहीं पूछते, तब तक आपका

दान ग्रहण न करेंगे। आखिर उसने अपनी पत्नी की सम्मति ली तब हमने उसका दान ग्रहण किया। तो क्या आप समझते हैं कि वह मनुष्य हमें ठगेगा। अगर वह ठगना चाहता तो दान ही क्यों देता? बाबा ने जबरदस्ती तो नहीं की थी और न अखबार में उसका नाम प्रकट किया था। उसे दान देने से कोई मान-सम्मान नहीं मिलनेवाला था। इसलिए जो दान देता है, वह पूरा सोच विचार कर देता है।

लड़के श्रमदान दें

हम चाहते हैं कि छोटे लड़के भी देश के लिए कुछ करें। हर रोज आधा घंटा सूत कात सकते हैं और वह सूत देश के लिए भूदान समिति के पास अर्पण कर सकते हैं। अगर उन्होंने रोज १५ तार काते, तो उनकी तरफ से समाज को प्रतिदिन एक पैसे के हिसाब से महीने में आठ आने का दान मिलेगा। इन लड़कों के पास श्रम-शक्ति है इसलिए वे बड़े श्रीमान् हैं। वे देश को श्रमदान दे सकते हैं। भगवान् ने हमें दो हाथ दिये हैं, तो उनसे पचासों काम बन सकते हैं। इन दो हाथों से हम बीमारों की सेवा कर सकते हैं किसी डूबनेवाले को बचा सकते हैं और दोनों हाथ जोड़कर भगवान् की भक्ति भी कर सकते हैं। भगवान् ने हरएक को खाने के लिए एक छोटा-सा मुँह दिया है, काम करने के लिए दो लम्बे हाथ और दस अंगुलियाँ दी हैं। वेदों में कहा है कि भगवान् ने मनुष्य को दस कर दिये हैं। लेकिन इन दिनों शिक्षित लोग दस अंगुलियों से काम नहीं करते बल्कि तीन ही अंगुलियों से काम कर ढेर पैसा कमाना चाहते हैं।

इस तरह हरएक के पास जमीन सम्पत्ति, विद्या श्रम शक्ति आदि जो कुछ है, उसका एक हिस्सा समाज के लिए देना चाहिए। बाबा की यह माँग आप कबूल कीजिये और फिर देखिये कि हिन्दुस्तान सुखी होता है या नहीं? फिर भी अगर देश सुखी न हुआ, तो बाबा को फाँसी दे दीजिये।

कोरापुट
१४-९ न

वे अर्जुन के घोड़ों की सेवा करते थे और उसका खरहरा भी करते थे। राजसूय यज्ञ के समय उन्होंने युधिष्ठिर महाराज से काम माँगा तो युधिष्ठिर ने कहा कि आपके लिए हमारे पास काम नहीं है। लेकिन भगवान् ने कहा कि मैं बेकार नहीं रहना चाहता। युधिष्ठिर ने कहा कि आप ही अपना काम ढूँढ लीजिये। भगवान् ने कहा कि मैंने अपना काम ढूँढ लिया जूठी पत्तलें उठाने का और गोबर लीपने का काम मैं करूँगा। मैं उस काम के लायक हूँ। मैंने बचपन से वह काम किया है और उस काम में मैं प्रवीण हूँ। इस तरह उन्होंने जूठी पत्तल उठाने का काम किया जिसका वर्णन शुकदेव ने भागवत में और व्यास भगवान् ने 'महाभारत' में किया है। और वह योगी भगवान्, जो कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को ब्रह्म-विद्या का उपदेश भी दिया।

आज का भोगैश्वर्यपरायण शिक्षण

हमारे देश के लड़के ऐसे होने चाहिए कि इधर तो ब्रह्म-विद्या का ज्ञान करें और उधर झाड़ू लगावें, गोबर लीपें, खेत में मेहनत करें। आज की तालीम ऐसी है कि उसमें न तो ब्रह्म-विद्या का पता है न उद्योग का। ब्रह्म-विद्या न होने का परिणाम यह हो रहा है कि हम सब विषय-भोग-परायण और इन्द्रियों के गुलाम हो गये हैं। जो पढ़ा-लिखा होता है वह आरामतलब हो जाता है। उसके मन में सतत भोग और ऐश्वर्य की लालसा बनी रहती है। तालीम में उद्योग न होने के कारण हाथ भी बेकार बन जाते हैं। इस तरह आत्म-ज्ञान के अभाव में बुद्धि बेकार और उद्योग के अभाव में हाथ बेकार हो जाते हैं। फिर ये शिक्षित लोग दस उँगलियों से काम करने के बजाय हाथ में लेखनी लेकर तीन उँगलियों से ही काम करते हैं। अगर इस तरह की विद्या इनको हासिल होगी तो देश नष्ट हो जायेगा।

ब्रह्मविद्या और उद्योग

इसलिए आज की तालीम बदलनी होगी। हमें अपनी तालीम में ब्रह्म-विद्या और उद्योग दोनों बातें शामिल करनी होंगी। ब्रह्म-विद्या से आत्मा की पहचान हो सकेगी। शरीर, मन और इन्द्रियों पर काबू रहेगा। सारी दुनिया

के प्रति प्रेम पैदा होगा, स्व-पर का भेद मिट जायगा। यह छोटा-सा घर मेरा है, यह खेत मेरा है इस तरह की सब बातें मिट जायँगी। जिसे ब्रह्म-विद्या हासिल हुई हो वह 'मेरा मेरा' नहीं करेगा। वह कहेगा कि यह घर यह जमीन यह सम्पत्ति सबकी है। लेकिन जिन्हें भ्रम विद्या मिलती है वे कहते हैं कि यह सब 'मेरा' है।

हमारी तालीम में हर लड़का दोनों हाथों से काम करेगा और स्वावलम्बी बनेगा। हर लड़का उत्तम रसोई करेगा। सब लड़के खेत में मेहनत करेंगे। अब तो देश में इतना आलस फैला हुआ है कि सारे उद्योग खतम हो रहे हैं। अब हमें अच्छे उद्योग करनेवाले लोग चाहिए, अच्छे बढ़ई चाहिए, बुनकर चाहिए, इंजीनियर चाहिए, लोहार चाहिए, चमार चाहिए, सिपाही और सेनापति चाहिए। हमें ऐसे व्यापारी चाहिए, जो व्यापार करके लोगों की रक्षा करें, जिनको ठगें नहीं। कोई धन्धा ऊँचा या कोई नीचा न होगा। कोई भी यह नहीं कहेगा कि फलाना काम मैं नहीं कर सकता क्योंकि वह हीन काम है।

निर्भयता की आवश्यकता

आज दुनियाभर लड़ाई के लिए शस्त्रास्त्र बढ़ाये जा रहे हैं। हर देश में बंदूक, हवाई जहाज, ऐटम बम और हाइड्रोजन बम बनाये जा रहे हैं। अगर यही सिलसिला चला तो सारी दुनिया का खात्मा हो जायगा। इसके आगे जो लड़ाई होगी उसमें मानव-समाज जिन्दा न रहेगा। अगर हम ऐसी हिंसा का मुकाबला करना चाहते हैं, तो हम निर्भय बनना होगा। माता पिता और गुरु अपने लड़कों और शिष्यों को डराये या धमकायें नहीं। उन्हें प्रेम से बात समझायें। अगर वे अपने बच्चों को मार-पीटकर अच्छी बातें सिखाना चाहेंगे तो लड़के डरपोक बनेंगे। फिर तो आगे चलकर कोई भी धमकाकर उनसे काम करवा लेगा।

आजकल गाँव के लोग पुलिस से भी डरते हैं। लेकिन हम गाँववालों को समझाना चाहते हैं कि अब स्वराज्य आ गया है। ये बड़े-बड़े मन्त्री आपके नौकर हैं। आपने पाँच साल के लिए इन्हें नौकरी पर रखा है। पाँच साल बाद वे फिर से आपके पास वोट माँगने आयेंगे। आप मालिक हैं इसलिए आपको इनसे

न करना चाहिए। अवश्य ही नौकरी की इज्जत करना और उनसे प्यार भी करना चाहिए। फिर वह पुलिस हो उनके नौकर हैं। मगर आपके नौकरों के नौकर! उनसे तो हरगिज न डरना चाहिए।

पहले तो पति भी पत्नी से कहता था कि मैं तेरा धन हूँ और तू मेरी दासी। पर अब वह नहीं चलेगा। अब पति पत्नी का धन बनेगा तो पत्नी उसकी देवी। पत्नी पतिव्रता रहेगी तो पति पत्नीव्रती। अब तक जो एकतरफा धर्म चलता था वह अब नहीं चलेगा। जिस देश में डराना-धमकाना चलता है वहाँ लोग डरपोक बन जाते हैं। अगर रूसवाले या अमेरिकावाले हमें धमकायेंगे तो हम कहेंगे कि आप हमें क्यों धमका रहे हो। हम तो अपनी खेती करके रोटी हासिल करते हैं, हम कोई गुनहगार नहीं। हम तो हरि के दास हैं। हरि के दास किसीके सामने सिर नहीं झुकाते। इन दिनों जो सिर झुकाकर प्रणाम करने की बात चलती है, वह भी मुझे अच्छी नहीं लगती। आज आप बाबा के सामने सिर झुकाते हैं, कल किसी डरानेवाले के सामने झुकायेंगे। इसलिए सिर तो परमेश्वर के ही सामने झुकाना चाहिए। और सबको नमना हो, दोनों हाथों से प्रणाम करना चाहिए।

नये समाज और नये राष्ट्र की बुनियाद भूदान

हमें इस तरह का नया समाज और नया राष्ट्र बनाना है, जिसमें सब लोग दोनों हाथों से काम करेंगे। कोई ऊँच नहीं और कोई नीच नहीं होगा। कोई मालिक नहीं और कोई मजदूर नहीं होगा। सब भाई-भाई बनकर रहेंगे। उनके दिलों में प्रेम होगा, सिर में बुद्धि और हाथ में श्रम-शक्ति होगी। कोई किसीसे डरेंगे नहीं और न कोई किसीको डरायेंगे ही। सब आत्मा को पहचानते होंगे, देह की फिक्र नहीं करेंगे, इन्द्रियों पर काबू रखेंगे और जिह्वा के गुलाम नहीं बनेंगे। इस तरह का देश हमें बनाना है। आज हमें वह मौका मिला है। इस तरह का सर्वोदय-समाज हम बनायेंगे और उसकी बुनियाद भूदान-यज्ञ होगी।

हमें भूदान-यज्ञ में डराकर या धमकाकर जमीन नहीं माँगनी है, बल्कि प्रेम से विचार समझाना है। अगर आपसे कोई धमकाकर जमीन माँगेगा, तो हरगिज मत दीजिये। विचार और प्रेम में इतनी ताकत है कि जो प्रेम से विचार सम-

जायेगा वह दुनिया को जीत लेगा। बाबा को अब तक ३८ लाख एकड़ जमीन मिली है तो क्या बाबा के हाथ में तलवार है या डंडा है? बाबा तो प्रेम से विचार समझाता है और लोग उसकी बातें मानते हैं।

विचार भगवान और प्रेम भक्त

प्रेम से बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं। जहाँ प्रेम और विचार, दोनों एक हो जाते हैं, वहाँ योगेश्वर कृष्ण और पार्थ धनुर्धर एक होते हैं, इसलिए विजय प्राप्त होती ही है। जहाँ भक्त और भगवान् दोनों एक हुए, वहाँ उसे कौन जीत सकता है! विचार हमारा भगवान् है। जहाँ प्रेम और विचार एक हो जाते हैं, वहाँ ज्वालामुखी जैसी ताकत पैदा होती है। भूदान-यज्ञ में जो ताकत है वह प्रेम और विचार की ताकत है। आप गाँव-गाँव जाकर प्रेम से यह विचार समझा दीजिये कि गाँव में कोई भूमि हीन न रहेगा। मालिक भगवान् होगा और हम सारे सेवक। सब एक दूसरे को मदद करेंगे।

गौरंगपुर
१-८-५५

भूदान-आरोहण की पाँच भूमिकाएँ : ३२ :

भूदान-यज्ञ का आरम्भ सवा चार साल पहले तेलंगाना में हुआ था। वहाँ एक विशेष परिस्थिति थी और उसमें जो करना उचित था उस दृष्टि से काम का आरम्भ हुआ। वहां जमीन के मालिक और मजदूरों में द्वेषभाव, तिरस्कार आदि भावनाएँ थीं, जिन्हें हटाना जरूरी था। उसी दृष्टि से वहाँ जो आरम्भ हुआ, उसका सारे देश पर असर हुआ। फिर तो एक विशेष विचार का मंथन हुआ। भूदान-आन्दोलन की यह प्रथम भूमिका थी।

उसके बाद दूसरी भूमिका शुरू हुई, जब यह चीज सारे हिन्दुस्तान में फैली। तेलंगाना में तो एक विशेष परिस्थिति में काम हुआ; यह काम सारे देश में हो सकता है या नहीं यह देखना था। हमारे दिल्ली के प्रवास में जो काम हुआ

इसने भूदान-यज्ञ की दूसरी भूमिका सिद्ध हुई और सारे देश का ध्यान इस काम की तरफ खिंच गया। उसका चारों ओर व्यापक प्रचार हुआ।

उसके बाद कार्यकर्ताओं के मन में विश्वास पैदा होना जरूरी था। उसकी ओर हमारा ध्यान गया। इसलिए उत्तर प्रदेश में पाँच लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का एक छोटा-सा संकल्प और सारे भारत के लिए पचीस लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का संकल्प किया गया। दोनों संकल्प पूरे हो गये और कार्यकर्ताओं में आत्मनिष्ठा पैदा हुई। तब इस आन्दोलन की तीसरी भूमिका सम्पन्न हुई।

उसके बाद बिहार में यह प्रश्न हुआ कि वहाँ कुल जमीन का छठा हिस्सा प्राप्त हो और तब भूमिहीनों को भूमि मिले। बिहार में काफी काम हुआ और एक बाढ़ पुल गयी। एक ही प्रदेश में लाखों एकड़ जमीन प्राप्त हो सकती है और लाखों लोग दान दे सकते हैं, यह दृश्य बिहार में देखने को मिला। वहाँ जो जमीन मिली उसका हम उतना महत्त्व नहीं मानते हैं, जितना इस बात का मानते हैं कि वहाँ करीब तीन लाख लोगों ने दान दिया। दाताओं की संख्या का महत्त्व अधिक है। उससे लोगों के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई कि यह चीज चल सकती है। लाखों लोगों ने बड़ी श्रद्धा से दान दिया इसका में साक्षी हूँ। यह ठीक है कि समुद्र में जब पानी आता है, तो कुछ मैला भी आता है। इसलिए सारे दान में कुछ दान ऐसे होंगे जिन्हें सात्त्विक दान न कहा जा सकेगा। फिर भी उसमें सात्त्विक दान का अंश भी काफी पड़ा है। आखिर यह समझना चाहिए कि दुनिया में सत्य गुण का कितना अंश है उससे ज्यादा क्या भूदान यज्ञ में कैसे होगा। लेकिन हम मानते हैं कि वहाँ जो काम हुआ उससे सात्त्विक भावना जाग गयी। कुल जमीन के छठे हिस्से की जो माँग थी वह अभी पूरी नहीं हुई है। लेकिन वहाँ के कार्यकर्ता थके नहीं हैं, काफी काम में लगे हैं। हमारे बिहार छोड़ने के बाद उनकी कसौटी थी। वे उस कसौटी पर खरे उतरेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। अभी वहाँ जमीन का बँटवारा हो रहा है। उसके बाद और जमीन मिलेगी और वातावरण बदल जायगा। भूमि का मसला कैसे हल हो सकता है, इसकी यह शुरू ही आकृति। यहाँ कार्यकर्ता अब कभी सोचने बैठते हैं तो सब भूमिहीनों को भूमि देने की दृष्टि से ही सोचते हैं यह कोई छोटी बात नहीं। यद्यपि वहाँ का

उससे भूदान-यज्ञ की दूसरी भूमिका सिद्ध हुई और सारे देश का ध्यान इस काम की तरफ खिंच गया। उसका चारों ओर व्यापक प्रचार हुआ।

उसके बाद कार्यकर्ताओं के मन में विश्वास पैदा होना जरूरी था। उसकी ओर हमारा ध्यान गया। इसलिए उत्तर प्रदेश में पाँच लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का एक छोटा-सा संकल्प और सारे भारत के लिए पचास लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का संकल्प किया गया। दोनों संकल्प पूरे हो गये और कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास पैदा हुआ। तब इस आन्दोलन की तीसरी भूमिका समाप्त हुई।

उसके बाद बिहार में यह प्रयत्न हुआ कि वहाँ कुल जमीन का छठा हिस्सा प्राप्त हो और सब भूमिहीनों को भूमि मिले। बिहार में काफी काम हुआ और एक हद छू गयी। एक ही प्रदेश में लाखों एकड़ जमीन प्राप्त हो सकती है और लाखों लोग दान देते हैं, यह हमें बिहार में देखने को मिला। वहाँ जो जमीन मिली उसका हम उतना महत्त्व नहीं मानते हैं, जितना इस बात का मानते हैं कि वहाँ करीब तीन लाख लोगों ने दान दिया। दाताओं की संख्या का महत्त्व अधिक है। उससे लोगों के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई कि यह चीज फैल सकती है। लाखों लोगों ने बड़ी श्रद्धा से दान दिया, इसका मैं साक्षी हूँ। यह ठीक है कि समुद्र में जब पानी आता है, तो कुछ मैला भी आता है। इतने सारे दान में कई दान ऐसे होंगे, जिन्हें सात्त्विक दान न कहा जा सकेगा। फिर भी उसमें सात्त्विक दान का अंश भी काफी बड़ा है। आखिर यह समझना चाहिए कि दुनिया में सत्त्व गुण का कितना अंश है, उससे ज्यादा अंश भूदान-यज्ञ में कैसे दीखेगा। लेकिन हम मानते हैं कि यहाँ जो काम हुआ उससे सात्त्विक भावना जाग गयी। कुल जमीन के छठे हिस्से की जो माँग थी, वह अभी पूरी नहीं हुई है। लेकिन वहाँ के कार्यकर्ता सोये नहीं हैं, काफी काम में लगे हैं। हमारे बिहार छोड़ने के बाद उनकी कसौटी थी। वे उस कसौटी पर खरे उतरेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। अभी वहाँ जमीन का बँटवारा हो रहा है। उसके बाद और जमीन मिलेगी और वातावरण बदल जायगा। भूमि का मसला कैसे हल हो सकता है, इसकी राह खुल ही जायगी। वहाँ कार्यकर्ता जब कभी सोचने बैठते हैं तो सब भूमिहीनों को भूमि देने की दृष्टि से ही सोचते हैं, यह कोई छोटी बात नहीं। यद्यपि वहाँ का

काम अभी तक पूरा नहीं हुआ है, लेकिन पूरा होने की सूरत दीखने लगी है। और जैसा मैंने कहा था यहाँ का वातावरण बदल गया है और कुल प्रांत में ऐसी हवा पैदा हुई है कि उसका लाभ सरकार कानून बनाने में ले सकती है। भूदान-यज्ञ की चौथी भूमिका यहाँ समाप्त हुई।

अब उड़ीसा में आन्दोलन की पाँचवीं भूमिका का आरम्भ हुआ है। यहाँ जो काम हो रहा है, उसमें क्रान्ति का दर्शन है। गाँव-के-गाँव एक परिवार के समान बन जायेंगे। उसे क्या नाम देना चाहिए, इस बारे में अर्थशास्त्रियों में विवाद हो सकता है। लेकिन मैं सीधी-सी बात कहता हूँ कि 'गाँव का परिवार' बनाना चाहिए। हिन्दुस्तान में परिवार भावना काफी अच्छी और मजबूत है। उसका विकास कर उसे ग्राम का रूप देना है। उसके बाद 'ग्रामराज्य' की स्थापना का जो मार्ग है, उसकी नींव बन जायगी। फिर आगे मकान बनाना होगा। इसलिए मैंने कहा है कि यहाँ जो भूमिका तैयार हो रही है, वह भूदान-यज्ञ की आखिरी भूमिका है।

अभी तो कार्य का आरम्भ ही

इसके बाद काम खतम हो जायगा, ऐसी बात नहीं है। बल्कि इसके बाद काम का आरम्भ होगा। हमें जो चीज करनी है, उसके लिए इतना [illegible] मसाला तैयार किये बिना और काम नहीं हो सकता था। हमने लोगों को थोड़ी राहत पहुँचाने का काम नहीं सोचा था, यद्यपि हमारे काम से राहत मिल ही जाती है। हमारा मकसद था आर्थिक जनशक्ति निर्माण करना। गाँव का एक परिवार बने बगैर आर्थिक जनशक्ति निर्माण नहीं होती। इसलिए हम वर्षों से सोचते थे कि इसके लिए क्या साधन मिल सकता है। इसका आरम्भ कैसे किया जाय। हमारे पचीस-तीस साल गाँवों की सेवा में बीते हैं और उसमें ग्राम के सब पहलुओं का जितना चिन्तन हो सकता था, हमने किया है। हमारा ग्राम-शक्ति पर पहले से ही विश्वास था और आज भी है। लेकिन उस समय हमारे हाथ में स्वराज्य नहीं आया था, इसलिए हम सोचते थे कि स्वराज्य आने के बाद ही कुछ काम बन सकेगा। अब स्वराज्य भी प्राप्त हो गया है। इसलिए हमारे लिए

पर जो असहाय बोझ पड़ा था, वह हट गया और जन-शक्ति निर्माण करने की सहूलियत हो गयी है।

ग्राम-दान से काम में गहराई

भूदान-यज्ञ में एक के बाद एक पाँच सीढ़ियाँ चढ़ने का जो मौका मिला, उसकी बुनियाद है, हमारा तीस साल का ग्राम-सेवा का काम। इसीलिए जब हमने देखा कि इस जिले में यह बात बन सकती है, तब हमने अपना यहाँ का निवास और बढ़ाया। हमने सारे हिंदुस्तान से छठे हिस्से की याने पाँच करोड़ एकड़ की जो माँग की है, उससे देश में एक बड़ा काम बनेगा। किंतु यहाँ समग्र ग्रामदान से जो काम हो रहा है, वह न होता तो पाँच करोड़ एकड़ जमीन मिल जाने के बाद भी हमें जनशक्ति निर्माण करने के लिए कोई और साधन ढूँढ़ना पड़ता। हमारी पाँच करोड़ एकड़ की माँग जारी भी कायम है और चाहते हैं कि सारे हिंदुस्तान के सब लोग इसे जल्द-से-जल्द पूरा कर दें। इससे जो काम बनेगा, वह व्यापक होगा। लेकिन ग्रामदान से जो काम होता है, वह गहरा काम होता है। व्यापक काम भी चलना चाहिए और उसे हमने इन चार सालों में जितनी चालना दे सकते थे दी है। खुशी की बात है कि भिन्न-भिन्न संस्थाएँ इस बारे में सोच रही हैं। अब परमेश्वर की कृपा से इस गहरे काम को भी चालना देने का काम हो रहा है। हमारा विश्वास है कि कोरापुट से सारे हिंदुस्तान को यह मिलेगी।

भूमिकाओं का नामकरण

पहली भूमिका केवल स्थानिक दुःख निवारण की थी। उसे हमने 'अशांति-शमन' नाम दिया। दूसरी भूमिका व्यापक वातावरण बनाने की थी और सारे देश का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने की थी। इसलिए उसे हमने 'ध्यानाकर्षण' नाम दिया। तीसरी भूमिका कार्यकर्ताओं में आत्म-विश्वास पैदा करने की थी। उसको हमने 'निष्ठा-निर्माण' नाम दिया। चौथी भूमिका एक प्रदेश में छठे हिस्से भूमि की माँग किस तरह पूरी हो सकती है, यह देखने की थी। उसे हमने 'व्यापक भूमि-दान' नाम दिया है। और पाँचवीं भूमिका ग्राम का एक परिवार

है कि ग्रामदान के बाद जब ग्राम निर्माण का काम शुरू होगा तब गाँव गाँव में गोकुल और वृन्दावन देखने को मिलेगा।

डुमरीपाडर
१-५-५५

व्यक्तिगत स्वामित्व विसर्जन ही सच्चा स्वार्थ ३३ :

सर्वोदय का विचार समग्र विचार है और भूदान-यज्ञ उसकी बुनियाद है। सर्वोदय में सबकी उन्नति होती है, सब समान होते हैं, सब भाई भाई बनते हैं, कोई ऊँच नहीं कोई नीच नहीं। जैसे वैष्णवों में सब अपने को मद्ध और सबसे हीन समझते हैं, वैसे ही सर्वोदय का भक्त अपने को सबसे हीन और सबको अपने से श्रेष्ठ समझता है। सर्वोदय का अर्थ है : सब लोग सुखी रहें, पीछे मैं सुखी बनूँगा। सबको रहना मिले, पीछे मुझे मिले। सर्वोदय की मूर्ति सर्वोदय की मिसाल तो घर की माता है। कुछ लोग कहते हैं कि सर्वोदय की तालीम के लिए शिविर खोलने चाहिए, कॉलेजों में उसकी तालीम देनी चाहिए। मैं कहता हूँ कि यह तो सब जरूर होना चाहिए। लेकिन सर्वोदय की तालीम की एक विद्यालय खोलना हो चुकी है। सर्वोदय की तालीम विनोबा नहीं देता, हर माता घर-घर में अपने बच्चों को देती है। हर माता बच्चों को दूध के साथ सर्वोदय सिखाती है। माता घर के सब लोगों को खिलाकर खाती है—यह जो उसकी वृत्ति है, वह सर्वोदय की ही वृत्ति है। इस तरह सर्वोदय की मिसाल सर्वोदय का गुरु जब हर घर में मौजूद है, तो इसमें ऐसी कोई कठिन बात नहीं जिसे समझना मुश्किल होगा।

घर का न्याय गाँव में लागू करो

एक भाई ने लिखा था कि "यह बाबा सबको परमार्थी बनाना चाहता है। मनुष्य में परमार्थ की भावना थोड़ी होती है और स्वार्थ की मात्रा ज्यादा, यह बात बाबा नहीं समझता।" मैं कहता हूँ कि मनुष्य के लिए यह विनोबा

गलत विचार है। मनुष्य का स्वार्थ ही इस चीज में है कि वह समाज के लिए अपना सब कुछ त्याग करे। मनुष्य दूसरों के लिए जितना त्याग करता है, उतना ही उसका स्वार्थ सधता है। माता को घर में जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह कौन-से स्वार्थी और लोभी मनुष्य को उपलब्ध होता है ? माताओं से पूछिये कि आप पहले खुद खायेंगी और पीछे खिलायेंगी, तो आपको कितना आनन्द मिलेगा ? अगर माताएँ बच्चों से कहें कि तुम्हारा सारा आधार मेरे पर है इसलिए मेरा शरीर मजबूत रहना चाहिए। मैं पहले दूध पीऊँगी पीछे तुम पीओ—अगर माताएँ आधुनिक अर्थशास्त्रियों के शिक्षण में ऐसा स्वार्थ साधें—तो उन्हें क्या सुख मिलेगा ? इस तरह जब हर घर में परमार्थ की मिसाल मौजूद है और हर घर में यह अनुभव आता है कि जो त्याग करता है, उसे आनन्द प्राप्त होता है तो बाबा इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। वह इतना ही कहता है कि आनन्द की जो क्रिया आनन्द की जो युक्ति तुम्हें घर में हासिल हुई है, उसका प्रयोग गाँव में करो। घर में तुम अपने परिवार के लिए चिन्ता करते हो और अपने सुख के लिए नहीं करते। तो जो न्याय घर में लागू करते हो वही गाँव को लागू करो तो तुम्हारा आनन्द बहुत बढ़ेगा।

यह बात समझना इतना आसान है कि बिलकुल अपढ़ लोग भी समझ गये हैं और कोरापुट के तीन सौ पचास गाँवों के लोगों ने कुल गाँव की जमीन का दान दिया है। मेरा दावा है कि मैं समाज को सच्चे स्वार्थ की तालीम दे रहा हूँ। हिन्दुस्तान के हर मनुष्य का स्वार्थ इसीमें है कि वह व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन करे।

जीवित समाज का लक्षण

इसी तरह जिस समाज के लोग अपने दुःख की चिन्ता किये बगैर दूसरों की चिन्ता करते हैं, वही जिन्दा समाज है। जैसे हाथ के पास आया हुआ लड्डू हाथ चीरकर मुँह के पास पहुँचा देता है वैसे ही जिस समाज के लोग अपने पास आयी सम्पत्ति दूसरों के पास पहुँचा देते हैं, वह समाज जिन्दा समाज है और जिस समाज के लोग जमीन और सम्पत्ति को पकड़ रखते हैं वह मुर्दा समाज है। एक दफा एक लड़का मेरे पास

आया। उसके कान में दर्द था, इसलिए वह रो रहा था। मेरा बड़ा विनोदी स्वभाव है, इसलिए मैंने उससे पूछा कि 'अरे, कान में दर्द है, तो आँखें क्यों रो रही हैं?' लेकिन कान का दुःख आँख के पास पहुँचता है, यह जीवित शरीर का लक्षण है। अगर किसीके कान में सूई ठोंके और उसकी आँखों से आँसू न निकलें, तो समझना चाहिए कि वह मरा हुआ मनुष्य है। इसी तरह जिस गाँव में भाइयों-पड़ोसियों का दुःख एक दूसरे के पास नहीं पहुँचता, उस गाँव का समाज मुर्दा है।

प्रेम और विचार की ताकत

यह बात इतनी स्वाभाविक है कि हर कोई समझता है। कुछ बड़े-बड़े लोग बाबा से मिलने के लिए डरते हैं। एक बार एक बड़े जमींदार से किसीने कहा कि बाबा आपके गाँव में आया है, तो उससे मिलने के लिए चलिये। उन्होंने कहा कि बाबा के लिए हमारे मन में बड़ा आदर है। हमने उनके ग्रन्थ पढ़े हैं। लेकिन अभी उनसे मिलने की इच्छा नहीं है। जब उनसे कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि अगर मिलने जायेंगे, तो वह जमीन माँगेगा और देनी पड़ेगी। इस पर प्रश्नकर्ता ने पूछा कि जमीन क्यों देनी पड़ेगी? आप नहीं देना चाहते हैं, तो मत दीजिये। सिर्फ बाबा की बात सुन लीजिये। बाबा के पास कोई ताकत नहीं है, वह तो केवल प्रेम से माँगता है। तो वे जमींदार भाई बोले कि यही तो बड़ी ताकत है। वह प्रेम से माँगता है और उसकी बात सही है, इसलिए हम उसे टाल नहीं सकते। जब मेरे पास यह पत्र आ पहुँचा तो मैंने कहा कि उनकी जमीन मुझे मिल ही चुकी। वह हमारी बात कबूल कर चुके हैं, इससे ज्यादा हम कुछ नहीं चाहते। अगर हिन्दुस्तान के सब लोग बाबा की बात हृदय से कबूल करते हैं, तो बाबा एक एकड़ जमीन भी नहीं चाहता। फिर मुझे जरूरत ही क्या है कि मैं जमीन लेने और बाँटने के धन्धे में पड़ूँ। जिस विचार ने बाबा को घुमाया है, वह विचार आपके हृदय में आयेगा, तो वही आपको भी घुमायेगा।

निमित्तमात्र बनो

भूदान-यज्ञ में सैकड़ों पावन कहानियाँ बनी हैं। यह सारा यही दिखा रहा है कि किसी की शक्ति कुछ काम करना चाहती है। हमें तो उस किसी शक्ति के

निमित्तमात्र बनना है। भगवान् ने गीता में अर्जुन से कहा है मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' —अरे, ये तो सब पहले ही मर चुके हैं, लेकिन अर्जुन तू निमित्तमात्र बन। इसी तरह मैं आपसे कहता हूँ कि हिन्दुस्तान में भूमि की मालकियत मर चुकी है। अब वह सामने आकर दान देंगे वे उदार साबित होंगे, वे विश्व-शक्ति के हाथ में औजार बनेंगे, कल्याणकारी शस्त्र बनेंगे, वे भगवान् के हाथ में सुदर्शन-चक्र के समान चमकेंगे। नहीं तो ये सारे राजनैतिक पक्षवाले मेरे पीछे क्यों आते ? क्या आप समझते हैं कि इन्हें बाबा से प्यार अधिक मिले हैं ? जब रहीम में से तेल निकलेगा तब बाबा से प्यार ज्ञान मिलेंगे। लेकिन स्पष्ट है कि बात भी बात सही है, इसलिए उसे कोई टाल नहीं सकता। बाबा ने भरोसा रखा था विश्व शक्ति पर, ग्राम शक्ति पर या ईश्वर की शक्ति पर आप उसे चाहे जो नाम दीजिये !

अविरोधी काम

एक बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि हमारा काम किसीके विरोध में नहीं है। 'सर्वेषाम् अविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे' —यह काम किसीके विरोध में शुरू नहीं होता। हमारा यह यज्ञ काम शुरू हुआ है, इसलिए इसमें किसीका विरोध नहीं है, सबका समन्वय है। इसमें दिल से दिल जोड़ने की बात है। इसलिए हमारा विश्वास है कि इस काम में हरएक राजनैतिक पक्ष के लोगों को पड़ना चाहिए। सबको समझना चाहिए कि सबकी भलाई के लिए यह काम हो रहा है। एक समय कम्युनिस्टों ने कहा था कि 'बाबा का काम श्रीमानों के हित में चल रहा है।' मैं यह तीन साल पहले की बात कह रहा हूँ। अब तो कम्युनिस्टों का दिल भी हमारे लिए अनुकूल हो रहा है। हमने तो पहले से ही कहा था कि हम गरीबों के लिए काम करते हैं, इसलिए सबका हृदय हम अनुकूल जरूर होगा। लेकिन जब हमने उनका यह आरोप सुना कि बाबा श्रीमानों का एजेण्ट है तो हमें बहुत खुशी हुई। लेकिन यह ऐसा एजेण्ट है कि इसके एक हाथ में श्रीमानों की एजेन्सी है और दूसरे हाथ में गरीबों की भी एजेन्सी। यह तो दोनों को जोड़ने वाला पुल है। पुल इधर के मनुष्यों को उधर पहुँचाता है और उधर के मनुष्यों

को इधर। उसी तरह आप गरीबों को श्रीमान् बनायेंगे और श्रीमानों को गरीब। दोनों को एक भूमिका पर लाकर दोनों में प्रेम बढ़ायेंगे और पुरोहित बनकर दोनों की शादी लगाकर पक्का बनायेंगे। फिर वह उनसे कहेगा कि अब अपना संसार प्रेम से चलाओ। इस तरह यह आन्दोलन दिलों के साथ दिल जोड़ने का आन्दोलन है।

भारत की शक्ति एकता में

हिंदुस्तान बहुत बड़ा देश है। इसकी ताकत एकता में है। अगर हम लोग दिल से एक हो जायेंगे, तो हमारी इतनी ताकत बनेगी कि दुनिया में हम अमर हो जायेंगे। लेकिन हमारे दिल एक न हुए, तो यह फसाद, यह कलह और यह बिखराव ही हमारा शत्रु हो जायगा। हम समझते हैं कि हम अमीरों से जमीन लेते हैं, तो उन पर उपकार करते हैं और गरीबों को देते हैं, तो उन पर भी उपकार करते हैं। गरीब भी अपनी लँगोटी की आसक्ति रखता है, ममत्वभाव रखता है। इसलिए हम गरीबों से कहते हैं कि तुम अपनी झोपड़ी की आसक्ति छोड़ दो तो अमीरों को भी अपने महल की आसक्ति छोड़नी पड़ेगी। लेकिन तुम अगर अपनी झोपड़ी की आसक्ति को पकड़ रखोगे, तो वे भी अपने महल को पकड़े रखेंगे। लोगों को समझना चाहिए कि गरीब और अमीर इस तरह अलग अलग दो वर्ग नहीं हैं। हम तो कहते हैं कि जिन्होंने व्यक्तिगत मालकियत से चिपके रहने का तय किया वे चाहे छोटे हों या बड़े एक ही वर्ग के हैं।

पार्वतीपुरम (आन्ध्र)

८-८-

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गाँव के लोगों की हालत सुधरेगी, ऐसी अपेक्षा लोगों ने रखी थी, वह गलत न थी। अगर स्वराज्य में जनता की हालत न सुधरे, तो उस स्वराज्य की कीमत ही क्या है? लेकिन वे यह समझे नहीं कि स्वराज्य के बाद हमारी हालत सुधारना हमारे ही हाथ में है। वे समझते हैं कि जैसे पहले मुसलमानों का या अंग्रेजों का राज्य था, वैसे अब कांग्रेस का राज्य आ गया है। लेकिन मुसलमानों के और अंग्रेजों के और भी किसी राजा के राज्य में आपके वोट किसीने माँगे नहीं थे। आज यहाँ जो राज्य चलाते हैं, वे लोगों के चुने हुए नौकर हैं। आप इन लोगों को सत्ता दी गयी है कि आप अपना राज्य जैसा चलाना चाहें वैसा चलाइये और अपना राज्य चलाने के लिए कौनसे नौकर रखने हैं, यह भी आप ही तय कीजिये। इस तरह आपसे वोट माँगा गया, आपने वोट दिया और पाँच साल के लिए अपने नौकर कायम किये। किसान अपने यहाँ सालभर के लिए नौकर रखता है। साल के आखिर में अगर उसने अच्छा काम किया हो, तो वह उसे फिर से रखता है, नहीं तो उसे हटाकर दूसरा नौकर रखता है। इसी तरह आपने पाँच साल के लिए नौकरों को चुना है। अगर आपको उनका काम अच्छा लगा, तो आप उन्हें दुबारा चुनेंगे, नहीं तो दूसरों को चुनेंगे।

स्वराज्य किसीके दान से नहीं मिलता

मतलब यह है कि यहाँ आप जो बैठे हैं, सब-के-सब बादशाह हैं, स्वामी हैं। लेकिन आपमें से हर व्यक्ति अलग-अलग स्वामी नहीं, सब मिलकर स्वामी हैं। इस तरह आप स्वामी तो बन गये, फिर भी अपने पास सत्ता है ऐसा हमें भान नहीं है। क्योंकि एक नाटक-सा हुआ, आपकी राय पूछी गयी और आपने राय दे दी। मान लीजिये, किसी घर में चार-पाँच साल के मूरख और बेवकूफ लड़के हैं। अगर उनसे पूछा जाय कि घर का कारबार

ऐसे चलाना चाहिए—उनसे वोट माँगे जायें तो क्या वे वोट देंगे ? वे तो यही कहेंगे कि आप यह क्या नाटक कर रहे हैं ? आप हमारे माँ-बाप हैं, आप ही हमारी चिंता कीजिये। वैसे तो लोगों ने कांग्रेसवालों से कहा कि आप बड़े हैं, आपने हमारी सेवा की है, आप हमारे माँ-बाप हैं, आप ही राज्य चलाइये। उधर तो वे कहते हैं कि हम आपके नौकर होना चाहते हैं, अगर आप हमें नौकरी पर रखेंगे तो हम नौकरी करना चाहते हैं और इधर ये लोग कहते हैं कि आप ही हमारे माँ-बाप हैं इसलिए आप ही हमारी चिंता कीजिये !

वास्तव में सत्ता किसीके देने से नहीं मिलती। सत्ता का अधिकार तो अन्दर से प्राप्त होना चाहिए। वैसे हिन्दुस्तान के लोग मूढ़ नहीं, काफी अच्छे समझदार हैं। अभी जो चुनाव हुआ वह भी कितने सुन्दर ढंग से हुआ ! लोगों को डर था कि यहाँ न मालूम क्या-क्या होगा, कितनी गड़बड़ियाँ होंगी ! लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बाहर के देशों के लोगों को आश्चर्य लगा कि हिन्दुस्तान के लोग अपढ़ होने पर भी यहाँ इतने ढंग से चुनाव कैसे हो सका। इसका कारण यही है कि हिन्दुस्तान के लोग दस हजार साल के अनुभवी हैं। वे अपढ़ जरूर हैं, लेकिन अनुभवी हैं, इसलिए ज्ञानी हैं।

हिन्दुस्तान के लोग यद्यपि समझदार हैं, फिर भी वर्षों से उन्हें गुलामी की आदत पड़ गयी है। वे सोचते हैं कि सरकार माँ-बाप की तरह हमारी चिंता करेगी। इसलिए अब जब कि उनके हाथ में सत्ता आयी है, उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि वास्तव में हमारे हाथ में सत्ता आयी है। क्या माता को माता का अधिकार कोई देता है ? माता तो अपने में मातृत्व का स्वयं अनुभव करती है। क्या शेर को किसीने जंगल का राजा बनाया है ? वह तो खुद अपना अधिकार महसूस करता है। इसी तरह स्वराज्य शक्ति का लोगों को अन्दर से भान होना चाहिए। पूछा जा सकता है कि आखिर यह कैसे होगा ? क्या गाँव गाँव के लोग दिल्ली का राज्य चलायेंगे ? नहीं, गाँव-गाँव के लोग तो गाँव-गाँव का ही राज्य चलायेंगे। तो फिर उन्हें राज्य चलाने का अनुभव हो जायगा।

गाँव-गाँव में 'मातृ-राज्य' चलाना पड़े

इस जमाने में जो राज्य होता है, वह 'राज्य' नहीं 'मात्स्य' होता है—वह

लोगों का राज्य होता है। पहले के जमाने में जो लोगों को दबाता था, वही राजा होता था। कहा जाता है कि जंगल का राजा शेर होता है। इसके माने यह है कि जो जंगल के प्राणियों को खा जाता है, वह राजा होता है। संस्कृत में पशुपक्षी के राजा को याने सिंह या शेर को 'मृगराज' कहते हैं। उस राजा के दर्शन होते ही सारे मृग थर थर काँपते हैं। इस प्रकार की राज्य-सत्ता अब न चलेगी। अब तो राज्य-सत्ता सेवा की सत्ता होगी। माता को घर में क्या अधिकार होता है? बच्चे को भूख लगी है, तो उसे दूध पिलाना माता का पहला अधिकार है। बच्चे को सुलाकर फिर सोना उसका नम्बर दो का अधिकार है। बच्चा बीमार पड़ा तो रात को जागना नम्बर तीन का अधिकार है। और घर में खाने की चीजें कम हों तो पहले बच्चे को खिलाना और बाद कुछ न बचे तो खुद फाका करना नम्बर चार का अधिकार है। आज का हमारा राज्य 'मातृराज्य' है न? फिर हमें गाँव-गाँव में उसके नमूने दिखाने होंगे।

गाँव-गाँव में जो बुद्धिमान्, सम्पत्तिमान् और समझदार होंगे वे गाँव के माता-पिता बन जायें और गाँव की सेवा कर गाँव का राज्य चलायें। बुद्धिमान् पिता अपने लड़कों के लिए यही इच्छा करते हैं कि वे हमसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। पिता को तो तब खुशी होती है जब उसका लड़का उससे आगे बढ़ जाता है। इसी तरह गुरु को तब खुशी होती है जब उसका शिष्य दुनिया में उसका विस्मरण करा देता है—लोग गुरु का नाम भूल जाते और शिष्य को ही याद करते हैं। उसे लगता है कि मैंने अपने शिष्य को ज्ञान दिया और फिर भी मेरा नाम दुनिया में कायम रहा, तो मैंने क्या ही क्या किया? मेरा नाम मिटकर शिष्य का नाम चले तभी मैं सच्चा गुरु होऊँगा। इसलिए गाँव में जो बुद्धिमान् लोग होंगे, वे इस तरह से काम करेंगे कि सब लोग उनसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। तब फिर ग्रामराज्य का रामराज्य बनेगा।

ग्रामराज्य और रामराज्य

स्वराज्य के माने हैं सारे देश का राज्य। जब दूसरे देश की सत्ता अपने देश पर नहीं रहती तो स्वराज्य हो जाता है। लेकिन जब हरएक गाँव में स्वराज्य हो जाय

है, तब उसे 'ग्रामराज्य' कहा जाता है। जब गाँव के सब लोग बुद्धिमान् बन जायँ और किसी पर सत्ता चलाने की जरूरत ही न पड़े, तो उसका नाम है 'रामराज्य'। जब गाँव के झगड़े शहर के अदालत में जाते हैं और शहर के लोग उनका फैसला करते हैं, तो उसका नाम है गुलामी, 'परतंत्र' या 'पारतन्त्र्य'। गाँव के झगड़े गाँव में ही मिटाये जायँ, तो उसका नाम है स्वातन्त्र्य या स्वराज्य और गाँव में झगड़े ही न हों, तो उसका नाम है रामराज्य। हमें पहले ग्रामराज्य बनाना होगा और फिर रामराज्य। देश में स्वराज्य तो हो गया, अब हमें ग्रामराज्य बनाना है। इसीलिए भूदान-यज्ञ चल रहा है। हम गाँव गाँव जाकर लोगों को समझाते हैं कि तुम्हारे गाँव का भला किसमें है, इस पर तुम खुद सोचो। अपने गाँव को एक राष्ट्र समझो। आज आप भारत-राष्ट्र और भारत-माता की जय बोलते हैं, उसी तरह अपने गाँव की जय बोलनी चाहिए।

हरएक ग्राम की जय होगी, तो देश की जय होगी। जब अपना हरएक अवयव काम करेगा, तभी सारा शरीर काम करेगा। आँख, कान, पाँव, हाथ, सब अच्छा काम करेंगे, तो सारा शरीर अच्छा काम करेगा। अगर इनमें से एक भी कम काम करे, तो देह का काम अच्छा नहीं चलेगा। इसी तरह सारे गाँव अपना काम अच्छी तरह से चलायेंगे, गाँव-गाँव में स्वराज्य बनेगा, तो देश का स्वराज्य भी अच्छा बनेगा। अतः हमें हरएक गाँव में राज्य चलाना होगा। एक देश में सिकार के जितने विभाग और जितने काम होते हैं, उतने सारे गाँव में होंगे। यहाँ आरोग्य-विभाग होता है, तो गाँव में भी आरोग्य-विभाग चाहिए, यहाँ उद्योग-विभाग, कृषि-विभाग, तालीम विभाग, न्याय विभाग, रक्षा विभाग होते हैं, तो गाँव में भी उतने सारे विभाग होने चाहिए। यहाँ पर पर-राष्ट्र के साथ सम्बन्ध आता है, तो ग्राम में भी परग्राम के साथ सम्बन्ध आयेगा।

ग्रामे ग्रामे विश्वविद्यापीठम्

ग्राम ग्राम में विद्यापीठ होना चाहिए : 'ग्रामे ग्रामे विश्वविद्यापीठम्'। यह है, सच्चा ग्रामराज्य। किसीने हमसे कहा कि 'प्राथमिक शाला हर गाँव में होनी चाहिए, हाईस्कूल बड़े गाँव में होने चाहिए और विद्यालयम् जैसे शहर में

कॉलेज होना चाहिए, तो मैंने उनसे कहा : "अगर ईश्वर की ऐसी योजना होती, तो गाँव में दस साल की उम्र तक के ही लोग रहते। फिर उसके बाद पन्द्रह-बीस साल तक की उम्र के लोग बड़े गाँव में रहते और उस उम्र से अधिक उम्रवाले लोग विशाखापट्टनम् जैसे शहर में रहते। लेकिन जब जन्म से लेकर मरण तक का सारा व्यवहार गाँव में ही चलता है, तो पूरी विद्या गाँव में क्यों नहीं चलनी चाहिए? ये लोग ऐसा दरिद्री हैं कि एक-एक प्रांत में एक-एक युनिवर्सिटी स्थापन करने की योजना करते हैं। लेकिन मेरी योजना में हर गाँव में युनिवर्सिटी होगी। सोचने की बात है कि क्या गाँव को टुकड़ा रखेंगे? चार साल तक की शिक्षा याने एक टुकड़ा गाँव में रहेगा। फिर गाँववाले आगे की शिक्षा प्राप्त करना चाहें, तो उन्हें गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा। इसके कोई मानी नहीं हैं। मेरे ग्राम में मुझे पूरी तालीम मिलनी चाहिए। मेरा ग्राम टुकड़ा नहीं पूर्ण है। 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'—पूर्ण है वह और पूर्ण है यह! ये लोग कहते हैं कि यह भी टुकड़ा है और वह भी टुकड़ा है और सब मिलकर पूर्ण है। किन्तु हमारी योजना में इस तरह टुकड़े-टुकड़े जोड़कर पूर्ण बनाने की बात नहीं है। हम चाहते हैं कि हर गाँव में राज्य के सब विभागों के साथ एक परिपूर्ण राज्य हो।

गाँव-गाँव राज्य-कार्य धुरन्धर

इस तरह हर छोटे-छोटे गाँव में राज्य होगा, तो हर गाँव में राज्य-कार्य-धुरंधरों का समूह होगा। गाँव-गाँव में अनुभवी लोग होंगे। दिल्लीवालों को राज्य चलाने में कभी मुश्किल मालूम हुई, तो वे सोचेंगे कि दो-चार गाँवों में चला जाय और वहाँ के लोग किस प्रकार राज्य चलाते हैं, यह देख आया जाय। क्योंकि राज्यशास्त्र-विद्या-पारंगत लोग गाँव-गाँव में रहते हैं। इसलिए गाँव-गाँव में विद्यापीठ होना चाहिए। आज तो लोग कहते हैं कि गाँव में राज्यशास्त्र का ज्ञाता कोई है ही नहीं। जिले में भी उसके ज्ञाता नहीं, सारे प्रान्त में दो-तीन ही होंगे। जब स्वराज्य चलाना चाहते हैं, तो राज्यशास्त्र के ज्ञाता इतने कम होने से कैसे काम चलेगा? इसलिए गाँव-गाँव में ऐसे ज्ञाता होने चाहिए। आज हालत ऐसी है कि पंडित नेहरू ने एक दफा कहा था कि हमें यदि प्रधानमंत्री-

पद से छुट्टी दीजिये' तो सारे लोग घबड़ा गये और उनसे कहने लगे कि 'आपके बिना हमारा कैसे चलेगा ? यह कोई स्वराज्य नहीं ! असली स्वराज्य तो यह है, जब पंडित नेहरू मुक्त होने की इच्छा प्रकट करें तो लोग उनसे कहें कि 'जी जरूर मुक्त हो जाइये। आपने आज तक बड़ी सेवा की है, आपको मुक्त होने का हक है।'

सत्ता का बँटवारा

इस तरह हमें, जो राजसत्ता दिल्ली में इकट्ठी हुई है, उसे गाँव-गाँव बाँटना है। हम तो परमेश्वर के भक्त हैं, इसलिए हम ईश्वर का ही उदाहरण सामने रखें। ईश्वर ने अगर अपनी सारी सत्ता वैकुंठ में रखी होती और किसी मनुष्य को कुछ भी दी ही न होती तो दुनिया कैसे चलती ? फिर तो किसी मनुष्य को अक्ल की जरूरत पड़ने पर वैकुंठ में टेलीग्राम भेजकर थोड़ी सी अक्ल मँगानी पड़ती। आज आपके मंत्रियों को दिल्ली से पूछना पड़ता है, तो भगवान् को कितना दौड़ना पड़ता ! लेकिन भगवान् ने ऐसी सुंदर योजना की है कि सबको अक्ल बाँट दी है। मनुष्य, घोड़ा, गधा, साँप-बिच्छू सबको थोड़ी-थोड़ी अक्ल दी है। किसी एक जगह पर बुद्धि का भंडार नहीं रखा। इसीलिए कहा जाता है कि भगवान् निश्चिंत होकर क्षीरसागर में निद्रा लेते हैं। क्या हमारे मंत्री इस तरह निद्रा ले सकते हैं ? लेकिन भगवान् इस तरह निद्रा लेते हैं कि इसका पता भी नहीं चलता है कि वे कहाँ हैं। असली स्वराज्य तो वह होगा जब दिल्ली के लोग सोते रहेंगे। दिल्ली के क्षीरसागर में हमारे प्रधानमंत्री सोते हुए सुनाई पड़ेंगे। लेकिन आज तो हम यह सुनते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री अठारह घंटे काम करते हैं। क्या यह भी कोई स्वराज्य है ?

शासन-विभाजन

पहले लंदन से सत्ता थी, तो वहाँ से पार्सल होकर दिल्ली आयी है। यह तो बड़ी कृपा हुई। लेकिन वह पार्सल दिल्ली में ही अटक गया है, उसे अब गाँव गाँव पहुँचाना है। हमें लोगों को स्वराज्य की शिक्षा देनी है, तो यह काम करना होगा। इसीका नाम है शासन विभाजन। शासन का काम जो केन्द्रित

लावें और गाँव की कौन-सी चीजें बाहर जायें। आज तो चाहे जो अपनी मर्जी के अनुसार बाहर की चीजें खरीदता जाता है। लेकिन इसके आगे यह न चलेगा। सारे गाँववाले मिलकर चर्चा करेंगे और निश्चय करेंगे। अगर किसीको गुड़ की आवश्यकता हुई, तो गाँववाले उस बारे में सोचेंगे और तय करेंगे कि इस साल गाँव में गुड़ नहीं बन सकता, इसलिए एक साल के वास्ते बाहर से गुड़ खरीदा जाय। लेकिन गाँव के लोग वह गुड़ भी बाजार में जाकर न खरीदेंगे, गाँव की दूकान से ही एक साल के लिए खरीदेंगे और फिर गाँव में धन्धा खोलकर अगले साल के लिए पैदा करेंगे। गाँव की दूकान में वही गुड़ रखा जायगा और वही खरीदा जायगा।

दिमाग अनेक पर हृदय एक

इस तरह सारा गाँव एक हृदय से सोचेगा। जहाँ गाँव में पाँच सौ लोग होंगे, वहाँ एक हजार हाथ होंगे, एक हजार पाँव होंगे, पाँच सौ दिमाग होंगे, लेकिन दिल एक होगा। गीता के ग्यारहवें अध्याय में विश्वरूप-दर्शन की बात है। विश्व-रूप-दर्शन में हजारों हाथ हैं, हजारों पाँव हैं, कान हैं, आँखें हैं, लेकिन उसमें आपको यह नहीं मिलेगा कि हृदय हजारों हैं। विश्व रूप का हृदय एक ही होगा। इसी तरह गाँव का हृदय एक होगा। पाँच सौ दिमाग होंगे। वे चर्चा करके काम तय करेंगे। यह हमारी सर्वोदय की योजना है।

त्रैराशिक की गुंजाइश नहीं

हम जानते हैं कि यह सब करने में कुछ समय लगेगा। लेकिन ज्यादा समय नहीं लगेगा। एक गाँव में एक साल का समय लगा, तो हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में कितना समय लगेगा, इस तरह का त्रैराशिक नहीं किया जा सकता। आपके गाँव के काम चलने शुरू होते हैं, तो सारे हिंदुस्तान के पाँच लाख गाँवों के काम चलने लग जाते हैं। इसलिए आपके गाँव में ग्रामराज्य बनने में जितना समय लगेगा, उतने समय में कुल हिंदुस्तान के पाँच लाख गाँवों में राम राज्य बन जायगा।

'रामराज्य' या 'भराज्य' नाम स्वेच्छाधीन

आज मैंने आपके सामने सूत्र-रूप में विचार रखा है। पहली बात है केंद्रीय स्वराज्य, दूसरी बात है विभाजित स्वराज्य और तीसरी बात है राज्य-मुक्ति अथवा ग्रामराज्य। अब उसे 'रामराज्य' कहना है या 'भराज्य'—यह हरएक की अपनी-अपनी मर्जी की बात है। ईश्वर नहीं है, यह भी कह सकते हो और ईश्वर क्षीरसागर में सोया है यह भी कह सकते हो। लेकिन ईश्वर पसीना-पसीना होकर काम कर रहा है, यह नहीं कह सकते। या तो ईश्वर नहीं है या वह समाप्त होकर बैठा है, इन्हींमें से एक बात हो सकती है। ईश्वर करता है और हम दूर अपनी सत्ता चलाता है यह बात न होनी चाहिए। यही तत्त्वज्ञान यहीं प्रत्यक्ष किया हमें अपने ग्राम में लानी है।

समर्थों का परस्परावलम्बन ही मान्य

हम चाहते हैं कि आप सब लोग उत्साह से भाग माँग कर काम में लग जाइये। कुछ लोग पूछते हैं कि विनोबाजी की योजना परस्परावलम्बन की नहीं स्वावलम्बन की है। इतना तो वे कबूल करते हैं कि विनोबा की योजना परावलम्बन की नहीं है। परन्तु वे कहते हैं कि 'परस्परावलम्बन' चाहिए। वैसे हम भी परस्परावलम्बन चाहते हैं। आज बाबा ने दूध पीया तो क्या बाबा ने खुद गाय का दूध दुहा था? लोगों ने बाबा के लिए सारा इन्तजाम किया था। इस तरह बाबा से जो सेवा बनती है वह करता जाता है और लोग उसके लिए इन्तजाम करते हैं। किन्तु परस्परावलम्बन दो प्रकार का होता है, एक असमर्थों का और दूसरा समर्थों का। पहला अन्धे और लँगड़े का परस्परावलम्बन है। अन्धा देख नहीं सकता पर चल सकता है और लँगड़ा देख सकता है, पर चल नहीं सकता। इसलिए दोनों परस्परावलम्बन या सहयोग करते हैं। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठता है। वह देखने का काम करता है और अन्धा चलने का काम। इस तरह क्या आप समाज के कुछ लोगों को अन्धा और कुछ को लँगड़ा रखकर दोनों का परस्परावलम्बन चाहते हैं? बाबा भी परस्परावलम्बन चाहता है। किंतु वह चाहता है कि दोनों आँख वाले हों, दोनों पाँववाले हों और फिर हाथ में हाथ मिलाकर दोनों साथ-साथ

चाहें। कच्चा सामानों का परस्परावलम्बन चाहता है। और वे लोग उत्पादक व मध्यम लोगों का परस्परावलम्बन चाहते हैं।

गाँव का कच्चा माल गाँव में ही पक्का बने

ग्राम भी परस्परावलम्बन चाहता है। हम जानते हैं कि सारी-की-सारी चीजें एक गाँव में नहीं बन सकतीं। एक गाँव को दूसरे गाँव के साथ और गाँव को शहरों के साथ सहयोग करना पड़ता है। लेकिन हम यह नहीं चाहते कि गाँवों में शहरों से चावल कुटवाकर, आटा पिसवाकर और चीनी बनवाकर लायी जाय। हम चाहते हैं कि ये चीजें गाँव में ही बनें। लेकिन गाँवों में चरखा, पनचक्की, लालटेन, स्टोव जैसी चीजों की जरूरत पड़े, तो वे शहर से लायी जायें। आज यह देखा है कि शहरवाले गाँववालों के उद्योग शुरू करते हैं। गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बन सकता है। लेकिन आज शहरों में यन्त्रों के द्वारा वह बनाया जाता है। और उधर परदेश का जो माल शहरों में आता है, उसे रोकते नहीं। हम चाहते हैं कि गाँव के उद्योग गाँव में चलें और परदेश से जो माल आता है, उसे रोकने के लिए वह माल शहरों में बने। अगर गाँव के उद्योग खतम होंगे तो न सिर्फ गाँवों पर, बल्कि शहरों पर भी असर आयेगा। फिर गाँव के बेकार लोगों का शहरों पर हमला होगा और ऊपर से परदेशी माल का हमला तो होता ही रहेगा। इस तरह दोनों हमलों के बीच शहरवाले पिस जायेंगे। इसलिए हमारी योजना में गाँव और शहरों के बीच इस तरह का सहयोग होगा कि गाँववाले अपने उद्योग गाँव में चलायेंगे और शहरवाले परदेश से आनेवाली चीजें शहर में बनायेंगे। इस तरह प्रत्येक गाँव पूर्ण होगा और पूर्णों का सहयोग होगा।

कांचीपुरम (मद्रास)
१-८-५५

लोगों के मानस और परिस्थिति के अनुकूल काम होना, गाँवों को राहत पहुँचना और स्वतन्त्र जनशक्ति का निर्माण होना—ये सारे काम भूदान से सधते हैं। आज यह लोक-मानस बन गया है कि भूमि का बँटवारा समान हो, गरीबों को जमीन मिले। इस मानस का पूरा लाभ इस आन्दोलन को मिलता है। यह मानस तैयार करने में भी इस आन्दोलन ने हिस्सा लिया है। इसलिए भूदान-कार्य में जो शक्ति भरी है, उसके जरिये गाँवों में पड़ी के सारे निर्माण-कार्य लाने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए हमारे जो साथी निर्माण-कार्य में लगे हैं, उनसे हम कहते हैं कि भूदान की गिनती आप उन उन निर्माण-कार्यों में मत कीजिये। मैं फिर से दोहराता हूँ कि मैं निर्माण-कार्य और भूदान में कोई फर्क करना नहीं चाहता। लेकिन किसी भी कारण से हो, चाहे परिस्थिति से भी हो, पर आज भूदान से जो शक्ति निर्माण हुई है, वह अन्य निर्माण-कार्यों से नहीं हुई।

निर्माण-कार्य की बुनियाद आर्थिक समानता

सारे निर्माण-कार्य की बुनियाद में आर्थिक समानता का जो विचार है, उसकी कपर ठोकने का काम भूदान से हो रहा है। आर्थिक समानता कानून से नहीं, हृदय-हृदय प्रेम से भरा होने पर ही सम्भव है। उसका बिलकुल सादा और सरल उपाय भूदान से निकला है, क्योंकि इसमें जमीन से और जमीन भगवान् की चीज है, नैसर्गिक वस्तु है यह बात हर कोई समझ सकता है। इसीलिए मैं मन्त्र मैं सतत रटता रहता हूँ कि हवा, पानी और सूरज की रोशनी के समान जमीन भी भगवान् की देन है, अतः उस पर सबका अधिकार है। हमारे कुछ भाई कहते हैं कि बाबा के इस कथन में विचार नहीं, बल्कि है इसमें भावनात्मक भाषा है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि इसमें भावनात्मक भाषा नहीं, बल्कि स्पष्ट शुद्ध निर्मल प्रमेय है। यह एक जाहिर बात है, जिसमें आजकल मनुष्य को जरा तक नहीं

होगा, तब तक वह और किसी भी उपाय से सच्चे अर्थ में सुखी न होगा। कुछ लोग भोग भोगने को ही सुख मानते हैं और दूसरों को अपने गुलाम बनाकर उनसे काम कराते हैं। वे इसमें संतोष कर लेते हैं कि इसीसे हम सुखी हैं। जो ऐश्वर्य में पड़ा है, वह गरीबों की परवाह नहीं करता है और अपने को सुखी मानता है। जो गरीब हैं, वे अपने नसीब की बात कहकर भाग्य की हालत में सुख मानते हैं। लेकिन यह सच्चा सुख नहीं है।

'ट्रस्टीशिप' के दो सिद्धान्त

कुछ लोग कहते हैं कि विनोबा नाहक बेजमीनों को भूमि क्यों बाँटता है! मजदूरों को अच्छी मजदूरी मिले तो बस है; उससे वे सुखी होंगे। लेकिन एक सुखी गुलाम देखने से बाबा का दिल सुखी नहीं होगा। मजदूरों को काम के लिए मजदूर ही रखा जाय और मालिकों को काम के लिए मालिक, फिर चाहे मालिक अपने मजदूरों को अच्छी-से-अच्छी मजदूरी दे, तो भी उससे सर्वोदय नहीं होता। गांधीजी के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का कुछ लोग बहुत ही गलत अर्थ कर रहे हैं यह बात मैं जाहिर करना चाहता हूँ। ट्रस्टीशिप का पहला सिद्धान्त यह है कि जैसे बाप अपने बेटे का पालन-पोषण और संरक्षण अपने से भी ज्यादा करता है—कोई भी बाप यह नहीं कहता है कि मैं अपने सुख का जितना संरक्षण करता हूँ उतना ही बेटे का करता हूँ, बल्कि वह कहता है कि मैं बेटे का संरक्षण अपने से भी ज्यादा करता हूँ—वैसे ही ट्रस्टी अपने को बाप के स्थान पर समझें। लेकिन इतने से ट्रस्टीशिप पूरी नहीं होती। ट्रस्टीशिप का दूसरा सिद्धान्त यह है, बाप चाहता है कि मेरा बेटा जल्द-से-जल्द मेरे जैसा बन जाय, मेरी योग्यता का हो जाय और अपने पाँवों पर खड़ा हो। इस तरह गांधीजी का सिद्धान्त बड़ा गहरा है। सिर्फ ऊपर ऊपर से देखकर आज के समाज में थोड़ा-सा फर्क कर मजदूरों की मजदूरी थोड़ी सी बढ़ा दी जाय, तो इतने से जन-समाज सुखी न होगा।

स्वामित्व और सेवकत्व दोनों मिटाने हैं

आज तो दुनिया में जो भी उठता है गांधीजी का नाम लेता है और उनके नाम पर चाहे जो करता है। ऐसों की संख्या बढ़ाना मैं नहीं चाहता। मैं तो एक शुद्ध

अपने विचार आपके सामने रख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि गांधीजी और सब सत्पुरुषों का आशीर्वाद इसे हासिल है। जिस सत्य वस्तु का स्वीकार हृदय करता है, उसके प्रचार के लिए किसी भी महापुरुष के वचनों की जरूरत नहीं होती। फिर भी मैं मानता हूँ कि इस सिद्धान्त के पीछे उन सत्पुरुषों का आशीर्वाद है। इसलिए मैं मानता हूँ कि गरीबों को थोड़ी-सी मजदूरी ज्यादा दी जाय, फिर भूदान की कोई जरूरत नहीं, इस प्रकार का विचार बिल्कुल गलत है। मुझे नामदेव का एक वचन याद आ रहा है, जिसमें वह भगवान् से कहता है कि 'तू ही एक ऐसा स्वामी है, जो अपने भक्त को अपने समान योग्यता दिलाता है। जो स्वामी अपने सेवक को काम के लिए सेवक रखता है, वह चाहे उसे कुछ भी सुख दिलावे, फिर भी वह सच्चा स्वामी नहीं है। जो सेवक को सच्चे सेवकत्व में से और अपने को स्वामित्व से मुक्त करे, वही सच्चा स्वामी है।

सख्यभक्ति

जब सेवक का सेवकत्व और स्वामी का स्वामित्व मिटेगा, तो दोनों में प्रेम कम होगा या बढ़ेगा? तब तो दोनों में सख्यभक्ति निर्माण होगी। दोनों भाई भाई, मित्र, सखा बनेंगे। हम तो भाई भाई की बात करते हैं, लेकिन भाइयों में भी कोई छोटा तो कोई बड़ा भाई होता है। वेद का सिर्फ भाई भाई कहने से समाधान नहीं हुआ। वह कहता है कि कोई छोटा भाई और कोई बड़ा भाई न हो, सब समान हों : अज्येष्ठासो अकनिष्ठासः एते संभ्रातरो वावृधुः। वेद चाहता है कि समाज के लोग ऐसे भाई भाई बनें, जिनमें कोई ज्येष्ठ न हो और कोई कनिष्ठ न हो। यह सर्वोदय का आदर्श है, जिसमें परम प्रेम का उत्कर्ष होता है। ऐसा सर्वोदय-समाज लाने के काम में सरकार की कितनी भी शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो सकता। उसकी व्यवस्थाकारी शक्ति का थोड़ा उपयोग हो सकता है, लेकिन ऐसा सर्वोदय-समाज लाने का काम लोगों को ही करना होगा।

बख्तावरसिंह
११-८-५५

पंद्रह अगस्त को भारतीय स्वातन्त्र्य-दिवस के अवसर पर हमारे भाइयों ने गोवा में सत्याग्रह के तौर पर प्रवेश करने की सब तैयारी रखी थी। वे बिना कोई शस्त्र लिये अन्दर जा रहे थे। अब खबर आयी है कि उन पर बहुत बुरी तरह से मार पड़ी और उनमें से पचास-साठ मनुष्यों को कत्ल भी किया गया। हिंदुस्तान में अंग्रेजों की इतनी बड़ी सल्तनत थी, वह भी यहाँ से चली गयी। उसे अब आठ साल हुए हैं, फिर भी गोवावाले पुर्तगीज लोग अभी भी नहीं समझ रहे हैं। बीच में फ्रेंच लोगों ने अपना आग्रह छोड़ दिया और पांडिचेरी को मुक्त कर दिया। अंग्रेजों ने भारत छोड़ा, तो उसमें उन्होंने कुछ भी नहीं खोया। बल्कि उससे उनकी इज्जत बढ़ी और हिंदुस्तान के साथ उनका प्रेम बना रहा। आज उनका व्यापार भी यहाँ जैसा चलना चाहिए, वैसा चल रहा है। पुर्तगीज लोगों को भी यही करना पड़ेगा। परन्तु मनुष्य मोह और ममता को एकदम नहीं छोड़ता।

गोवा में निरपराधों की निर्मम हत्या

लेकिन इस तरह से निरपराध लोगों की निर्मम हत्या करनेवालों की आशा इस जमाने में कभी सफल नहीं होगी। आज सारी दुनिया शांति की अपेक्षा कर रही है। जो-जो देशों के बड़े बड़े नेता शांति के लिए एक-दूसरे से हाथ मिला रहे हैं। उस हालत में इस तरह से अत्याचार कर पुर्तगाल हिन्दुस्तान के एक हिस्से पर अपनी सत्ता रख सकेगा, यह कदापि संभव नहीं। परंतु जिनका दिमाग अभी अपने सोचने के लिए खुला नहीं है, ऐसे लोगों के हाथ में जब देश की बागडोर होती है तो देश की जनता का कुछ नहीं चलता। हम समझते हैं कि पुर्तगाल की जनता की इस अत्याचार के प्रति कुछ भी सहानुभूति न होगी। यह बात ठीक है कि उन्हें ठीक जानकारी न दी जाती हो और यहाँ के अखबार में आती खबरें दूसरे ढंग से प्रकाशित की जाती हों, लेकिन इस तरह हत्या कभी भी छिपा नहीं रह सकता।

पटना में गोली चली

गोवा में यह जो बड़ी दुर्घटना हुई, उससे हम सब लोगों के दिलों को बहुत सदमा पहुँचता है। गोवा पर हिंदुस्तान का अधिकार है, इस बात को हिंदुस्तान की जनता भी मानती है और गोवा की जनता भी। हिंदुस्तान और गोवा, दोनों एक ही हैं। लेकिन यहाँ मैं अभी उस बारे में नहीं कह रहा हूँ। यह तो स्पष्ट ही है कि गोवा सब तरह से हिंदुस्तान का एक अंश है। इसलिए, भारतवासियों के हृदय को इस दुर्घटना से सदमा पहुँचना स्वाभाविक ही है। किंतु मैं इसकी ओर बिलकुल एक मानव-हृदय की दृष्टि से देखता हूँ। ऐसी घटना कहीं भी होती है, वहाँ पर सारी मानवता विदीर्ण हो जाती है। लेकिन उसी दिन की और एक खबर अखबार में आयी है। बिहार के पटना में उसके एक-दो रोज पहले गोली चली जिसमें कुछ विद्यार्थी मारे गये। इसके विरोध में सारे बिहार में हलचल हुई और आज हमें खबर मिली है कि नवादा में गोली चली जिसमें कुछ विद्यार्थी मारे गये।

मानव को मानव की हत्या का अधिकार नहीं

मानव पर गोली चलाने का यह जो अधिकार मानव ने मान लिया है, वह बिलकुल ही अमानवीय है। और सब अधिकार बाद के हैं, मानव का पहला अधिकार यह है कि उसकी मानवता कायम रहे। हम समझते हैं कि हिंदुस्तान में गोली चलती है, तो हमारे स्वराज्य के लिए है और सारी मानवता के लिए भी वह घातक हो जाता है। गोवा में गोली चली यह स्वराज्य पर आक्रमण है। हर मनुष्य के हृदय में स्वराज्य-भावना होती है उसी पर आक्रमण हुआ है। परंतु उसके साथ-साथ मानवता पर भी आक्रमण है। मनुष्य के हृदय में यह जो गोली चलाने की बात रहती है और उसे वह कर्तव्य भी मान लेता है उसकी कोशिश यह मानता है कि उसे हत्या करने का भी अधिकार है। मानव को पहले यह तय करना होगा कि हमें हत्या करने का अधिकार नहीं है। हमें तो प्रेम करने का ही अधिकार है। जब मानव अपने उस परम अधिकार को छोड़कर दूसरी-तीसरी

स्वार्थों के लिए मानव की हत्या करने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं, तब हम अपनी ही हत्या कर लेते हैं।

छोटी लड़ाइयाँ रोकिये

इस विषय पर आज मैं विस्तार से कहना नहीं चाहता पर इससे मेरे हृदय को बहुत ही दुःख हुआ है। इसमें से यह बोध लेना है कि हमें सच की कसौटी पर यह समझना होगा कि परमेश्वर ने हमें एक ही अधिकार दिया है कि उसकी सेवा करें और सबकी रखवाली से अपना जीवन चलावें। मैं मानता हूँ कि इस बात को मानव अवश्य महसूस करेगा। यह भी मानता हूँ कि इसका स्वीकार बहुत दूर के भविष्य में नहीं नजदीक के भविष्य में ही होगा। लोगों को बड़ी फिक्र पड़ी है कि ऐटम बम, हाइड्रोजन बम आदि हथियारों से कैसे बचें। लेकिन मैंने कई बार कहा है कि मनुष्य का अगर कोई वैरी है, तो वह है लाठी, बंदूक, तलवार जैसे छोटे-छोटे हथियार। ये तो बाप हैं और ऐटम बम आदि उनके बेटे हैं। इन्होंने ऐटम बम आदि को पैदा किया है। यह बात ठीक है कि बेटे बाप से ज्यादा हो गये, सौगुना शक्तिशाली हो गये हैं, लेकिन उनकी पैदाइश इन्हींसे हुई है। लोगों को जागतिक युद्ध टालने की फिक्र होती है, लेकिन मेरे मन में ऐसी फिक्र कभी पैदा ही नहीं होती। मैं मानता हूँ कि जागतिक युद्ध मनुष्य नहीं करता, उससे कराये जाते हैं। लेकिन छोटी-छोटी लड़ाइयाँ और अत्याचार मनुष्य खुद करता है। इसलिए अगर हम उन्हें रोक सकें तो बड़े ऐटम बम आदि भी फीके हो जायेंगे। इसीलिए मुझे जागतिक युद्ध की कोई चिन्ता नहीं है।

विचार-परिवर्तन आवश्यक

मनुष्य को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि हमारे जो कुछ मसले और दुःख हैं, उनके निवारण के लिए हम कभी भी हत्या का अधिकार न मानेंगे। जहाँ भारतीय मनुष्य यह निर्णय कर लेगा, वहीं भारत और सारी दुनिया का नक्शा बदल जायगा। लेकिन जब भारत समाज की आज की विषम परिस्थिति बदलने का निश्चय करेगा तभी वह इस निर्णय पर आयेगा। जब तक मनुष्य का मन

अपने छोटे-छोटे स्वाधिकार छोड़ने को तैयार नहीं होता तब तक वह हत्या करने का अधिकार भी न छोड़ेगा। इन छोटे-छोटे अधिकारों को आज कानून में भी स्थान दिया जाता है और फिर उस कानून की रक्षा के लिए हर तरह की कृत्रिम योजना करनी पड़ती है। मनुष्य व्यक्तिगत अधिकार, व्यक्तिगत अधिकार, धार्मिक अधिकार रखना चाहता है। वह समझता है कि ये हमारे बुनियादी अधिकार हैं। इस तरह हम जिन अधिकारों को मानते हैं, उनकी रक्षा के लिए तलवार का उपयोग और हत्या करने का हम अधिकार है, ऐसा मानते हैं। इस तरह ये लोग हिंसा को धर्म का रूप देते हैं। हिंसा करना एक बात है और उसे धर्म या कर्तव्य समझकर करना दूसरी बात। हमें यह सारी वृत्ति बदलकर मानवता के लिए पूर्ण मौका देना होगा।

इसमें किसीको कोई शक न होना चाहिए कि आज अगर गोवा के लोगों की राय ली जाय, तो वह पोर्तुगीज सत्ता हटाने के पक्ष में ही होगी। लेकिन पोर्तुगीज अपना अधिकार मानकर बैठे हैं। इसी तरह अंग्रेज और हमारे राजा-महाराजा भारत पर अपना अधिकार मानकर बैठे थे। आज भी यहाँ के कारखानों और बड़ी जमीन के मालिक अपना अधिकार मानकर बैठे हैं। अधिकार की यह बात इतनी फैल गयी है कि परिवार में भी लोग उसे चलाने की बात नहीं छोड़ते। हम हमेशा परिवार की उपमा देते हुए कहते हैं कि परिवार में प्रेम का कानून चलता है। लेकिन आज परिवार में भी कानून ने प्रवेश किया है, वहाँ भी सत्ता की बात मानी गयी है। बाप की इस्टेट पर बेटों को अधिकार है लेकिन लड़कियों का अधिकार है या नहीं इस पर चर्चा चलती है। समझने की बात है कि लड़कियों को माता-पिता के गुण और शरीर का रूप प्राप्त होता है। फिर भी उनका सम्पत्ति पर अधिकार है या नहीं इस बारे में चर्चा चलती है। वहाँ प्रेम के सिवा दूसरी बात ही नहीं चलनी चाहिए, वहाँ भी सत्ता और अधिकार की बात पैठ गयी और उसकी रक्षा के लिए कानून का आधार लिया जाता है। एक जमाना था जब पत्नी पर पति का अधिकार है, यह भी बात मानी गयी और महाभारत में तो युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी दाव पर लगा दिया था। इस तरह का प्रकार की बात समाज में इतनी चली कि आज उसीकी पीड़ा हो रही है।

मानव का परम अधिकार प्रेम करना

किसका क्या अधिकार है, इसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। किन्तु सर्वप्रथम एक बात मान लेनी चाहिए कि किसीको भी मानव की हत्या करने का अधिकार कदापि नहीं हो सकता। मुझे उम्मीद है कि हिन्दुस्तान के लोग इस बात को जल्दी समझेंगे। आज मानव के अधिकारों में भिन्न-भिन्न गिनती करनी चाहिए, इस पर चर्चा चलती है। परन्तु भारत के लोग समझते हैं कि मानव का जन्म सेवा के लिए है। मानव को सेवा करने का ही परम अधिकार है। सत्ता चलाने की बात तो जंगल का शेर भी करता है। कभी-कभी वह मनुष्य को खाने के लिए ले जाता है, तब वह सोचता है कि मेरा इस पर अधिकार है, मुझे खाने की चीज मिल गयी। इस कोरापुट जिले में तो हम ऐसी घटनाएँ हमेशा सुनते हैं। उसे भूख लगी होती है, इसलिए उसे अपना अधिकार सिद्ध करने और किसी प्रमाण की जरूरत ही नहीं होती। इसी तरह हम लोग भी जानवरों की हत्या करना अपना अधिकार मानते हैं। जंगल में रोज गायें चरती हैं, तो मनुष्य मानता है कि गायों को काटना हमारा अधिकार है। शेर अगर ऐसी बात करता है, तो वह अज्ञान चीज ही है, उसके पास समझने की शक्ति ही नहीं है। लेकिन मानव को भगवान् ने उतनी समझ दी है। आज जब कि विज्ञान इतना फैला है और ऋषियों की कृपा से भारत में आत्मज्ञान भी फैला है, तो मानव को यह समझना चाहिए कि उसका परम अधिकार प्रथम और अन्तिम अधिकार है प्रेम और सेवा करना।

रैवलकला
१८-८-'५५

अभी आपने भजन सुना : 'आत्मा है आत्मा को देख'। यह भजन तो सभी गा सकते हैं और सबको प्रिय भी लगता है। किन्तु इसका अनुभव प्राप्त करने में बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है। आत्मा में आत्मा को देखना बहुत बड़ी बात है। उसके मानी है, दुनिया में हमारे सामने जितने प्राणी प्रकट हैं, जितनी मूर्तियाँ दीखती हैं उन सबमें हम अपना ही रूप देखें। हम कहना चाहते हैं कि भूदान और ग्रामदान उसीका एक नम्र और छोटा-सा प्रकल्प है। भूदान में हम सबको समझाते हैं कि आप पाँच भाई हैं, तो आपके घर एक और छठा भाई है, जो बाहर है। उसका हिस्सा भी उसे दीजिये। समाज को अपने परिवार का हिस्सा समझिये यही आत्मा में आत्मा को देखने का प्रयत्न है। यह बात केवल भूमि के लिए ही लागू नहीं बल्कि कुल सम्पत्ति शक्ति और बुद्धि के लिए लागू है। हर मनुष्य अपनी सम्पत्ति शक्ति और बुद्धि का एक हिस्सा अपने पड़ोसी पड़ोसियों के लिए दे और उसमें हम दूसरे किसी पर उपकार करते हैं ऐसी भावना न हो। समाज को अपने परिवार में दाखिल करना व्यापक आत्म-दर्शन का एक अल्प प्रकल्प है। जब आप देखते हैं कि गाँववाले अपनी जमीन पर से अपना हक उठा लेते और उसे सारे गाँव की बना देते हैं तो उसमें व्यापक आत्मा का कुछ भान होता है।

ग्राम-दान का स्वतन्त्र मूल्य

यहाँ बहुत सारे गाँव मिल रहे हैं। इस काम में हमारी कसौटी बन्द है परन्तु हमारे मन में दूसरी ही बात है। हमने कभी नहीं समझा कि दुनिया का कारोबार चलाने की जिम्मेवारी हम पर है। दुनिया का कारोबार दुनिया चला रही है। हम तो लोगों में एक विचार प्रचलित करना चाहते हैं व्यापक आत्मा का भान कराना चाहते हैं, यह समझाना चाहते हैं कि व्यक्तिगत मालकियत मिटनी चाहिए। अगर गाँव गाँव के लोगों ने इतना समझकर ग्रामदान दिया

तो फिर चाहे उसके बाद हम उन गाँवों की उत्तम रचना न कर सकें, तो भी उस ग्रामदान का जो स्वतन्त्र मूल्य है, वह कम न होगा। इसके लिए मैं एक मिसाल देता हूँ। बहुत प्रयत्नों के बाद हिन्दुस्तान को स्वराज्य प्राप्त हुआ। स्वराज्य की कसौटी जरूर इस बात में है कि हम स्वराज्य किस तरह चलाते और हिन्दुस्तान की उन्नति किस तरह करते हैं। लेकिन मान लीजिये कि हम बहुत ज्यादा उन्नति न कर सकें, तो हम कम लायक साबित होंगे। फिर भी हिन्दुस्तान को जो स्वराज्य प्राप्त हुआ है, उसका मूल्य कम न होगा। स्वराज्य-प्राप्ति की स्वतन्त्र कीमत है। चाहे उसके बाद हम उसका उत्तम उपयोग कर सकें या न कर सकें। इसी तरह यह जो भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान आदि का आन्दोलन चल रहा है, उसका स्वतन्त्र मूल्य है। चाहे उसका उपयोग हम ठीक से कर सकें या न कर सकें।

मूल्य-परिवर्तन और सुख

दूसरे देशों के और हमारे इस विचार में बुनियादी फर्क है, जो ध्यान में नहीं पहुँचता है। जब बाबा रचनात्मक काम में लगा था, तब भी उसके सामने यही कसौटी थी। इसलिए बाबा ने हमेशा यही प्रयत्न किया कि आश्रमवास के लोगों में अच्छी भावना पैदा हो और उत्तम कार्यकर्ता पैदा हों। समझने की बात है कि हम रचनात्मक काम करना जरूर चाहते हैं, लेकिन रचनात्मक काम तो सरकार भी करना चाहती है और करेगी। उससे लोग सुखी होंगे और आराम होने चाहिए। लेकिन मूल्य-परिवर्तन एक बात है और समाज को सुखी बनाना दूसरी बात। जब आप समग्र सुख की बात करेंगे तो दोनों में फर्क न रहेगा। लेकिन तत्कालिक सुख के बारे में सोचेंगे, तो सुखी बनाना एक बात है और मूल्य-परिवर्तन दूसरी बात।

जहाँ लोग अपने परिवार को व्यापक समझकर अपना एक हिस्सा समाज के लिए देते हैं, वहाँ मूल्य-परिवर्तन हो जाता है। कोई कर दिया जाता है, तो उसमें मूल्य-परिवर्तन नहीं होता। परन्तु जैसे हम आन्दोलन करते हैं, वैसे ही पाने के साथ साथ समाज को एक हिस्सा देते हैं, तो वह वृत्ति मूल्य-परिवर्तन की निशानी

सारा समाज को अपने परिवार का अंग समझकर एक हिस्सा देने की पक्ष के परिणामस्वरूप जो ग्रामदान की बात निकली, वह क्रान्ति की बात है। अगर आप शाश्वत सुख चाहें, तो इस विचार-क्रान्ति के द्वारा वह भी मिलेगा और क्षीण और तात्कालिक सुख चाहते हैं, तो वह इस विचार-क्रान्ति का उपयोग हम किस तरह करते हैं, इस पर निर्भर है।

अम्मापेटा
१८-८-५५

अमृत-कण : ३८ :

[विनोबाजी के असाधारण व अपना प्रवचनों के महत्त्वपूर्ण अंश संकलित कर नीचे दिए जा रहे हैं। सर्वोदय-विचार और भूदान आन्दोलन के ये अमृत कण सिद्ध होंगे।]

स्वावलम्बन के तीन अर्थ

आजकल सब लोग कहने लगे हैं कि तालीम में स्वावलम्बन का अहम महत्त्व है। 'स्वावलम्बन' शब्द का मेरे मन में बहुत गहरा अर्थ है। सिर्फ विद्यार्थियों को कुछ उद्योग और शरीर-परिश्रम सिखा देने से वे स्वावलम्बी बन जायेंगे, इतना ही मेरा अर्थ नहीं है। वह चीज तो करनी ही चाहिए। जब देश के सभी लोग हाथ से कुछ-न-कुछ परिश्रम करने लग जायेंगे, तब देश में वर्ग-भेद निर्माण न होगा। किन्तु स्वावलम्बन के मानी मैं यह भी समझता हूँ कि तालीम में ऐसा तरीका अपनाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों की प्रज्ञा स्वयं बने और वे स्वतन्त्र विचारक बनें। अगर विद्या में यही मुख्य दृष्टि रहेगी, तो उसका सारा स्वरूप ही बदल जायगा।

आजकल अनेक भाषाएँ और अनेक विषय सिखाये जाते हैं और हर बात में विद्यार्थी को वर्षों तक शिक्षक के मदद की जरूरत होती है। लेकिन विद्यार्थियों को ऐसी तालीम मिलनी चाहिए कि उनमें जीवनोपयोगी ज्ञान हासिल करने की शक्ति पैदा हो। विद्या तो मुक्ति के लिए है। इसी मुक्ति को आजकल हम 'स्वाव-

लम्बन' कहते हैं। उसके मानी है, अन्य सब आलम्बनों से या आधारों से मुक्ति। जिसे स्वावलम्बी विद्या मिलती है वह पूरे अर्थ में मुक्त या स्वावलम्बी होता है।

मुक्ति के लिए जिस तरह परावलम्बिता उचित नहीं है, उसी तरह विकारवशता भी उचित नहीं है। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों का गुलाम है और अपने विकारों को काबू में नहीं रख सकता वह स्वावलम्बी या मुक्त नहीं हो सकता। इसलिए विद्या का यह एक तीसरा भी अंग है, जिसके लिए विद्या में संयम, व्रत, सेवा आदि का समावेश करना पड़ता है। इस तरह स्वावलम्बन के तीन अर्थ होते हैं: पहला अर्थ यह है कि अपने उदर निर्वाह के लिए दूसरों पर आधार न रखना पड़े। दूसरा अर्थ यह है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र शक्ति निर्माण हो। और तीसरा अर्थ यह है कि अपने आप पर मन इन्द्रियों आदि पर काबू रखने की शक्ति निर्माण हो। सारांश शरीर बुद्धि और मन तीनों को स्वाधीनता मिलना चाहिए।

प्रकृति संस्कृति और विकृति

आदिवासियों की सेवा करने के लिए कार्यकर्ताओं को प्रकृति संस्कृति और विकृति का ठीक भान होना चाहिए। जब मनुष्य प्रकृति से ऊपर जाता है और उसे वश करने के लिए अपने में कुछ सुधार कर लेता है, तब 'संस्कृति' उत्पन्न होती है और जब मनुष्य प्रकृति से नीचे गिरता है तब 'विकृति' आ जाती है। मनुष्य अपने जीवन को प्रकृति के साथ जितना अनुकूल बनाता है उतना प्रकृति का अंश उसके जीवन में रहता है। आज शहरवालों के जीवन में प्रकृति का अंश बहुत कम है विकृतियाँ भारी आ गयी हैं लेकिन कुछ संस्कृति भी है। आदिवासियों के जीवन में प्रकृति का अंश अधिक है संस्कृति का अंश मात्रा में कम है और विकृतियाँ भी कुछ हैं। इसलिए आदिवासियों की सेवा करनेवालों को इतना ख्याल रखना चाहिए कि शहर की विकृतियाँ वहाँ न आने दिया जाय। इनकी विकृतियाँ दूर हों शहर में जो संस्कृति है वह वहाँ जरूर आवे, लेकिन वहाँ की प्रकृति भी कायम रहे। साथ ही इनके जीवन में प्रकृति का जो अंश है उसका हम भी अनुसरण करें।

मैं एक मिसाल देता हूँ। दूध स्वयं प्रकृति है, दूध का मक्खन बनाना संस्कृति

और अपने पुत्रों की तरफ बनाना विकृति है। इस तरह जिसे प्रकृति संस्कृति और विकृति का सम्यक् विवेक हो वही कार्यकर्ता आदिवासियों की सेवा करने योग्य होगा।

भूदान-आन्दोलन माताओं के लिए अमृत

भगवान् ने बहनों पर छोटे बच्चों के लालन-पालन की बड़ी भारी जिम्मेवारी सौंपी है। हमारा भूदान-विचार बहनों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, क्योंकि इसमें उनके बच्चों का भलीभाँति पालन-पोषण होगा। आज जो बेजमीन हैं, उनके बच्चों के पालन-पोषण का कोई इन्तजाम नहीं है। फिर आप ही बताइये कि उनको जमीन मिलनी चाहिए या नहीं? इस सवाल के जवाब में बहनें हमेशा कहती हैं कि मिलनी चाहिए। बच्चों को भूख लगती है, तो वह माता के पास आकर ही खाना माँगता है। उस समय अगर माता उसे खाना नहीं दे पाती तो उसे जितना दुःख होता है, शायद दुनिया में उससे बढ़कर और दुःख न होगा। इसलिए हमारा आन्दोलन माताओं के लिए अमृत है। हम चाहते हैं कि माताएँ पुरुषों को 'ग्रामदान' की बात समझायें।

आत्मा का सच्चा प्रेम देने में

जब दूसरे के हाथ से अपनी चीज वापस लेने की बात चलती है, तो बहुत जोर आ जाता है। पर यदि दूसरों की चीज अपने हाथ में हो तो उसे वापस देने में उससे भी अधिक जोर आना चाहिए। जमीनवाले समझ लें कि हमारे हाथ की जमीन दूसरों की है, इसलिए हमें उसका एक हिस्सा ही अपने पास रखने का अधिकार है। बाकी सारी जमीन दान कर उन्हें मुक्त हो जाना चाहिए। इसीका नाम है, आत्मा का प्रेम और यही है अहिंसा। दूसरों के हाथ से अपनी चीज लेने में नहीं, बल्कि दूसरों की चीज उन्हें वापस देने में ही आत्मा का पूरा प्रेम प्रकट होता है। हम आशा करते हैं कि हिन्दुस्तान के भूमिवान् लोग देश के सब भूमिहीनों को जमीन देकर यह सिद्ध कर देंगे कि हिन्दुस्तान के हृदय में सचमुच ही स्वराज्य के प्रति प्रेम है और हिन्दुस्तान को सचमुच स्वराज्य हासिल हुआ है।

लोभ-मुक्ति का कार्यक्रम

गीता ने कहा है कि काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरक के बड़े भयानक दरवाजे हैं। मनुष्य में ये तीनों होते हैं। किन्तु तीनों में मनुष्य का सबसे ज्यादा शत्रु है, लोभ। मनुष्य की संग्रह-वृत्ति की कोई सीमा नहीं है। मनुष्य कितना ही क्रोधी बने तो भी शेर से ज्यादा क्रोधी नहीं बन सकता। मनुष्य कितना भी भी कामी बने तो भी चकवाक पक्षी के समान कामी नहीं बन सकता। लेकिन मनुष्य जितना लोभी बन सकता है, उसकी बराबरी न चकवाक कर सकता है और न शेर।

स्वराज्य के आन्दोलन में हम लोगों का डर छूटा। हजारों लोग निर्भयता से जेल जाने लगे। जब अंग्रेजों ने देखा कि ये लोग जेल से डरते नहीं तब उन्होंने एक युक्ति निकाली जुर्माना करना! और घर से पैसा वसूल करना शुरू हुआ। वहाँ हमारे लोग कमजोर साबित हुए। इस तरह गांधीजी के जमाने में लोगों को भय छोड़ने की बात सिखायी गयी और आज भूदान-यज्ञ के निमित्त से लोभ छोड़ने का कार्यक्रम उपस्थित है।

भारतीय आयोजन में ग्रामोद्योग का महत्त्व : २६ :

हमारे स्वराज्य के पहले पाँच साल ऐसे ही निकल गये। उनमें ग्रामोद्योग के लिए कोई काम नहीं हुआ। ग्रामोद्योग अच्छा है या यन्त्रोद्योग, यह चर्चा चलती रही। गांधीजी ने कहा था, इसलिए हम भी यही दुहराते थे कि 'ग्रामोद्योग के बिना गति नहीं।' किन्तु तब गांधीजी की यह बात लोगों के ध्यान में नहीं आयी। लेकिन जब बेकारी का असुर भयानक रूप लेकर सामने आ गया, तो यह भयानकता लोगों के ध्यान में आ गयी। खुशी की बात है कि अब सरकार का भी ध्यान इस ओर गया और आगामी पंचवर्षीय योजना में ग्रामोद्योगों को स्थान दिया जा रहा है। लेकिन यह सब असुर के भय से हो रहा है, जब कि हम चाहते हैं कि ईश्वर की भक्ति से हो। डण्डे के भय से कोई अच्छा काम होता है, तो हम उसे पसन्द तो कर लेते हैं, पर चाहते हैं कि काम भी भक्ति से ही हो।

किन्तु ऐसा कभी न सोचना चाहिए कि बेकारी मिटाने के लिए सिर्फ बीच के समय में ही हमें ग्रामोद्योगों की जरूरत है। मैं तो पूँजीवादी सरकार की समझ ही यह है कि 'आज ग्रामोद्योग खड़े कर रहे हैं, पर उससे काम में ज्यादा देर होगी और उससे लोगों को तकलीफ ही होगी। फिर भी आप उसे चलाना चाहते हों तो करें। लेकिन यह ध्यान रखिये कि वे थोड़े ही दिनों के लिए होंगे। हम तो देश में कलीकरण ही चाहते हैं। जैसे हम मेहमान को घर में जगह देते हैं, वैसे ही देश में ग्रामोद्योगों को स्थान दीजिये। लेकिन उसे घर का मनुष्य मत समझिये।' इस तरह एक ओर पूँजीवादी विरोध कर ही रहे हैं, दूसरी ओर जो यह समझ गये हैं कि ग्रामोद्योग चलाने ही पड़ेंगे, उनका दिमाग भी साफ है, ऐसी बात नहीं। अवश्य ही उनमें कुछ ऐसे हैं, जिनकी ग्रामोद्योगों पर श्रद्धा है। लेकिन बहुत से ऐसे हैं, जो ग्रामोद्योगों को एक तात्कालिक स्थान मानते हैं। हम कहना चाहते हैं कि इस विषय में हमने ऐसे सैकड़ों गाँव देखे, जहाँ कोई तात्कालिक योजना नहीं चल सकती, दीर्घकालीन योजना ही करनी होगी। सड़कें बनाना आदि जैसे अनुत्पादक काम करने हों, उनके लिए तात्कालिक योजना हो सकती है। किन्तु इन धंधों में यह नहीं हो सकता कि ग्रामोद्योग का आयोजन किया जाय और फिर चार साल के बाद ग्रामोद्योग हटाकर दूसरे यन्त्र लाये जायें। यह भी समझने की बात है कि हिन्दुस्तान की और दुनिया की भी जनसंख्या कुछ-न-कुछ बढ़ ही रही है, पर हिन्दुस्तान की जमीन का रकबा नहीं बढ़ेगा। ऐसी स्थिति में हमें समझना ही होगा कि ग्रामोद्योगों का इस देश की आर्थिक योजना में स्थिर कार्य है।

भारत के आयोजन में ग्रामोद्योग का स्थान

जैसे इस देश में और दुनिया में भी खेती नहीं टल सकती, वैसे कम-से-कम हिन्दुस्तान में ग्रामोद्योग नहीं टल सकते। दुनिया को हर हालत में खेती करनी ही पड़ेगी, पर ग्रामोद्योगों के बारे में ऐसा नहीं कह सकते। जिस देश में जन-संख्या बहुत कम हो, वहाँ दूसरे उद्योग चल सकते हैं और जहाँ जमीन बहुत ज्यादा हो, वहाँ खेती में यन्त्रों का उपयोग किया जा सकता है। किन्तु हिन्दुस्तान

जैसे देश में जहाँ जमीन कम और जनसंख्या ज्यादा है, खेती में बड़े-बड़े यन्त्र नहीं आ सकते और उद्योगों में भी सिर्फ ग्रामोद्योग ही चल सकते हैं। इसलिए न केवल बेकारी के प्रश्न के रूप से, बल्कि स्थायी योजना के रूप में काम किया जाय। कोई हमसे पूछ सकते हैं कि आप इस तरह भेद क्यों करते हैं? हम भेद इसीलिए करते हैं कि जहाँ सर्वव्यापी योजना बनानी हो वहाँ अगर कोई निश्चित विचार न हो तो वह योजना नहीं चल सकती। मैंने कह दिया है यह ठीक है कि बेकारी निवारण के लिए ग्रामोद्योग का प्रारम्भ किया जा रहा है। लेकिन आज नहीं तो कल हमें यह सोचना होगा कि यहाँ जो आयोजन करना है, उसमें ग्रामोद्योग को एक महत्त्वपूर्ण विषय जीवन का एक अंग मानकर स्थान देना होगा।

औजारों में सुधार हो

हिन्दुस्तान के लिए ग्रामोद्योग अत्यन्त आवश्यक है इसका मतलब यह नहीं कि औजारों में कोई सुधार ही न किया जाय। सुधार तो जरूर करना चाहिए और हम भी पचीस साल से उसके पीछे लगे हुए हैं। अनेक वर्षों से हमने चरखे के प्रयोग किये और परिणामस्वरूप अब 'अम्बर चरखा' निकला है। ऐसे सुधरे हुए औजार जरूर निकलने चाहिए। उनसे कोई हानि नहीं होगी। लेकिन अम्बर चरखा आयेगा तो भी हमारी तकली और चरखा नहीं मिटेगा। छोटे-छोटे बच्चे भी रोज आध घंटा चल पर सूत कातकर अपने लिए साल भर का कपड़ा बना सकते हैं। ग्रामोद्योगों में यह सामर्थ्य है कि गाँव के औजारों से ही काम हो सकता है और उसके लिए ज्यादा पूंजी की जरूरत नहीं होती और न ज्यादा तालीम ही देनी पड़ती है।

ग्रामदान के बिना ग्रामोत्थान असम्भव

ग्रामोद्योग भी अकेले नहीं टिक सकते। गाँव के सब लोगों को मिलकर उसके लिए योजना करनी होगी। अगर गाँव के लोग निश्चय करें कि हमारे गाँव में बाहर का कपड़ा नहीं आ सकता तो वे योजना करके कपास बोने से कपड़ा बनाने तक का सारा काम गाँव में ही करेंगे। हम नहीं मानते कि इस तरह की योजना के

बिना ग्रामोद्योग चल सकते हैं। कोई व्यक्तिगत तौर पर ग्रामोद्योग कर ले, तो भी उससे ग्रामव्यापी योजना नहीं हो सकती। कोई एकाध मनुष्य अपनी मर्जी से सूत कातकर अपना कपड़ा बना सकता है। लेकिन उतने से ग्राम-योजना नहीं बन सकती। ग्राम-योजना बनाने के लिए गाँव की एक समिति बननी चाहिए। लेकिन जब तक गाँव में विषमता रहेगी, तब तक सारे लोग ग्राम-समिति के निर्णय न मानेंगे। इसलिए जमीन का समान बँटवारा भी आवश्यक है। हमने इसके लिए कुछ सिद्धान्त ही बनाये हैं, जो आपके सामने रख रहे हैं: (१) बिना ग्रामोद्योग के ग्राम का उत्थान हो नहीं सकता (२) सुव्यवस्थित ग्राम-योजना के बिना ग्रामोद्योग नहीं चल सकते (३) ग्राम की सुव्यवस्थित योजना ग्राम-समिति बनाये बगैर नहीं हो सकती और (४) ग्राम-समिति को गाँव में तब तक मान्यता नहीं मिल सकती जब तक गाँव में जमीन का समान बँटवारा न हो। इस तरह ग्रामोत्थान के साथ ग्रामोद्योग और जमीन का बँटवारा ये दो चीजें बँधी हुई हैं, उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है।

गुडारी
७-१-'५५

मनुष्य को जीवन में एक बार भी कुछ मौका मिले तो वह बहुत भाग्य माना जायगा। हमारे जीवन में हमें एक यज्ञ की पूर्ति करने के बाद दूसरा यज्ञ शुरू करने का भाग्य मिला है। मनुष्य को अक्सर ऐसा भाग्य हासिल नहीं होता। कालिदास ने लिखा है। "क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते"—जो भक्त होते हैं, वे एक क्लेश समाप्त होते ही नये क्लेश का आरम्भ करते हैं। नये क्लेश का आरंभ करने का मतलब है नये आनन्द का आरम्भ करना। तपस्या और तप में बड़ा फर्क है। तप से आनन्द और निर्मिति होती है। हम लोगों को स्वराज्य के नाम से तपस्या करने का एक बड़ा मौका मिला था और अब दुबारा 'सर्वोदय' के नाम से तपस्या करने का मौका मिला है, इसलिए हम बड़े भाग्यवान् हैं। हमें उम्मीद होनी चाहिए कि यह काम पूरा हुए बगैर भगवान् हमें अपने दर्शन के लिए न बुलायेगा। उस हालत में हमें वर्षों की कोई गिनती ही न करनी चाहिए, अपने काम में उत्साह मालूम होना चाहिए। जब भगवान् किसीको इस तरह का भाग्य देता है तो उसे दोनों तरफ से सुख हासिल होता है उसके दोनों हाथ लड्डू रहते हैं। अगर भगवान् ने उसे अपने दर्शन के लिए जल्दी बुला लिया तो उसे भगवान् के दर्शन का आनंद मिलेगा और अगर जल्दी न बुलाया तो भगवान् की ही सेवा करने का आनन्द मिलेगा। इस तरह जिसके लिए इस ओर आनन्द और उस ओर भी आनन्द है, उसके जीवन में सिवा आनन्द के दूसरी वस्तु नहीं रहेगी।

कार्यकर्ताओं का अभिनन्दन

हमें बड़ी खुशी हो रही है कि आज का यह दिन कोरापुट जिले की यात्रा में आया। हम इस दिन को अपनी साठ वर्षों की पूर्ति का उत्सव नहीं मानते, बल्कि यहाँ जो भूमि-क्रांति शुरू हुई है उसके उत्सव का दिन मानते हैं। मेरा [illegible]

बड़ा भाग्य रहा है कि इनेता सज्जनों की संपत्ति और उनका खूब अच्छा सह
मिला है। इस जिले में भी मुझे चार महीने से यही अनुभव आ रहा है।
जिला मलेरिया के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ बीच-बीच में बारिश भी काफी
और घने जंगल तो यहाँ ही हैं। फिर भी इस बारिश में पचासों कार्यकर्ता
तीन चार महीने से लगातार घूमकर काम कर रहे हैं। इसलिए अब यह
नहीं रही कि बारिश में किस तरह काम हो सकेगा। यहाँ बहुत बड़ा कार्य हु
है और कार्यकर्ताओं के लिए उत्साह और हिम्मत बँध गयी है। काम के लिए
हर जगह नयी स्फूर्तियाँ मिलती हैं। लेकिन इन कार्यकर्ताओं को कोई खास
जिक्र नहीं मिलती। इसलिए आज के दिन हम इन सब कार्यकर्ताओं का अत्य
हृदयपूर्वक अभिनन्दन करते हैं। परमेश्वर से हमारी माँग है कि वह इन सब
ऐसी ही सद्बुद्धि दे, इन्हें दीर्घायु करे, इन सबका परस्पर प्रेमभाव सद्बुद्धि
हो और सबकी उत्तरोत्तर हृदय शुद्धि होती जाय।

सभी कामों का आधार हृदय-शुद्धि

हमारे सभी कामों का आधार हृदय-शुद्धि है। आखिर यह कोई आधार
कार्य नहीं है, यह तो यज्ञ-काम है और यज्ञ-कार्य हृदय-शुद्धि पर निर्भर करता है
इस आन्दोलन में कितने लोग योग देते हैं, इसकी हमें चिन्ता नहीं। लेकिन ज
हम देखते हैं कि कार्यकर्ता चार महीने से बारिश में अविश्रान्त श्रम करते जाते
और उन्हें किसी भी प्रकार की ख्याति या लाभ हासिल नहीं है, फिर भी वे का
करते जाते हैं, तो हमारे हृदय को बड़ा आनन्द होता है। काम तो खैर, सब कर
ही हैं। दुनिया में बिना काम का कोई घड़ीभर के लिए भी नहीं रहता
किन्तु जिसे 'निष्काम कर्म' कहते हैं, वह चीज बहुत दुर्लभ है। लेकिन इस यज्ञ
कोरापुट जिले के इतने सारे कार्यकर्ताओं को वह चीज सुलभ हो गयी यह देखक
हमें प्रसन्नता होती है।

हमारे नेता परमेश्वर

हमें इसमें जरा भी शंका नहीं कि यह काम ईश्वर हम लोगों से कराना चाहता
है। किसीको लगता है कि हमारे काम के लिए अच्छे नेता मिलते तो यह का

बहुत जल्दी आगे बढ़ता। लेकिन आप समझ लीजिये कि हमारे काम के लिए जो नेता मिला है, उससे बढ़कर नेता सारी दुनिया में नहीं है। हमारे काम के लिए परमेश्वर ही नेता हुए हैं। उनके बल और उनकी इच्छा के बिना यह काम किसी प्रकार आरंभ ही न हो सकता था। अगर वे नेता न होते और इस काम का थोड़ा-सा भी भार हमारे कंधों पर पड़ता तो हम टिक नहीं सकते थे। जैसा कि मैंने अभी कहा, इस शरीर का कोई भी भार मेरे ऊपर नहीं है। वैसे ही हम यह भी कहना चाहते हैं कि इस काम का कोई भार हम पर है, ऐसा हमें महसूस नहीं होता। मैं तो मानता हूं कि ईश्वर की प्रेरणा न होती तो ये सारे छोटे-छोटे कार्यकर्ता इस तरह काम न कर सकते। लेकिन जब वह चाहता है, तो जड़ को चेतन बनाता है, नाचीज को भी चीज बना देता है।

संकल्प का कोई भार नहीं

आज के दिन कोरापुट में जो यज्ञ शुरू हुआ है, उसकी पूर्ति का संकल्प हम सब करें और उस संकल्प का कोई भार हम महसूस न करें। हम उसे भक्ति का एक संकल्प समझें। हमारे कुछ भाई हमें बहुत बार कहते हैं कि आपने यह जो पाँच करोड़ एकड़ का संकल्प किया और उसके साथ सत्तावन साल की जो मुद्दत लगा दी उससे कई दोषों को पैदा होने और अहिंसा में भी बाधा पड़ने की आशंका है। उनकी यह कल्पना सही हो सकती थी अगर इस संकल्प का कोई भार हम महसूस करते। लेकिन इसका कोई भार हम पर नहीं है, इसलिए इसमें उतावली या हिंसा की कोई शंका नहीं हो सकती। जरा भी सोचा जाय तो ध्यान में आ जायगा कि इस तरह लोगों से पाँच करोड़ एकड़ जमीन हासिल करने का संकल्प हम नहीं कर सकते। अगर हम कोई संकल्प कर सकते हैं, तो यही कर सकते हैं कि हम लोगों के पास जायेंगे और प्रेम से अपनी बात समझायेंगे। जमीन देने का संकल्प तो लोग ही कर सकते हैं। इसलिए पाँच करोड़ एकड़ का संकल्प याने एक सीधा-सादा गणित है, जो हमने देश के लोगों के सामने रखा है। हमने कहा है कि देश के उद्धार के लिए इतना होना आवश्यक है। समय की भी हमने जो कल्पना की है, वह हमारी अपनी कल्पना नहीं है। हमारा

कुछ इतिहास का निरीक्षण है और कुछ श्रद्धा है। इन दोनों के कारण हमारे मन में यह विचार आया कि इस काम की कुछ मुद्दत होनी चाहिए। हमने वह मुद्दत अपने मन में मान ली है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उस सीमा के अन्दर हम कुछ गलत ढंग से काम करें। हमारा रास्ता तो सीधा और सरल है। सत्य हमारा आधार है और अहिंसा हमारा मार्ग। इन दो आधारों पर निष्ठा रखकर हमने यह काम शुरू किया है।

काम एक दिन में हो सकता है

मेरा गणित पर बहुत ज्यादा विश्वास है, फिर भी ये आक्षेपकारी उस पर जितना विश्वास रखते हैं, उतना मेरा भी नहीं है। वे पूछते हैं कि चालीस लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने के लिए तीन साल लगे तो पाँच करोड़ के लिए कितना समय लगेगा और सत्तावन के अन्दर यह सब कैसे होगा? जरा बताइये। मैं जवाब देता हूँ कि सत्तावन साल तक काम पूरा करने की बात ही क्यों करते हो? यह काम तो एक दिन में होगा। सारा देश एक संकल्प कर ले और एक तारीख मुकर्रर कर ले, तो उस दिन देश के सब गाँवों में जमीन की प्राप्ति और बँटवारा हो जायगा। उसके आगे निर्माण का काम करना होगा। वह एक दिन में नहीं हो सकता। उसके लिए जितना समय लगना चाहिए, उतना लगेगा। फिर उसमें सरकार की मदद होगी। लेकिन यह प्राप्ति और वितरण का काम तो एक दिन में ही हो सकता है। उस एक दिन की प्राप्ति के लिए जितने दिन लगें तो लगें।

स्वेच्छा से स्वामित्व-विसर्जन की प्राप्ति

हमारे चित्त में तो इस काम के लिए अधिकाधिक उत्साह बढ़ रहा है। हमने बिहार में ही कहा था कि बिहार के बाद उड़ीसा को भूमि-क्रान्ति का काम करना है। यहाँ के कार्यकर्ताओं ने उस वचन पर श्रद्धा रखकर उस दिशा में काम किया और हमारे आने के पहले ही कुछ गाँव ग्रामदान में मिले। अब यहाँ एक दृश्य दर्शन हो रहा है, यह मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ। यहाँ इस काम का कुछ चमत्कार दिखाई दे रहा है, यह जानकर मुझे खुशी ही हुई। अगर हमारा ग्राम

पर भी विरोध नहीं होता, तो मेरे मन में शंका आती कि शायद हम कुछ-न-कुछ गलती कर रहे हैं। इस काम से तो ग्राम की समाज-रचना की बुनियाद ही खतम हो रही है। यहाँ आप कुछ जमीन दूसरे की मालकियत की मानने लगे वहीं आप व्यक्तिगत मालकियत ही खतम कर देते हैं। लेकिन आज तो ऐसे अर्थशास्त्री ही नहीं बल्कि नीतिशास्त्री और धर्मज्ञानी भी मौजूद हैं, जो व्यक्तिगत मालकियत को एक पवित्र वस्तु मानते हैं। वे क्या कहना चाहते हैं, वह मैं समझ सकता हूँ। वे यही कहना चाहते हैं कि जो चीज दूसरे ने अपने हाथ में पकड़ रखी है, उसे हम हिंसा से छीन लेते हैं, तो वह अन्याय हो जाता है। लेकिन वह चीज उसीकी इच्छा से उसके हाथ से नीचे गिरनी चाहिए। क्योंकि उसने यह वस्तु प्राप्त करने के लिए काफी परिश्रम किया है। इसलिए उसे यह वस्तु छोड़ने में ही अपने परिश्रम की सार्थकता मालूम होनी चाहिए। जब आप अपनी कमायी हुई इस्टेट वेद के हाथ सौंप देता है, तो उसे बड़ी खुशी होती है। उसे इस बात का विचार आनन्द इसलिए होता है कि उसने वह इस्टेट खुद कमायी है। इसी तरह ग्राम के समाज ने अपना जो मालकियत मान रखी है और उसके लिए उसने कुछ परिश्रम भी किया है, तो उसे मालकियत छोड़ने में ही परिश्रम की सार्थकता मालूम हो। जब ऐसा अनुभव आयेगा तब हम कह सकते कि हमने क्रान्ति की है।

विचार मन्थन आवश्यक

हमारा यह विचार बिलकुल ही नया विचार है। जब एक नया विचार शुरू होता है तो पुराने विचारवाले आश्चर्य में पड़ जाते हैं और कुछ लोग विरोध भी शुरू करते हैं। उसमें हमें नाखुश मालूम न होना चाहिए। इस तरह जो कुछ थोड़ा विरोध शुरू हुआ है उससे हमें बड़ा लाभ होगा। उससे विचार मन्थन होगा जिसकी इस काम में बहुत आवश्यकता है। विचार-मन्थन के बिना क्रान्ति पैदा नहीं होती। हमने जगह-जगह जाकर गाँववालों को समझाया है कि प्यार यह काम पूरे विचार से कीजिए। मेरा निवेदन है कि जिन्होंने ग्रामदान दिया है उनमें सिर्फ दस-पाँच ही एक और होंगे जिन्होंने पूरी जिम्मेदारी यह काम

व्यावहारिक लोग स्थितप्रज्ञ के श्लोक बोलते होंगे। अक्सर साधारण लोग भक्त के लक्षण गाया करते हैं। गीता में जो भक्त के लक्षण हैं, वे बहुत अच्छे हैं। गीता का सबसे मधुर भाग अगर कोई है तो वह भक्त के लक्षणों का है। इसलिए लोग भक्त के लक्षण गाया करते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। उसमें साधारण सद्गुणों की प्रशंसा है। किन्तु स्थितप्रज्ञ के श्लोक अंतिम अवस्था का वर्णन करते हैं, फिर भी गांधीजी ने उन्हीं श्लोकों को चुनकर लोगों के सामने रखा और वे लोकप्रिय हो गये।

विज्ञान-युग में निर्णय शक्ति की महिमा

गांधीजी ने इन श्लोकों को क्यों चुना और उन्हें इनका इतना आकर्षण क्यों मालूम हुआ? इसका कुछ अंदाज हम लगा सकते हैं। उसका एक कारण यह है कि विज्ञान के युग में जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है उसकी पूर्ति इनसे होती है। शंकराचार्य को आत्मा की अंतिम स्थिति का बहुत आकर्षण था और उसी दृष्टि से वे इन श्लोकों की तरफ देखते थे। किंतु वैज्ञानिक युग में रहनेवालों को इन श्लोकों से ऐसी चीज मिलती है जिसकी इस युग को अत्यन्त आवश्यकता है। इन श्लोकों में सबसे ज्यादा महत्त्व 'प्रज्ञा' को दिया गया है, प्रज्ञा यानी 'निर्णय-शक्ति'। यह निर्णय शक्ति जितनी परमार्थ में काम आती है उतनी ही व्यवहार में भी आती है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य के व्यवहार बहुत व्यापक हुए हैं। इसलिए कठिन समस्याएँ पैदा होती हैं। इस जमाने में छोटे-छोटे सवाल पैदा नहीं होते, जो भी पैदा होते हैं, बड़े ही होते हैं। यहाँ की समस्या अगर उठ खड़ी होती है तो वह जागतिक ही होती है। कोई वैज्ञानिक समस्या पैदा होती है, तो वह भी जागतिक ही होती है। कोई सामाजिक समस्या खड़ी होती है तो वह भी विश्वव्यापक हो जाती है। कोई साधारण व्यापार की समस्या खड़ी होती है तो उसका भी सम्बन्ध अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँच जाता है। इस तरह विज्ञान के कारण छोटी-छोटी समस्याएँ भी बड़ा व्यापक रूप ले लेती हैं। दूसरी मजेदार बात यह होती है कि इधर तो व्यापक और कठिन समस्याएँ पैदा होती हैं और उधर उनका जल्दी निर्णय करने की भी आवश्यकता होती है। क्योंकि

समय की महिमा इतनी बढ़ गयी है कि एक-एक क्षण भारी हो गया है। आठ बजे मिलनेवाली डाक अगर नौ बजे मिले तो मनुष्य घबड़ा उठता है। डाक मिलने में एक घण्टे की देर हो तो दुनिया में कई प्रकार की बुराइयाँ पैदा हो सकती हैं।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की इस युग में अधिक आवश्यकता

सारांश, जहाँ बड़ी-बड़ी समस्याएँ पैदा होकर भी उनका शीघ्र निर्णय करने की आवश्यकता होती है, वहाँ स्थितप्रज्ञ के लक्षण एक बड़ा महत्त्व का स्थान है। जैसे अन्तिम ब्रह्म-दर्शन के लिए स्थितप्रज्ञ के लक्षणों के सिवा गति नहीं, वैसे ही इस जमाने की समस्याएँ हल करने के लिए भी उनके सिवा गति नहीं है। इन दिनों सारी दुनिया की खबरें शीघ्र मिल जाती हैं और एक घण्टे में वे दिमाग में उपस्थित हो जाती हैं। उनका अपने पर असर हुए बिना बिलकुल तटस्थ बुद्धि से निर्णय करना होता है। अगर असर हुआ तो निर्णय ठीक नहीं हो सकता। इस तरह इस जमाने के लिए निर्णय शक्ति की महिमा बहुत ही बढ़ गयी है। इसीलिए गांधीजी ने सामान्य कार्यकर्ताओं के सामने भी गीता के ये श्लोक रखे।

समाज को स्वावलम्बी बनाना सबसे श्रेष्ठ सेवा

समझने की जरूरत है कि मनुष्य की सेवा किस प्रकार समाज के काम आती है? मनुष्य कई प्रकार से समाज की सेवा करता है। शारीरिक सेवा, मानसिक सेवा और वाणी से भी सेवा करता है। लेकिन सबसे श्रेष्ठ सेवा वह है, जिसके जरिये समाज सोचने में स्वावलम्बी बनता है। लड़कों को हम तरह-तरह का ज्ञान दें, इसका उतना महत्त्व नहीं जितना इस बात का महत्त्व है कि लड़के ज्ञान-प्राप्ति करने में स्वतन्त्र हों। अगर समाज के हर व्यक्ति में अपने लिए विचार करने की शक्ति आ जाय, तो समाज की बड़ी सेवा होगी। अगर स्थितप्रज्ञ के ये लक्षण हम लोगों के जीवन में आ जायँ—और उनका आना बहुत ज्यादा कठिन नहीं, ऐसा हम कह सकते हैं—तो समाज के मसले सहज ही हल होंगे। क्योंकि उसके परिणामस्वरूप हर घर में निर्णय-शक्ति हासिल होगी। जैसे हर घर में एक-एक दीपक जल जाने से रात का अँधेरा मिट जाता है, वैसे ही हर घर में स्थितप्रज्ञ के

समत्व दाखिल होने पर निर्णय-शक्ति दाखिल होगी। अगर हम चाहते हैं कि दुनिया में 'गणतन्त्र' स्थापित हो और 'शासन-मुक्ति' का काम तो मनुष्य की बुद्धि शान्त सम और शुद्ध होनी चाहिए।

निर्णय शक्ति की प्राप्ति कठिन नहीं

स्थितप्रज्ञ के ये लक्षण प्राप्त करना कठिन नहीं यह हमने हिम्मत की बात कही है। उसे हम जरा स्पष्ट करेंगे। स्थितप्रज्ञता एक अत्यन्त विकसित अवस्था है। लेकिन साधारण क्षेत्र में उसका साधारण आरम्भ हो सकता है। अपने निज के व्यवहार के लिए, अपने कुटुम्ब के क्षेत्र में या अपने गाँव के क्षेत्र में निर्णय करने की शक्ति हासिल हो सकती है। इस तरह अधिकाधिक व्यापक क्षेत्र में निर्णय करने की शक्ति हासिल हो तो निर्णय-शक्ति के उत्तरोत्तर अनेक व्यापक अर्थ हो सकते हैं। फिर भी इस निर्णय शक्ति का स्वरूप एक ही रहेगा। चाहे अपने व्यक्तिगत मामले में निर्णय लेना हो घर के क्षेत्र में गाँव के क्षेत्र में या अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में निर्णय लेना हो तो निर्णय शक्ति का स्वरूप यही रहेगा कि मसलों के बारे में सोचने में मनोविकार दाखिल न होने चाहिए।

हमने कहा है कि यह चीज इतनी कठिन नहीं मानी जानी चाहिए, इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि समता आत्मा का स्वरूप है। आत्मा स्वयं निर्विकार है। हम विकारवान् बनते हैं तभी हमें कुछ क्लेश होता है। निर्विकार रहने के लिए किसी क्लेश या प्रयत्न की जरूरत ही नहीं होती। किसी पर गुस्सा करना हो तो जरूर कुछ-न-कुछ प्रयत्न करना होगा—आँख का स्वरूप बदलना पड़ेगा हाथ उठाना पड़ेगा चाहे लाठी भी उठानी पड़े। इस तरह उसके लिए कुछ-न-कुछ क्लेश करना पड़ेगा और नाड़ी भी तेज चलेगी। लेकिन अगर गुस्सा न करना हो तो कुछ खास प्रयत्न की जरूरत ही नहीं है। उसमें कुछ करना ही नहीं पड़ता। इस तरह निर्विकार अवस्था की प्राप्ति बहुत कठिन न मानी जायगी। दूसरा कारण यह है कि इस विज्ञान के जमाने में यह एक आवश्यकता है। इसलिए हर मनुष्य में यह उपस्थित होगी।

हर कोई चाहे, तो स्थितप्रज्ञ बन सकता है

इस तरह मनोविकारों के विरुद्ध आज दो शक्तियाँ काम करने लगी हैं।

जैसे नदी बढ़ते-बढ़ते विशाल रूप धारण करती है और उस व्यापक रूप में उसके उद्गम के स्थान से बिलकुल भिन्न दर्शन होता है, वैसे ही इस भूदान-यज्ञ का हुआ है। प्रारंभ में इसका जो रूप था आज उससे बिलकुल ही भिन्न रूप दीख रहा है। इसीलिए कुछ लोग चकित हुए हैं और कुछ बातें उनकी समझ में नहीं आ रही हैं। वे कहते हैं कि इसका आरंभ तो मालकियत को मान्य करते हुए हुआ था इसीलिए इसमें दान माँगने की बात थी। लेकिन अब उसका जो रूप बनने जा रहा है, वह तो एक बिलकुल ही भिन्न है क्योंकि उसमें मालकियत मिटाने की बात है। यह रूप न केवल पहले रूप से भिन्न है बल्कि कुछ लोगों को लगता है कि यह उससे विपरीत मालूम हो रहा है। आरंभ की तुलना में यह रूप देख कुछ लोगों को धक्का लग रहा है। लेकिन जैसे नदी के विशाल रूप में भी गुण-परिवर्तन नहीं होता पानी का स्वरूप कायम ही रहता है वैसे ही इसके आरंभ में इसका जो गुण-रूप था उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

मालकियत मिटाने में अनुराग का विस्तार

हमने शुरू से ही कहा था कि दान का मतलब है सम-विभाजन। लेकिन लोग पूछते हैं कि 'सम-विभाजन' का अर्थ अगर यहाँ तक आ जाय कि उससे मालकियत मिटने की ही बात पैदा हो तो यह एक विरक्ति का गुण हो गया और इतनी विरक्ति लोग कैसे कबूल करेंगे। हम कबूल करते हैं कि इसमें अगर केवल विरक्ति का ही रूप हो तब तो वह व्यापक न हो सकेगा—लोग उसे ग्रहण न कर सकेंगे। एक अर्थ में विरक्ति का एक न होने का निषेधात्मक या अभावा-त्मक रूप है। लेकिन इसका रूप ऐसा नकारात्मक नहीं अनुरागात्मक है। हम बच्चों को यह नहीं समझाते कि अपने शरीर और परिवार को तुच्छ समझो उसमें क्या रखा है; क्योंकि हम उसमें असार नहीं मानते। घर और परिवार के लिए

विरक्ति का होना एक स्वाभाविक सद्गुण है, ऐसा हम नहीं समझते। उसमें गुण का अंश जरूर है, पर वह एक पूर्ण गुण है, ऐसा हम नहीं समझते। हम उसमें दोष मानते हैं, इसीलिए विरक्ति का उपदेश नहीं देते। यद्यपि कई संतों ने हमें विरक्ति का उपदेश दिया है पर यदि हम उसका ठीक स्वरूप समझ लें तो मालूम होगा कि वह अनासक्ति ही है। शरीर या पारिवारिक जिम्मेवारी का त्याग इस तरह उसका अर्थ करना गलत है। लेकिन विरक्ति का इसी तरह से अर्थ किया गया है। इसी-लिए हम कहते हैं कि हम जो विचार फैला रहे हैं, वह विरक्ति का नहीं है।

हम लोगों को यह नहीं समझा रहे हैं कि अपने परिवार और बाल-बच्चों की चिंता क्यों करते हो! सारी-की-सारी जमीन दान कर दे दो। बल्कि हम तो उनसे यही कहते हैं कि आप अपने शरीर और परिवार के लिए जो अनुराग रखते हैं, वह एक अच्छा गुण है पर उसे सीमित मत बनाओ व्यापक करो। हमारा हेतु वैराग्य-प्रचार का नहीं है। हम जानते हैं कि वैराग्य का प्रचार कई लोगों ने किया है और वह व्यापक रूप से नहीं हो सकता। लेकिन हम तो अनुराग का विस्तार करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हम अपना एक बड़ा परिवार समझें। आज तक हमने अपना छोटा परिवार समझ रखा था और इसी कारण संकुचित बन गये, जिससे कई दुःख निर्माण हुए हैं।

हमारी यह बात मान्य करते हुए कि हम अनुराग का विस्तार कर रहे हैं, कुछ लोग यह आक्षेप उठाते हैं कि 'अनुराग का विस्तार करने और बड़ा परिवार बनाने की बात आप करते हैं लेकिन बड़े परिवार में मनुष्य को कर्तव्य की प्रेरणा नहीं मिलती; छोटे परिवार में ही वह मिलती है। अगर लोगों को यह समझाया जाय कि सारी जमीन देश की और संपत्ति समाज की है तो लोग आपका विचार कबूल करेंगे। फिर भी वह चीज उन्हें महसूस नहीं होगी। अगर वह उन पर लादी जाय, तो उनमें आज की यह कर्तव्य-भावना न रहेगी जिससे प्रेरित होकर वे कई अच्छे काम करते हैं। इसका उत्तर यही है कि भूदान-यज्ञ में हम मालकियत के बदले ईश्वर का ही नाम रखना चाहते हैं, जिसे सब मानते हैं और उसकी तरफ से गाँव का परिवार बनाने की बात करते हैं। हमें भी मंजूर है कि छोटे पैमाने पर उपासना अच्छी होती है और अगर बहुत बड़ा विस्तृत आकार हो जाता है, तो

वह वस्तु अव्यक्त हो जाती है। इसीलिए विचार मान्य होने पर भी उस पर अमल नहीं हो सकता और न उससे प्रेरणा ही मिल सकती है। यही कारण है कि हम सारे देश की मालकियत या सरकार की मालकियत की बात कभी नहीं करते।

न समुद्र, न नाला; बल्कि सुंदर नदी

हम कहते हैं कि हमें अपना परिवार व्यापक बनाना चाहिए, पर वह अति व्यापक न हो साधारण मनुष्य होने जितना ही व्यापक हो। हम कबूल करते हैं कि समुद्र में डर मालूम होता है, मनुष्य को उसमें तैरने की हिम्मत नहीं होती। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि नाले में भी खतरे होते हैं। वहाँ एक प्रकार की गन्दगी होती है। इसलिए हम सबको समझा रहे हैं कि आपने यह जो छोटा-सा नाला पकड़ रखा है उससे काम न बनेगा। हमें समुद्र की तरफ भी नहीं जाना है, बल्कि छोटी सी सुंदर नदी बनानी है। अभी तक का मानवता का विकास और आज के विज्ञान की माँग को ध्यान में रखते हुए आज आपने अपना कुटुम्ब को बिल्कुल छोटे-से नाले जैसा सीमित बना रखा है, उसे ग्राम तक व्यापक बनाना चाहिए। इस तरह इधर हम छोटे नाले को छोड़ना चाहते हैं और उधर समुद्र की तरफ भी नहीं जाना चाहते। हम बीच की ही हालत पसन्द करते हैं, जिसमें सेवा का क्षेत्र अच्छा रहेगा और बुद्धि भी व्यापक होगी।

मध्यम-मार्ग

सारी जमीन और सम्पत्ति देश या दुनिया की है, ऐसा कहने में विचार की उदारता या विशालता तो होती है, परन्तु उसमें सेवा की प्रेरणा नहीं होती है। वह वस्तु बहुत विशाल हो जाती है, तो एक प्रकार से अव्यक्त-सा हो जाती है। इसीलिए उसकी उपासना बड़ी कठिन हो जाती है। किन्तु अगर हम एक छोटा-सा परिवार बनाकर उसीमें रहते हैं, तो उससे सेवा की प्रेरणा तो मिलती है पर विचार संकुचित और संकुचित बनता है। इसलिए सेवा की प्रेरणा भी कायम रहे और विचार भी उदार बने इस दृष्टि से सोचते हुए जमीन गाँव की बनाने के विचार में दोनों अच्छे विचारों का समन्वय हो जाता है। आज के वैज्ञानिक जमाने में मनुष्य का जीवन जिस तरह बन रहा है उस बारे में सोचते

हुए हम गाँव का एक परिवार नहीं बनायेंगे, तो हमें अपनी बहुत सी समस्यायें हल करना कठिन हो जायगा।

अलबत्ता ग्राम परिवार बनाने की यह कल्पना अनुराग का इतना विस्तार नहीं कि वह अव्यक्त ही हो जाय। इसलिए इसे हम एक व्यावहारिक कार्यक्रम ही समझते हैं। ग्राम-परिवार की कल्पना में जैसे नैतिक उत्थान है, वैसे ही व्यवहार की भी बड़ी व्यवस्था है। बुद्ध भगवान् ने इसीको 'मध्यम-मार्ग' कहा था। वह अति संकुचित या अति विस्तृत न हो बल्कि बीच की चीज हो जिसे मनुष्य सहज ग्रहण कर सके। इस तरह ग्राम-परिवार की हमारी कल्पना भी एक मध्यम-मार्ग है, ऐसा हमारा दावा है।

गुणपुर
११-२-५५

देश को भूमि-सेवा के मूलधर्म की दीक्षा देनी है : ८३ :

शायद यह कहना ही जरूर है, जब कि गाँव-देहात में घूम रहे हैं। वैसे स्वराज्य के आन्दोलनों में भी गाँवों का सहयोग अच्छा रहा। फिर भी कहना होगा कि उन आन्दोलनों का मुख्य काम शहरों में ही चला। उनमें भी देहातियों का त्याग ज्यादा रहा। फिर भी जिस तरह इस आन्दोलन में गाँव-गाँव में जाना पड़ता है और हर घर से संबंध आता है, उस तरह पहले नहीं हुआ था। चाहे एक हिस्सा जमीन हासिल करनी हो या सम्पत्तिदान, हर घर से संबंध आता है और हर बार इसकी चर्चा होती है तब काम बनता है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो इस आन्दोलन की जड़ें समाज में बहुत गहरी जायेंगी। और जब हम देखते हैं कि हमने काम कितना किया और गाँव-गाँव के लोगों में जागृति कितनी आयी है, तो मालूम होता है कि हमने काम बहुत ही थोड़ा किया, पर जागृति बहुत ज्यादा पैदा हुई। गाँव-गाँव के लोग अब इस बात के लिए तैयार हो रहे हैं कि हमारे गाँव का जो ढाँचा चलता था वह अब नहीं चलेगा। एक के बाद एक गाँव

ग्रामदान में मिल रहे हैं। वे यह दिखा रहे हैं कि इस आंदोलन के लिए लोगों ने किस तरह आशाएँ रखी हैं।

ग्रामदान से नये समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र का निर्माण

ग्रामदान तो समुद्र जैसा है। जिस तरह समुद्र में सब नदियाँ लीन हो जाती हैं, वैसे हरएक की मालकियत ग्रामदान में लीन हो जाती है। इस काम के लिए अब छोटे-छोटे गाँवों के लोग भी तैयार हो रहे हैं, तो इसका मतलब यही है कि काल का एक प्रवाह बह रहा है, जो सबको स्पर्श कर रहा है। इस आन्दोलन के समय परस्पर सहयोग का महत्त्व जितना लोगों के ध्यान में आ रहा है उतना इसके पहले कभी नहीं आया था। क्योंकि व्यक्तिगत मालकियत समाज में लीन कर देने से बढ़कर और परस्पर सहयोग क्या हो सकता है? इसलिए इस आन्दोलन के जरिये न सिर्फ भूमि के मसले के लिए राह खुल जाती है, बल्कि सब तरह की सामूहिक साधना की तैयारी भी हो जाती है। यह एक ऐसे ढंग से होती है कि उसमें समूह के साथ व्यक्ति का कोई विरोध पैदा नहीं होता, बल्कि सारे व्यक्ति अपनी इच्छा से अपने स्वार्थ को समूह में विलीन कर देते हैं। इसलिए 'समूह विरुद्ध व्यक्ति' का जो झगड़ा पाश्चात्य समाजशास्त्रियों और नीतिशास्त्रियों ने पैदा किया था वह इसमें रहता ही नहीं। ये लोग जो ग्रामदान दे रहे हैं, वे एक नया नीतिशास्त्र और नया समाजशास्त्र रच रहे हैं। ये लोग स्वार्थ और परमार्थ का भी भेद मिटा रहे हैं। जैसे व्यक्ति और समाज के हित में विरोध नहीं वैसे ही स्वार्थ और परमार्थ के बीच भी कोई विरोध नहीं है।

कार्यकर्ताओं के लिए अद्भुत मौका

इस तरह इस आन्दोलन में जो शक्तियाँ निर्माण हो रही हैं, वे इतनी व्यापक हैं कि उसके लिए हम चाहे जितनी तारीफ करते हों कम ही मालूम होगी। इस आन्दोलन में काम करनेवाला व्यक्ति स्वार्थ का साथ कर सकता है, परमार्थ का साथ कर सकता है और समाज-सेवा का दावा तो कर ही सकता है। समाज-सेवा का प्रयोग मैंने मामूली अर्थ में नहीं किया है। वैसी समाज-सेवा तो सब देशों में चलती है। लेकिन हम करना चाहते हैं कि समाज-रचना बदलने की यह क्रान्ति

की बात इसमें आती है। इस तरह देश का आर्थिक जीवन उन्नत करना, सामाजिक रचना में क्रांति लाना और पारमार्थिक उन्नति करना यह सारा काम देहात-देहात में चल रहा है। इसलिए कार्यकर्ताओं को ऐसा अद्भुत मौका मिल रहा है कि उनके लिए इससे बढ़कर उत्साहदायी वातावरण कोई नहीं हो सकता।

अंदर की ताकत बढ़नी चाहिए

अक्सर हम गाँव-गाँव के लोगों के पास जाकर पूछते हैं कि आपको क्या चाहिए? तो वे जवाब देते हैं कि शिक्षा या पानी का इंतजाम होना चाहिए। लेकिन एक बार हमने ग्रामदान में मिले एक गाँव के लोगों को यही सवाल पूछा, तो उन्होंने जवाब दिया : 'अब हम एक हो गये हैं, इसलिए हमें कोई कमी ही नहीं रहेगी। हम एक-दूसरे की मदद करेंगे, तो सब चीजें हासिल कर सकेंगे।' यह जवाब सुनकर मैं चकित रह गया। मुझे लगा कि अब इन लोगों को समझाने के लिए मेरे पास अधिक कुछ शेष नहीं रहा। इन छोटे-छोटे गाँवों को बाहर से कोई मदद नहीं मिलती, इसलिए भी वे समझ लेते हैं कि गाँव एक बनता है, तो अंदर से एक ताकत बनती है। इन सब गाँवों को यह अनुभव हो रहा है कि अपनी शक्ति अंदर से बढ़नी चाहिए। जब अपनी शक्ति बढ़ाने की इच्छा अंदर से जाग जाती है, तो मनुष्य की आत्मा एकदम सावधान हो जाती है। फिर भूदान-यज्ञ का तत्त्व सुनकर लोगों को यह लग रहा है कि यह एक ऐसा साधन है, जिससे हम पराधीन न रहेंगे, अपने बल से काम करेंगे। इसलिए वे लोग अत्यन्त उत्साह से यहाँ आते हैं और हमारा शब्द प्रेम से सुनते हैं। हम उन्हें यह भी सुनाते हैं कि इस तरह आप अपने गाँव का सर्वोदय की दृष्टि से संगठित करेंगे, तो आपको बाहर से भी मदद मिल सकती है। लेकिन इस बारे में हम बहुत एहतियात से काम करते हैं। हम उन्हें यह भास नहीं होने देते कि उनके अंदर की शक्ति से बढ़कर कोई शक्ति उन्हें मदद करनेवाली है। शास्त्र का वचन है कि जो खुद की मदद करते हैं उन्हें भगवान् मदद करता है। फिर भी ये लोग अपनी अंदर की ताकत बढ़ायेंगे, तो उसके साथ उन्हें कुछ बाहर की मदद भी मिलनी चाहिए। लेकिन जो लोग सिर्फ बाहर की मदद पर निर्भर

रखते हैं, उनकी अन्दर की ताकत तो बढ़ती ही नहीं, बाहरी ताकत भी जितनी चाहिए, उतनी नहीं मिलती।

हर कोई खेती करे

हम इन गाँववालों को समझाते हैं कि आप लोग मैं-मेरा और तू-तेरा छोड़ दें और हम और हमारा कहना शुरू कर दें। अगर कोई आपसे पूछे कि तुम्हारी जाति क्या है तो कह दीजिये कि हम जाति नहीं मानते। हम इस गाँव के रहनेवाले हैं। ये सब जातियाँ जिस जमाने में बनीं उस जमाने में उनका काम था, लेकिन आज काम नहीं है। जाति का मतलब इतना ही है कि बाप बढ़ई का काम करता था तो उसका लड़का भी बढ़ई का काम आसानी से सीख लेता और उस तालीम के लिए किसी स्कूल में जाने की जरूरत न पड़ती थी। लेकिन आज तो गाँव-गाँव के सारे धंधे टूट ही गये, इसलिए उनके साथ जातियाँ भी टूट गयीं। धंधे टूटने के बाद भी अगर कोई 'जाति' का नाम लेता है तो वह एक प्रकार से बेकार ही है। इसके बजाय हम लोगों को धंधा देना चाहते हैं, पर जातियाँ बनाना नहीं चाहते। क्योंकि हम चाहते हैं कि हरएक को खेती में कुछ-न-कुछ समय देना ही चाहिए, फिर बचे हुए समय में हर कोई अपना-अपना धंधा कर सकता है। कोई बुनकर दिनभर बुनता ही रहेगा, तो उसके शरीर का गठन अच्छा न रहेगा और न आरोग्य ही ठीक रहेगा। आरोग्य के लिए हरएक को खेत में काम करना चाहिए और बचे हुए समय में कोई बुनाई का काम करेगा, कोई बढ़ई का, तो कोई लिपिक का काम करेगा। मैं तो चाहूँगा कि स्त्रियाँ भी खेती में काम करें और बचे हुए समय में घर का धंधा करें। हरएक को खुली हवा मिलनी ही चाहिए। मनुष्य कुदरत के साथ एक-रूप होगा तो वह एक प्रकार की परमेश्वर की उपासना होगी।

जातियों का स्थान वृत्तियाँ लेंगी

इसके बजाय वृत्ति का विचार तो जारी रखना होगा। पर ध्यान रखना चाहिए कि अब जातियाँ नहीं, वृत्तियाँ रहेंगी। हमारी दृष्टि समभाव की होनी चाहिए। किसीमें [illegible] शक्ति होती है तो किसीमें [illegible] पर हमें अपनी [illegible]

ग्रामसेवा में अर्पण करती है। जो कृत बनायेगा वह यह नहीं कहेगा कि मैं बाबर हूँ, बल्कि यही कहेगा कि मैं ग्रामसेवक हूँ। मजदूर यह नहीं कहेगा कि मेरी जाति मजदूर की है। शिक्षक यही कहेगा कि मैं ग्रामसेवक हूँ। शिक्षक नहीं कहेगा कि मेरी जाति शिक्षक की है, बल्कि यही कहेगा कि मैं ग्रामसेवक हूँ। फिर भी हर कोई कहेगा कि मेरी वृत्ति या तो मजदूर की है या बुनकर की या शिक्षक की है। ये सारी वृत्तियाँ हैं, जातियाँ नहीं हैं। सब मिलकर रहेंगे करेंगे, तो सब जातियाँ विज्ञान के साथ एकरूप हो जायेंगी और हरएक मनुष्य विज्ञान होगा। कोई मजदूर विज्ञान कोई बुनकर-विज्ञान कोई गुरुकी विज्ञान कोई मंत्री-विज्ञान, और न्यायाधीश विज्ञान—इस तरह हरएक विज्ञान होगा और उसके साथ-साथ उसकी अपनी अपनी वृत्ति रहेगी। हमें इस तरह का ग्राम-राज्य बनाना है।

सर्वोदय में व्यक्तिवाद और समाजवाद का विलय

हमारा सिद्धान्त है कि ये छोटे-छोटे ग्राम हमारी व्यवस्था के अनुसार चलेंगे। हम इन सब लोगों को यह समझाने के लिए घूम रहे हैं कि आपके हाथ आगे सुन्दर दिन आनेवाले हैं। तुम देख रहे हो कि ये विदेशी लोग तुम्हें देखने के लिए आये हैं●। ये लोग यह देखने के लिए आते हैं कि अपनी सब जमीन देनेवाले ये गाँव के लोग कैसे होते हैं, हम क्या देखें। वे समझते हैं कि ये लोग ऐसा काम कर रहे हैं कि ये हमारे गुरु होंगे और सारी दुनिया के शिक्षक सिद्ध होंगे। क्योंकि जापान, यू.ए., जर्मन अमेरिका आदि सबने जो राज्य बनाये, वे सारे हवाई के ऊपर रहे हैं। वहाँ हरएक का व्यक्तिगत अधिकार इतना बड़ा दिया गया कि उसके विरुद्ध एक समाजवाद निर्माण हो गया और दोनों के बीच झगड़ा शुरू हुआ है। अब वे यह देखते हैं कि कोरापुट में व्यक्तिवाद और समाजवाद दोनों लीन हो जाते हैं तो उन्हें कुतूहल होता है कि यह काम कैसे चल रहा है जरा देखें तो।

भूमिसेवा मूलधन है

हमारा सिद्धान्त है कि हमारे कार्यक्रम एक दिन हैं काम करेंगे तो हिन्दुस्तान

● उस समय एक अमेरिकन बहन तथा एक जर्मन भाई भूदान-कार्य का निरीक्षण करने के लिए विद्यार्थी के साथ यात्रा कर रहे थे।

के एक किनारे में एक ज्योति प्रकट होगी और उसके प्रकाश से सारा हिन्दुस्तान प्रकाशित हो उठेगा। बड़ी खुशी की बात है कि यहाँ कुछ आदिवासी जमातें भी हैं, जो वर्षों से अपनी जमीन के साथ चिपके हैं और दुनिया की परवाह नहीं करते। ये हिन्दुस्तान की सभ्यता की जड़ें पकड़े हैं। कुछ लोग समझते हैं कि ये लोग जंगल में रहते हैं और 'पोडू चास' (पहाड़ पर खेती) करते हैं, उन्हें वही प्रिय है। लेकिन यह खयाल गलत है। इन्हें जंगल में ढकेला गया है फिर भी ये जमीन के साथ चिपके हैं और खेती को मूलधर्म मानते हैं। दूसरे लोगों ने अपने मूलधर्म छोड़ दिये और दूसरी अनेक बातें ली हैं। लेकिन इन्होंने मूलधर्म नहीं छोड़ा। ये लोग जंगल के अन्दर ढकेले गये, तो वहाँ भी पहाड़ पर खेती करते हैं। इस तरह आदिवासियों के ये मूल संस्कार हिन्दुस्तान का मूलधर्म है। वह मूलधर्म है भूमि-सेवा या भूमि-पूजा।

आदिवासी आदिधर्म के उपासक

भिन्न-भिन्न आदिवासियों की जमातें सूर्य, वरुण, भू-माता आदि देवताओं को मानती हैं। ये सारे प्राचीन आर्य ऋषियों के वराज हैं। ऋषि भी इन्हीं देवताओं का नाम लेते थे। उसके बाद नये-नये देवता निकले। आपके भुवनेश्वर आदि सारे देव तो अर्वाचीन हैं। हमारे देश की मूल-देवता भूमि-माता, सूर्य, वरुण आदि हैं। हमारा रिवाज है कि जिसकी सेवा कर सकते हैं, उसकी सेवा करना और जिसकी सेवा नहीं कर सकते उसकी पूजा करना। ये लोग भूमि-माता की सेवा और सूर्य की पूजा करते हैं। ये खुले बदन सूर्य-प्रकाश में घूमते हैं, तो हम समझते हैं कि सूर्य की उपासना करते हैं। जो लोग बाहर से यहाँ सेवा करने के लिए आयेंगे उन्हें भी इनके जैसे खुले बदन घूमने की आदत डालनी चाहिए। वे यह न समझें कि हम इन्हें कुछ सिखाने आये हैं, बल्कि यह समझें कि हम इनसे कुछ सीखने के लिए आये हैं।

देश को मूलधर्म की दीक्षा

हम भूमि-सेवा का यह मूलधर्म जिसके साथ ये लोग चिपके हुए हैं, सारे हिन्दुस्तान को देना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान का प्रोफेसर, न्यायाधीश

और मन्त्री भी कुछ देर नेतों का काम करें और खादी बनाते हुए समय में अपनी-अपनी वृत्ति प्रसन्न रखें। गाँव के लोग ऐसा ही करते थे। गाँव में झगड़ा होता, तो गाँव का कोई आदमी फैसला देता यानी न्यायाधीश का काम करता था। परंतु वह बेकार नहीं रहता था। खेती भी करता था और साथ-साथ दूसरा भी काम। इसी तरह देश का हरएक मनुष्य अपनी-अपनी वृत्ति अलग अलग होने पर भी भूमि-सेवा करेगा। यह महान् विचार जीवन का मूलभूत विचार हम इस देश में निर्माण करना चाहते हैं।

सेवाग्राम
११-४ '५८

स्वशासन की स्थापना कैसे ? : ५४ :

[नवजीवन-मंडल प्रशिक्षण शिविरार्थियों के बीच दिया हुआ प्रवचन]

हमारी सेवा के बुनियाद में मुख्य वस्तु यह है कि आज दुनिया केन्द्रित शासन की चक्की में चलती हुई है। केन्द्रित शासन रखकर वह हिंसा से बचने के उपाय के बारे में सोच रही है। क्योंकि हिंसा से बुरे परिणाम अधिक और अच्छे परिणाम कम हो रहे हैं। जब विज्ञान बढ़ा नहीं था, तब हिंसा से यद्यपि हानियाँ होती थीं, तो भी कुछ तात्कालिक लाभ भी होते थे। लेकिन आज विज्ञान बढ़ा हुआ है, इसलिए हिंसा के शस्त्रास्त्र भस्मकारी हो गये हैं। वे मनुष्य के वश में नहीं रहे। इसीलिए दुनियाभर के राजनीतिज्ञ सोच रहे हैं कि कुछ ऐसी चीज निकलनी चाहिए, जिससे लड़ाइयाँ बंद हों। बीच में 'शांति की स्थापना कैसे हो ?' इस बारे में सोचने के लिए यूरोप में एक परिषद् बुलायी गयी थी, जिसमें दुनिया के चार बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे, जो एक-दूसरे को अपना दुश्मन समझते थे और आज भी नहीं समझते, ऐसी बात नहीं है। उन्होंने काफी कोशिश की। उसमें कुछ मिलाप हो गया, जो पहले नहीं था कि दोनों ओर शांति की इच्छा और आकांक्षा जगी है। इसलिए शांति स्थापित हो सकती है। हम सब जानते हैं और दुनिया भी जानती है कि इस तरह का वातावरण तैयार करने में

स देश का कुछ हाथ रहा। फिर भी बड़ा असर हाथ रहा मुख्य हाथ तो विज्ञान का रहा है, जिसने मनुष्य के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी की है। इसलिए कुछ-न-कुछ बातें चलेंगी हालत सुधरती जायगी और शांति की राह निकलेगी।

अशांति का कारण केन्द्रित सत्ता

जब हम सारी दुनिया के इतिहास की ओर देखते हैं—जो लड़ाइयों से भरा हुआ है—तो उसमें ज्यादा समय शांति का ही दिखाई देता है। लेकिन वह लड़ाइयों से भरा इसलिए दीखता है कि शांति के काम मनुष्य स्वभाव के अनुकूल होने से वह उसका ज्यादा बोलबाला नहीं करता। बातचीत करके शांति का कुछ रास्ता निकल पड़े तो भी यह भरोसा नहीं कर सकते कि दस वर्ष के बाद भी शांति रहेगी। वास्तव में शांति तब तक स्थापित नहीं हो सकती, जब तक केन्द्रित शासन कायम है और हर राष्ट्र में केन्द्रित सत्ता चल रही है। अगर केन्द्रित सत्ता का अर्थ यह होता हो कि केन्द्र में कुछ नीतिमान् लोग हैं वे लोगों को सलाह-भर देते हैं। लोग उनकी सलाह-भर लेते हैं—लोग गाँव-गाँव में अपना काम चलाते हैं और जब उनकी सलाह की जरूरत हो तो वह लेते हैं, तब वे भी सलाह देते हैं। परंतु अपनी सलाह का कोई आग्रह नहीं रखते। किन्तु यह सलाह ज्ञान से युक्त और नीति से प्रेरित सलाह हो तो सब लोग उसे ग्रहण करते हैं और न हो तो नहीं ग्रहण करते—तो यह केन्द्रित शासन नहीं रहता बल्कि विकेन्द्रित शासन का ही एक प्रकार बन जाता है।

जनता का राज्य नहीं आया

आज की हालत ऐसी है कि हम प्राचीन राज्य-परंपरा और इस हालत में हम कुछ ज्यादा फर्क नहीं करते हैं। अकबर राजा हुआ तो हिंदुस्तान सुखी हुआ। औरंगजेब राजा हुआ तो हिंदुस्तान दुःखी हुआ। आज भी करीब-करीब वही हालत है। मात्र इसके कि वोट लेने का एक नाटक या स्वांग चलता है। मान लीजिए कि जब पाकिस्तान ने तय किया था कि हम अमेरिका की सहायता लेंगे उस समय अगर पंडित नेहरू कहते कि हम बाहर से मदद तो नहीं लेंगे पर हमारी शक्ति कम है इसलिए राज्यभर बढ़ायेंगे तो हिन्दुस्तान में बहुत-से

लोग उसे पसन्द करते और भारत में हत्याओं का घोर शोर चलता। लेकिन उन्होंने कहा कि पाकिस्तान ने यह तय किया है, तो उससे हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हम पहले जैसे थे वैसे ही रहेंगे। हम शान्त और आत्मनिर्भर रहेंगे तो लोगों में भी विश्वास आयेगा और वे शान्त रहेंगे। अभी गोआ के मामले में पण्डित नेहरू प्रस्ताव करते कि 'गोआ पर हमला करना चाहिये' तो हिन्दुस्तान के बहुत-से लोग उसका समर्थन करते और आज हिन्दुस्तान में चारों ओर युद्ध की बातें चलतीं। फिर हमारे जैसे मूर्ख लोग कहते रहते कि यह नीति ठीक नहीं तो लोग हमारी बात सुन लेते, पर हालत वैसी ही चलती रहती।

आज हम कह सकते हैं कि हम भाग्यवान् हैं, क्योंकि हमें पण्डित नेहरू जैसे विवेकी नेता मिले हैं। ऐसे तो अकबर के जमाने में लोग अपने को भाग्यवान् समझते और कहते थे कि हमें अच्छा बादशाह मिला है। वहाँ अकबर के जमाने में लोग भाग्यवान् थे वहीं औरंगजेब के जमाने में कमनसीब बन गये। इसी तरह दूसरे किसीके नेतृत्व में अभागे बनेंगे। इसलिए कोई केन्द्रित सत्ता हो, जिसके हाथ में सैन्य शक्ति हो वही सारे देश के लिए योजना बनाये यह बात ही गलत है। देश में शान्ति रखने या अशान्ति में डुबोने की ताकत केन्द्रीय शासन में रहती है और लोग जैसे-के-वैसे मूर्ख रह जाते हैं। फिर उनके नेता कहा करते हैं कि हमने जो किया उसे जनता का समर्थन प्राप्त है। हम हिटलर को तानाशाह कहते हैं, पर वह भी दावा करता था कि मैं लोगों द्वारा चुना हुआ हूँ—बहुत अधिक वोटों से चुना हुआ हूँ। आज दुनिया की हालत ऐसी है कि बड़े-बड़े लोगों के हाथों में सत्ता तथा सैन्य रहती और वे लोगों पर शासन चलाते हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति रूजवेल्ट चार बार चुनकर आया। इस तरह आज भी लोगों और सरकार के बीच पाल्य-पालक संबंध है जैसा कि राजाओं के जमाने में था। हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न कानून बनते हैं। बंबई और मद्रास में शराबबंदी कानून लागू है तो बिहार-बंगाल में खुलकर शराबखोरी चल रही है। और आधी जनता उस निशा में डूबी हुई है। गंगा-स्नान और मद्य-पान—यह वहाँ का कार्यक्रम है। अब क्या यह कहा जा सकता है कि बंबई और मद्रास का लोकमत शासन के अनुकूल और बिहार-बंगाल

तथा भारी का लोकमत सरकार‍शाही के प्रतिकूल है। स्पष्ट है कि इसमें लोकमत का कोई सवाल ही नहीं है। वहाँ इस मामले में मान्यवान् शासक मिले हैं और यहाँ नहीं मिले।

स्वशासन के दो पहलू

हमें यह समझना होगा कि जनता को न सिर्फ 'सुशासन' के लिए, बल्कि 'स्वशासन' के लिए तैयार करना है। स्वशासन के दो पहलू हैं : (१) विकेन्द्रित सत्ता यानी सारी सत्ता गाँव-गाँव में बँटी होनी चाहिए और गाँव के लोगों को गाँव का कारोबार खुद चलाना चाहिए और (२) हम हिंसा में शक्ति इसलिए नहीं मानते प्रेम और अहिंसा में ही मानते हैं—इस तरह का विश्वास इस तरह का मानसशास्त्र और तत्त्वज्ञान लोगों में पचना। अपना राज्य खुद चलाने की पहली बात में यहाँ तक गाँव का राज्य चलाने से ताल्लुक है, सारा कारोबार एकमत से चलाया जायगा पक्षभेद न रहेंगे। गाँव में इक्कीस साल से ऊपर के सभी लोगों की एक साधारण समिति (जनरल बॉडी) बनेगी। उन्हीं लोगों की तरफ से एक कार्यकारिणी समिति (एक्जीक्यूटिव कमेटी) चुनी जायगी जिसमें पाँच सात या दस लोग होंगे। यह कार्यकारिणी समिति गाँव का कारोबार चलायेगी। पर उसके प्रस्ताव एकमत से होंगे तभी काम चलेगा। ग्रामसभा के हाथ में उतनी कुल-की-कुल शक्ति होनी चाहिए, जितनी एक स्टेट के हाथ में होती है। गाँव में बाहर से कौन-सी चीजें लाना कितनी लाना और गाँव से कौन-कौन-सी चीजें बाहर भेजना किन चीजों पर रोक लगाना आदि सारी शक्ति गाँव के हाथ में होनी चाहिए। स्वशासन का यह पहला अंग है। दूसरा अंग यह है कि गाँव में जितने लोग होंगे वे तय करेंगे कि हम जहाँ तक हो सके अपनी आवश्यकताओं के विषय में स्वावलम्बी बनेंगे। मान लीजिए कि गाँव की एक ग्राम-सभा और कार्यकारिणी समिति बनी पर गाँववालों ने तय किया कि हम सिर्फ खेती ही करेंगे और बाकी सारी चीजें बाहर से, अन्न भी कभी मँगवायेंगे, तो 'ग्रामराज्य' न होगा। इस तरह अनुशासन और स्वावलम्बन दोनों मिलकर ग्राम सत्ता होती है। दोनों मिलकर स्वशासन का एक विभाग होता है।

यहाँ कर ग्रामदान मिले हैं। अब आगे नव-निर्माण का काम चलेगा। इस प्रसंग में मुख्य बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि अभी तक यहाँ जो काम हुआ और जो ग्रामदान मिले वह सब जनशक्ति के जरिये ही बन पाया। दूसरी कोई शक्ति यहाँ काम करती हमने तो नहीं देखी। ग्राम-ग्राम दूसरे कोई पहुँच ही नहीं सकते। अतः उन उन ग्रामों की शक्ति के अलावा दूसरी शक्ति काम करती हो यह सवाल ही नहीं उठता। इससे आगे भी यहाँ जो काम होगा, उसमें चाहे पचासों संस्थाओं और सैकड़ों व्यक्तियों की मदद मिले लेकिन कुल काम का रंग जनशक्ति का ही रहेगा। उत्पादन बढ़े लोग सुखी हों लोगों का जीवन-स्तर ऊँ ये सब बातें हमें करनी हैं और की जायेंगी। लेकिन हमें सब काम जनशक्ति के आधार पर ही करने हैं।

दूसरी बात यह है कि यहाँ जो ग्राम-दान मिले हैं, उनमें बहुत ज्यादा अर्थ-शास्त्रीय विचार न तो समझाया गया और न लोगों ने समझा ही है। उन्हें यह सादी-सी बात समझायी गयी कि एकत्र काम करने और सब कुछ बाँटकर खाने में क्या-क्या लाभ हैं। हमने उन्हें समझाया कि सुख बाँटने से बढ़ता और दुःख बाँटने से घटता है। हर कोई चाहता है कि सुख बढ़े और दुःख घटे। दोनों का एक ही उपाय है: बाँटते चले जाओ! परमेश्वर की ऐसी कृपा हुई कि उसने हमारे शब्दों में ताकत डाली और लोगों के हृदय में भी उसे ग्रहण करने की ताकत भरी जिसके फलस्वरूप यह काम सफल हो पाया।

विष्णु-कृपा के साथ लक्ष्मी का अनुग्रह भी

यह तो केवल नैतिक उत्थान का एक काम हुआ। नैतिक दृष्टि से समझाने वालों ने ही इसे समझाया और समझनेवालों ने समझा। इसलिए इसके आगे जो निर्माण कार्य होगा उसमें इस बात का मुख्य ख्याल रखना होगा कि लोगों का नैतिक चिंतन मान ऊपर उठना चाहिए। जो साधारण अर्थशास्त्रीय

विकार माने गये हैं, पर जो मत्सर लोभ के विकार होते हैं, उन्हें हम महत्त्व नहीं देते। एक परिवार में हम जो न्याय लागू करते हैं वैसे ही हमें गाँव में लागू करना है और यह जो काम चलेगा उसमें भी वही न्याय लागू होगा। इसलिए लोगों को उत्तेजन देने के भाव तक के मान्य तरीकों को हम नहीं मानते। हमारे उत्साह की बुनियाद आध्यात्मिक ही होगी इसी पर यह काम खड़ा हुआ है। इस-लिए हमें यह देखना होगा कि लोगों की नैतिक प्रवृत्ति दिन दिन बढ़े और स्वत्व त्याग में ही उन्हें आनन्द महसूस हो। फिर उनके हाथ में ज्यादा पैसे आते हैं या नहीं यह सवाल महत्त्व का नहीं है। हम लक्ष्मी का अनुग्रह जरूर चाहेंगे लेकिन वह विष्णु-कृपा के साथ ही। लक्ष्मी और पैसे में हम उतना फर्क मानते हैं, जितना सुर और असुर में। पैसे को हम दानव समझते हैं और लक्ष्मी को देवता। आज एक अजीब आभास निर्माण हुआ है जिसे वेदान्त में 'अध्यास' कहते हैं। याने पैसे पर लक्ष्मी का अध्यास हुआ है। इससे बढ़कर भ्रम क्या हो सकता है! इससे बढ़कर माया का प्रभाव क्या हो सकता है! इसलिए लोगों की जेब में ज्यादा पैसे बढ़ें यह हमारा उद्देश नहीं। हम चाहते हैं कि उनमें भक्ति और आत्मनिष्ठा बढ़े।

जन-शक्ति और नैतिक उत्थान अभिन्न

इस तरह जन-शक्ति और नैतिक उत्थान इन दो चीजों को सामने रखकर हमें काम करना है। मैंने ये दो चीजें नाहक अलग-अलग आपके सामने रखीं। अधिक गहराई से देखने पर मालूम होता है कि दोनों मिलकर एक ही वस्तु होती है। जन-शक्ति नैतिक शक्ति से भिन्न कोई शक्ति नहीं हो सकती। बाकी की जो सारी शक्तियाँ हैं, वे भिन्न भिन्न वर्गों की शक्तियाँ हो सकती हैं। लेकिन जो साधारण शक्ति सब लोगों में, छोटे-से छोटे और बड़े-से बड़े में मौजूद है वह नैतिक शक्ति ही हो सकती है। इसलिए जनशक्ति और नैतिक उत्थान दोनों को अलग-अलग चीज मानने का कोई कारण नहीं। दोनों मिलकर एक ही अखिल वस्तु बनती है।

कुजर्ती
१४-३-'५५

वे बाहर निकल पड़े। इसलिए 'ऐतरेय' में एक प्रसिद्ध श्रुति है, जो सबको आज्ञा देती है कि चलो रे चलो : चरैवेति चरैवेति। यह भी कहा गया है कि "अगर तुम बैठे रहोगे तो तुम्हारा भाग्य भी बैठ जायगा और चलोगे तो तुम्हारा भाग्य भी चलेगा। यह भी कहा है कि 'सोओगे तो कलियुग में रहोगे, बैठोगे तो द्वापरयुग में, उठे रहोगे तो त्रेतायुग में और चलोगे तो कृतयुग में, सत्ययुग में आ जाओगे।' ये आदेश देकर वे आचारवान्, विचारवान्, निष्ठावान् लोग निकल पड़े और न सिर्फ भारत में बल्कि सारी दुनिया में उन्होंने विचार का प्रचार किया। उनका यह संचार सैकड़ों वर्ष तक चला—हजारों वर्ष तक चला।

उसके बाद बुद्ध भगवान् को एक विचार सूझा और उन्होंने अपने सब साथियों एवं शिष्यों को आदेश दिया कि भिक्षुओ निकल पड़ो—'बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय'—निकल पड़ो घूमो। उन्होंने अकेले घूमने का भी आदेश दिया ताकि उसमें से लोग अलग-अलग स्थान पर चले जायें और अधिक गंभीर और व्यापक प्रचार करें। यही काम महावीर ने भी किया। यही आदेश उसने दिया। परिव्राजक पुरुष और परिव्राजिका स्त्रियाँ भी निकल पड़ीं। उसने कहा "परिक्रमा का अधिकार जैसे पुरुषों को है, वैसे स्त्रियों को भी है। संभव है कि स्त्री-पुरुषों को परिक्रमा का आध्यात्मिक समान अधिकार देनेवाला पहला पुरुष महावीर हुआ। आज भी जैनों में कुछ स्त्रियाँ परिव्राजिका बनकर घूमती हैं, जैसे पहले घूमती थीं। यह ठीक है कि इतने वर्ष तक जो चेतना थी वह आज नहीं है—कुछ कम हुई है फिर भी इतिहास में क्या हुआ होगा इसका अन्दाज हम कर सकते हैं।

शंकर और रामानुज को भी यही करना पड़ा। वे और उनके शिष्य भी देशभर घूमे यह भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। यही आदेश ईसा और मुहम्मद पैगम्बर ने अपने प्रथम शिष्यों को दिया। उनके अनुयायी भी सतत घूमते रहे और दुनिया के कई देशों में उन्होंने विचार का प्रचार किया। तात्पर्य यह कि जहाँ जीवन में नवीन विचार निर्माण होता है, वह केवल एक व्यक्ति, चार व्यक्तियों में सीमित नहीं रह सकता। वह अखिल मानव के लिए विचार होता है, चाहे किसीको भी सूझा हो।

सूचक' है। यहाँ तक कि इस विषय में मुझे गति नहीं है यानी इस विषय का मुझे ज्ञान नहीं है।

विचार मनुष्य को घुमाता है

जब किसी विचार का उदय होता है तो वही मनुष्य को चलाता, घुमाता और प्रेरणा देता है। स्वस्थ बैठने नहीं देता। चारों ओर व्यापक प्रचार हुए और उसका समाधान नहीं होता। यह कहना अधिक सत्य होगा कि यह विचार ही मनुष्य को घुमाता, चलाता और हिलाता है—यह नहीं कि मनुष्य उस विचार को लेकर घूमता है। इसीलिए हमें भान ही नहीं होता कि हम घूमते हैं, बल्कि यही जीवन मालूम होता है। यहाँ तक कि कहीं दो दिन रहने का मौका आता है, वहाँ अच्छा नहीं लगता। इस तरह विचार की प्रेरणा काम करती है। हमारा विश्वास है कि जो सर्वोदय का विचार, अहिंसात्मक जीवन का विचार हमें मिला है उसकी प्रेरणा हमें घुमानेवाली जो अत्यन्त अपरिहार्य है। हमारा यह भी विश्वास है कि परिक्रमा की दीक्षा हमें मिली है और ऐसी मंडली जितनी संख्या में बाहर निकल पड़ेगी उतना ही यह कार्य बढ़ेगा।

संचार की महिमा

इसके अलावा और एक विचार है और वह यह है : हिन्दू-धर्म में जो जीवन पद्धति हमारे सामने रखी गयी है, उसमें यह देखना होगा कि जिस किसीको एक चीज का अनुभव है, उसे एक जगह रहने की मनाही है। जब तक अनुभूति नहीं होती, प्रयोग नहीं होता और चित्त में आसक्ति बनी रहती है, तब तक वह एक स्थान में रहकर काम कर सकता है। लेकिन कुछ अनुभव आया, चित्त की अनुभूति हुई, चित्त स्थिर हुआ तो उसके बाद उसे सतत घूमना ही चाहिए। हमारी जीवन पद्धति और हमारा धर्म हमें ऐसा ही आदेश देता है। स्थितप्रज्ञ के, भक्त के और ज्ञानी के लक्षणों में स्पष्ट ही 'अनिकेत स्थिरमति' कहा है। जो चलता रहता है, जिसका घर नहीं है, उसकी बुद्धि नहीं चलती है, बल्कि स्थिर रहती है—ऐसा वर्णन है। हम स्थितप्रज्ञ के लक्षण रोज बोलते हैं। उसमें 'पुमांश्चरति निःस्पृहः' कहा है। यानी जो रोज घूमता रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि

गिरतमन के पीछे यह विधान है कि उसे घूमना ही चाहिए। लेकिन एक संकेत किया गया है कि मनुष्य के जीवन में घूमना एक अंग है। उससे उस मनासक्ति का अनुभव होता है और समाज में ज्ञान का प्रचार होता है।

फुलगढ़ा
१५-१ ५५

हम सिर्फ भूदान को साधारण-सी नदी बहाना नहीं चाहते भूदान का समुद्र बनाना चाहते हैं। हम करुणा का राज्य चाहते हैं, जिसमें करुणा स्वामिनी हो और बाकी सब शक्तियाँ दासी हों। आज ऐसा है कि दूसरी शक्तियाँ राज्य कर रही हैं और उनके राज्य में करुणा दासी के तौर पर काम कर रही है। ये लोग करुणा का राज्य नहीं बना सकते हैं। इसलिए साधारण अनाथ विधवा आदि को मदद करना मात्र हमारा सीमित उद्देश्य नहीं, बल्कि समाज का परिवर्तन करना और मालकियत मिटाने की बात लोगों के दिलों में बैठाना ही हमारा काम है। हम यह विचार फैलाना चाहते हैं कि 'मेरे पास जो सम्पत्ति है, वह सबकी है—सबके लिए है, जिसमें मैं भी आ गया और दूसरों के पास जो सम्पत्ति है वह सबकी है—जिनके पास है उनकी भी है और मेरी भी है। इससे समाज में किसी प्रकार की कोई कमी ही न रहेगी। यह 'दारिद्र्य का बँटवारा' नहीं 'स्वामित्व-विसर्जन' और 'व्यक्तित्व का समाज के लिए समर्पण' है और वह भी रागात्मक-पूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, जबरदस्ती से नहीं।

संपत्तिदान क्रांतिकारी कार्य

मेरा यह हाथ मेरे सारे शरीर की सेवा करने में अपनी सार्थकता मानता है और उसमें उसे धन्यता महसूस होती है। हाथ यह नहीं कहता कि मैं अपने लिए ही काम करूँगा, बल्कि वह पाँव की भी सेवा करता है। पाँव में काँटा चुभने पर उसे उसको निकालने की उत्सुकता होती है। उसके मन में किसी प्रकार की उच्च-नीचता की कल्पना नहीं होती। इसलिए हाथ आँखों में या पैरों में कुछ मैल हो तो उसे भी निकालने काम करने के लिए पहुँच जाता है, वह अपने को उनसे अलग महसूस नहीं करता। वह जानता है कि मुझे काटकर इस शरीर से अलग रख जायगा तो मैं खतम हो जाऊँगा। मेरी सारी शोभा सारी जीवन शक्ति इसीमें निहित है कि मैं समूह के साथ जुड़ा हुआ हूँ। इसलिए समाज में हर व्यक्ति की तरफ से अखंड नित्य दान का प्रवाह बहता रहे हर व्यक्ति के घर में समाज की बैंक हो—यह एक बिलकुल ही नया विचार इसमें है।

पुराने दान धर्म जो हमसे किये जाते थे उनमें और इसमें बहुत बड़ा फर्क

ग्राम-सेवकों के परिवार के पोषण के लिए खर्च होगा और बाकी का बचा हुआ उसका हिस्सा गाँव के गरीबों के लिए खर्च किया जायगा। आप पूछ सकते हैं कि जब ग्राम का परिवार बनेगा तो ये गरीब बचेंगे कौन जिनकी कि हमें सेवा करनी होगी? किन्तु हम आपको समझाना चाहते हैं कि हमारी 'गरीब' की व्याख्या क्या है। हमारी दृष्टि से गरीब तो वे हैं, जिन्हें तालीम प्राप्त नहीं है, जिनमें शक्ति या बुद्धि कम है। गाँव-गाँव में ऐसे जो लोग हों, हमारी दृष्टि में वे गरीब हैं। इसी तरह हजार-हजार रुपयों की सम्पत्ति रखते हुए भी जिन बेचारों में शरीर-परिश्रम करने की ताकत न हो उन्हें हम गरीब कहते हैं। सारांश, शरीर शक्तिहीन गरीब, बुद्धिशक्ति से दुर्बल गरीब, ऐसे अनेक प्रकार के गरीब होते हैं। इस प्रकार कुदरत से पैदा किये हुए और समाज द्वारा पैदा किये हुए गरीबों की हमें चिन्ता करनी पड़ेगी। जहाँ शरीर-श्रम-प्रधान समाज बनेगा वहाँ गरीब वह गिना जायगा जो किसी कारण शरीर-श्रम करने में समर्थ न हो। किन्तु शरीर परिश्रम करने में असमर्थ होते हुए भी यदि किसीकी बुद्धि विकसित हो गयी हो तो उसकी गरीबी मिटी ही समझिये। लेकिन जिसकी बुद्धि का विकास ही न हुआ हो और जिसमें शरीर-श्रम की शक्ति भी न हो वह मनुष्य पूरी तरह से गरीब और मदद का पात्र है। ऐसे सब गरीबों के लिए ग्राम में जो चीज पैदा होगी उसका उपयोग किया जायगा।

घर घर में अनाज की बैंक

गाँवों में घर घर निज की बैंक रहेगी और जो सामूहिक जगह होगी वहाँ सिर्फ हर घर में कितनी चीजें बची हुई हैं इसका हिसाब रहेगा। मानो हर मनुष्य ने ग्राम के लिए जो दान दिया उसका जितना हिस्सा उसके घर है, इसका हिसाब होगा। लोग हमसे पूछते हैं कि आप अनाज का हिस्सा लेंगे तो वह हिस्सा गाँव में किसी जगह इकट्ठा करेंगे या नहीं? तो हम जवाब देते हैं कि नहीं करेंगे। सिर्फ एक जगह कागज का दफ्तर रहेगा और उसमें लिखा रहेगा कि फलाने घर में हमारा दस सेर अनाज है। फलाने घर में बीस सेर है और फलाने घर में पचीस सेर। ग्राम-समिति को अगर दस सेर अनाज की जरूरत पड़े तो

वह गाँववालों से पूछेगी कि इस समय फौरन दस सेर कौन दे सकता है, तो कोई मनुष्य दे देगा। फिर लिखा जायगा कि उसके घर में जो दस सेर अनाज था, वह खतम हो गया। इस तरह हमें अनाज के रक्षण की किसी प्रकार की कोई चिंता न करनी पड़ेगी। अगर किसीके घर चूहे कुछ अनाज खायेंगे, तो हमारा नहीं उसके घर का खायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि हमारा अनाज चूहे की शक्ति के बाहर होगा।

कोई इच्छा करनेवालों का नगद पर ज्यादा आधार होता है। किसीने पाँच हजार रुपये का दान दिया तो वह हाथ में आने पर समझा जाता है कि उतना दान मिला। लेकिन हमें तो नगद में आनंद नहीं उधार में ही आनंद है। हम आपको दस सेर अनाज देंगे इस तरह का कागज ही हमें खुश कर देता है। इसके बदले अगर कोई हमारे सामने दस सेर अनाज ला रखे तो हम कहेंगे कि यह कृपा बस कीजिये। हम नगद नहीं उधार चाहते हैं। जब हमें जरूरत पड़ेगी तब हमारी चिट्ठी आपके पास आयेगी। फिर आप उसके अनुसार काम करें। अभी महाराष्ट्र से एक भाई का पत्र आया है, जो एक महान् तत्त्वज्ञानी है। उन्होंने संपत्तिदान में अपना एक हिस्सा दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'आपके पचीस सौ रुपये हमारे पास हैं। आपने कहा है कि संपत्तिदान देनेवाला दान का एक-तिहाई हिस्सा अपनी इच्छा के अनुसार खर्च कर सकता है। इसलिए हम आठ सौ रुपये अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करेंगे और उसका हिसाब आपके पास पेश करेंगे। फिर बारह सौ रुपये एक संस्था के लिए देंगे सौ रुपये महीना। हमने कोई फलाना संस्था चुना है जो अच्छी संस्था है तो हमारी तरफ से आप उसके लिए उतना पैसा दे सकते हैं। यानी अगर आपको पसंद हो तो आपकी आज्ञा के अनुसार हम उसे उतना देंगे। चार सौ रुपये हमने साधन दान के लिए रखे हैं, जिसमें से गरीबों को मदद दी जायगी। और सौ रुपये हमने साहित्य-प्रचार के लिए रखे हैं। हम अच्छा साहित्य ऐसे विद्यार्थियों में मुफ्त बाँटना चाहते हैं जो पढ़ने के लिए जिम्मेदार हैं। इस तरह उन्होंने हमारे लिए कोई तकलीफ नहीं रखी। किस प्रकार कितना बाँटना यह सब योजना बना दी और कार्य भी चुन लिया। सिर्फ वह योजना पसंद है या नहीं इतना ही

हमें बताना है। इस तरह उन्होंने अपनी संपत्ति का हिस्सा तो दिया, लेकिन उसके साथ-साथ अपनी बुद्धि का भी हिस्सा दिया। यही बात हम चाहते हैं।

लोगों को मालूम नहीं कि इस आन्दोलन द्वारा कितना वातावरण नैतिक उत्थान हो रहा है। कई लोग हमसे पूछते हैं कि 'आपके दान में तो गिरे, कोरे कागज ही रह जायेंगे। दान का क्या होगा, मालूम नहीं।' लेकिन हम कहना चाहते हैं कि हमें अभी तक इतने दान-पत्र मिले, पर एक भी दाता ने यह नहीं कहा कि 'हमने दान तो दे दिया, पर अब पैसा नहीं दे सकते, लाचार हैं।' कारण इसका तरीका ही ऐसा है कि इसमें मानव का नैतिक उत्थान होता है। मेरी समझ में ही नहीं आता कि लोगों को ऐसी शंका ही क्यों आती है कि 'भूदान तो चला, पर शायद सम्पत्तिदान न चलेगा।' यह ठीक है कि दोनों काम एक साथ नहीं चलाये जा सकते थे। यही सोचकर हमने अब तक सिर्फ भूदान ही चलाया और सम्पत्तिदान की बातभर करते रहे। लेकिन कोरापुट जिले में बीस हजार एकड़ भूमि के दानपत्र मिलने से एक नैतिक वातावरण तैयार हो गया और देने की भावना निर्माण हुई है। इसलिए अब यहाँ आपको घर-घर से संपत्ति दान भी मिलना चाहिए और वह जरूर मिलेगा।

संपत्तिवान् वास्तव में गरीब

लोगों को यह चिन्ता हो रही है कि बाबा श्रीमानों के पास की संपत्ति कैसे छीन पायेगा। किन्तु मैं उन्हें समझाना चाहता हूँ कि हम उनकी सम्पत्ति की कीमत ही खतम कर देंगे, तो फिर वह हमारे पास अपने मुक्ति के लिए दौड़ती आयेगी। श्रीमान् लोग हमारे पास आकर कहेंगे कि 'बाबा, कृपा कर हमारी संपत्ति लीजिये और हमें प्रतिष्ठा दीजिये।' आज तक कष्ट उठाने वाले पहले बड़े लोगों के पास पहुँचा करते थे। इसमें उन्हें नाहक इज्जत दी जाती थी। आखिर उनकी नीतिमत्ता ही क्या है? जिसने, जितने शोषण से संपत्ति इकट्ठी की, यह हम नहीं देखा करते और पहला दान उनसे लेकर हम उन्हें प्रतिष्ठा देते हैं। फिर दूसरे लोग उस प्रभाव से अपने नाम पर उतना कम करके देते हैं। लेकिन हम इस तरह श्रीमानों को बेकार प्रतिष्ठा देना नहीं चाहते। हमारे कुछ

सर्वोत्तम मित्रों को, जिनके पास ढेर संपत्ति पड़ी है इस बात का रंज हो रहा है कि इसमें उनकी संपत्ति का कुछ भी उपयोग नहीं हो रहा है। अगर बाबा उनसे दस-पाँच हजार रुपया माँग ले, तो वे बड़े प्रेम से दे देंगे। लेकिन बाबा ने उन्हें पत्र लिख दिया कि 'आप अपने हाथ की कती हुई एक गुंडी दे सकते हैं और वही दीजिये। हम जानते हैं कि आप दरिद्री हैं, इससे ज्यादा आप दे नहीं सकते। इसलिए कम-से-कम एक गुंडी अवश्य दीजिये। इस तरह जहाँ संपत्ति की कीमत ही शून्य हो जाती है वहाँ फिर वे लोग चाहने लगते हैं कि उसकी कीमत बिलकुल शून्य न हो जाय बल्कि कुछ-न-कुछ अवश्य हो।

संपत्ति का मूल्य काल्पनिक

ये लोग समझते ही नहीं कि संपत्ति और जमीन में कितना फर्क है। कहते हैं कि बाबा जमीनवालों से जमीन माँगता है तो संपत्तिवालों से संपत्ति क्यों नहीं लेता ? समझने की बात है कि भूमि वास्तविक लक्ष्मी है उसका मूल्य काल्पनिक नहीं। किन्तु श्रीमानों के पास जो पैसा पड़ा है उसका मूल्य काल्पनिक ही है वास्तविक नहीं है। इसीलिए बाबा पहले जमीन माँग रहा और फिर सर्वसाधारण लोगों से संपत्तिदान हासिल करना चाहता है। पैसे का दान नहीं बल्कि उन्होंने जो पैदा की हुई चीजें हैं, उनका दान ! फिर जिनके पास पैसा है वे बाबा से आकर कहते कि बाबा हमने कुछ पैदा नहीं किया। हमारे पास इतनी शक्ति ही नहीं है। लेकिन हमारे पास कुछ पैसा पड़ा है। तो कृपा कर उसे ले लीजिए।'

अभी कलकत्ते से एक भाई का दानपत्र आया था जिसमें उसने लिखा था कि 'हम दो सौ रुपया देना चाहते हैं। हमने वह दानपत्र वापस लौटा दिया और लिख दिया कि बाबा पैसा नहीं लेता। फिर उसने दूसरा पत्र लिखा कि हमारे पैसे का 'साधन-दान' लीजिये। तब हमने समझ लिया कि अब यह शरण आ गया है तो शरणागत का रक्षण अवश्य करना चाहिए। इसलिए हमने उसे लिखा कि 'ठीक है आप साधन-दान दे सकते हैं। पर हम उससे जो साधन माँगेंगे, उन्हें वही खरीदकर देगा हम उन्हें खरीदने के झगड़े में न पड़ेंगे।

अगर हमने पैदा किया होता और हम खुद साधन खरीदते, तो कोई यह आक्षेप उठा सकता कि 'बाबा ने छह रुपये की चीज खरीदी लेकिन पचास की दी है। इसलिए बाबा इसमें ठगा गया।' ये पूँजीवाले कहते हैं कि 'हम इन कार्यकर्ताओं को पैसे देते हैं, तो वे उसका उपयोग ही नहीं कर सकते उन्हें उतनी अक्ल ही नहीं है।' हम कहते हैं कि हम कबूल करते हैं कि जिसे आप अक्ल कहते हैं, वह हमारे पास नहीं है। इसलिए हम आपका पैसा नहीं लेते, आप ही चीजें खरीदकर हमें दीजिये। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कहते हैं कि 'हमें सिर्फ साठ रुपया तनख्वाह मिलती है और उसमें से पाँच रुपया देना चाहते हैं। पर हम खुद साधन नहीं खरीद सकते, इसलिए कृपा कर आप हमारे पाँच रुपये स्वीकार कीजिये, तो हमारी सुविधा होगी। नहीं तो ये पाँच रुपये हमारे संसार में खर्च हो जायँगे।' इस तरह के लोगों के लिए ही कि देने के लिए हमने 'सर्व सेवा संघ' को इजाजत दी है कि उनके पैसे स्वीकार कीजिये। इस तरह मैत्री के नाते ही हम उसका स्वीकार करते हैं।

मेरा जन्म संपत्ति को तोड़ने के लिए

संपत्ति-दान के इस विचार में 'तम्' या 'सम्' शब्द से आप भ्रम में मत पड़िये। इसमें पैसे की कोई प्रक्रिया ही नहीं है। मैं तो अपने जीवन में यह महसूस करता हूँ कि मेरा जन्म इस सम्पत्ति को तोड़ने के लिए ही हुआ है और जमाने की भी यही माँग है। इसलिए आपसे सम्पत्ति-दान जरूर मिलेगा। आज जिनसे मंजूर किया जाता है और जिनसे सम्पत्ति छीनने की बात की जाती है, वे भी आपके पास दौड़े आयेंगे। लेकिन यह तब होगा, जब कि सम्पत्ति-दान की सेना खड़ी होगी। जब वे देखेंगे कि बीस हजार लोगों ने भूदान दिया है और पचीस हजार लोगों ने सम्पत्ति-दान, तो वे सोचेंगे कि हम कैसे अछूते रह सकते हैं। फिर वे आयेंगे और उनका दान हम स्वीकार करेंगे। यह एक अहिंसक प्रक्रिया है।

अपरिग्रह : महान् बँटा हुआ संग्रह

'अपरिग्रह' में कोई शक्ति है, यह हम लोगों ने अब तक महसूस नहीं किया है। हमने इतना ही महसूस किया कि अपरिग्रह में चिन्ता-मुक्ति है, इसलिए साधकों

को परिग्रह छोड़ना चाहिए। सम्पत्ति छोड़कर चिन्तन के लिए मुक्त होना चाहिए। जो ध्यान, अध्ययन आदि करना चाहते हैं उन्हें सम्पत्ति से मुक्त रहना चाहिए। पर मैं पाँच कुर्सियाँ दो टेबल और तीन मकान हों तो सारा समय झाड़ू लगाने में ही खप जायगा और ध्यान के लिए मौका ही न आयेगा। इसलिए ऐसे परमार्थी लोगों को परिग्रह से मुक्त रहना चाहिए

इस तरह हमने अपरिग्रह से चिन्ता-मुक्ति की ज्यादा अपेक्षा नहीं की लेकिन हम अपरिग्रह की शक्ति दिखाना चाहते हैं। हम कहते हैं कि परिग्रह में वह शक्ति हासिल नहीं हो सकती जो अपरिग्रह में है। इसकी मिसाल अपनी यह देह है। इस देह में सारा खून सर्वत्र बँटा हुआ है याने इसमें अपरिग्रह है। अगर खून का परिग्रह हो जाय अगर किसी एक हिस्से में—पाँव में—खून का संग्रह हो जाय तो उसे फूला हुआ पाँव कहेंगे। इस तरह परिग्रह में शक्ति हासिल नहीं बल्कि दुर्बलता हो सकती है।

अपरिग्रह का अर्थ है, महान् फैला हुआ परिग्रह। अपरिग्रह माने अनन्त परिग्रह। 'अ' शब्द का अर्थ है अनन्त। हम कहते हैं कि अपरिग्रह की योजना में एक कौड़ी भी पड़ी नहीं रहेगी हर चीज उत्पादन में लगी रहेगी। मैंने देखा है कि यहाँ बच्चों के नाक में छेद होते और उसमें सोना पड़ा रहता है। इससे उतना धन का उत्पादन कम होता है। यह सोना खान में पड़ा था तो क्या खराब था और यहाँ नाक में पड़ा है तो क्या अच्छा है? अगर वह सुवर्ण उत्पादन के काम में आ जाय तो जाहिर है कि उत्पादन बढ़ेगा।

मान लीजिये कि मैंने एक किताब पढ़ ली और वह दस साल तक मेरी सन्दूक में पड़ी रही तो इस अपरिग्रह से दुनिया को क्या लाभ हुआ? जहाँ वह किताब मैंने पढ़ ली वहीं फौरन दूसरे के पास जानी चाहिए और फिर वहाँ से तीसरे के पास। इस तरह होते होते वह किताब फट जायगी तो उसका सारा पैसा वसूल और किताब भी मुक्त हो जायगी। इसी तरह हमारी सम्पत्ति सब तरह लोगों के काम आयेगी, तो उपयोग होगा और हम चिन्ता से मुक्त भी हो जायेंगे। इस तरह अपरिग्रह में चिन्ता-मुक्ति के अलावा उत्पादन बढ़ाने की भी प्रकार

शक्ति है, क्योंकि यह सारा परिग्रह घर पर बाँध रखेगा। इसलिए उससे आपस-आपस में प्रेमभाव, निर्वैरता और आक्षेप पैदा होगा।

सारांश पहले के लोग इस अपरिग्रह से चित्त-शुद्धि, आत्म-ज्ञान आदि जो चाहते थे वह तो हम पायेंगे ही, लेकिन उनके अलावा उससे उत्पादन बढ़ाने में भी मदद लेंगे। सम्पत्ति-दान के जरिये हम अपरिग्रह की यह शक्ति प्रकट कर दिखाना चाहते हैं।

इन्दौर
११-१-'५८

शक्ति-यात्रा : ४८ :

बारिश भगवान् की कृपा है

परमेश्वर की ऐसी योजना थी कि बारिश के चार महीने हमारे इस जिले में बीते। इस बीच एक वैदिक मंत्र का हम बहुत बार पाठ करते रहे, जब कि मेघ बरसते थे। उस मंत्र में ऋषि भगवान् से प्रार्थना करता है कि हम पर स्वर्ग से मृदु वृष्टि हो और हमारी गति में कोई भी रुकावट न आये और हमारी इच्छा-शक्ति सत्यसंकल्पित हो। बड़ा सुंदर मंत्र है यह। आप भी सुन लीजिये :

'स नः वृष्टिं दिवस्परि। स नो वाजमनर्वाणम्।
स नः सहस्रिणीरिषः।'

यह हम खूब जोर से चिल्लाते थे। स्वर्ग से जो बारिश बरसती है, वह भगवान् की हम पर कृपा है। चाहे उसके परिणामस्वरूप जोरों से बाढ़ क्यों न आये और अनर्थ ही क्यों न हो। उस बाढ़ में भी उसकी कृपा होती है। इसलिए बारिश का हम निरंतर स्वागत-सत्कार करते हैं।

दूसरी बात ऋषि कहता है, हमारी गति में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। हमारे पद-संचार में भी इस बारिश से कोई बाधा नहीं आयी और कार्यकर्ताओं में बड़ा आत्म-विश्वास पैदा हुआ। हर कोई समझते थे कि बारिश में प्रचार कार्य ढीला पड़ जाता है। खास कर भोपाल जैसे जिले में, जो मलेरिया के लिए

प्रसिद्ध है, विशेष प्रचार होने का विश्वास नहीं था। लेकिन हम प्रार्थना करते चले गये कि हमारी गति में कोई बाधा न आये और वैसा ही हुआ।

तीसरी प्रार्थना ऋषि करता है कि ये जो बारिश की हजारों बूँदें हैं, उनसे परमेश्वर का मानो दस्तखत होता है। इसलिए हमारी इच्छा शक्ति सहस्रगुणित होनी चाहिए। इस जिले में हमें जो अनुभव आया उससे हमारी इच्छा-शक्ति अवश्य सहस्रगुणित हो गयी। क्योंकि जिस इच्छा शक्ति का हम अनुभव करते थे उसीका अनुभव सहस्र लोग करते थे। केवल व्यक्तिगत भी देखा जाय तो भी हमारी इच्छा शक्ति को बहुत बल मिला और वह बलवान् हुई।

शान्ति-युद्ध छिड़ गया है

बहुत खुशी की बात है कि इसके आगे यहाँ जो छह सौ गाँव मिले हैं, उनमें निर्माण चलेगा। फिर छह सौ गाँवों को छह हजार होने में क्या देर लगेगी? क्योंकि एक शून्य बढ़ने की ही बात है! इन गाँवों में जो रचनात्मक काम चलेगा उसकी सुगंध सर्वत्र फैलेगी तो उसकी छूत दूसरे गाँवों को लगे और नहीं रहेगी। लेकिन इस छूत की कल्पना हम सीमित नहीं करते। यह छूत भले ही यहाँ के कुछ गाँवों को लगे या सिर्फ कोरापुट में लगे लेकिन हमने तो यही अपेक्षा और आशा की है कि यह छूत सारी दुनिया को लगे। जहाँ भूमि-समस्या है और जहाँ नहीं है दोनों जगह यह छूत लगनी चाहिए। क्योंकि आज समाज में जो विषमताएँ और अन्याय चले हैं उनके खिलाफ यह शांति युद्ध छिड़ गया है। कहा जाता है कि ये सारी विषमताएँ और अन्याय दुनिया में जब तक कायम रहेंगे, तब तक दुनिया में शांति नहीं हो सकती। लेकिन हम कहना चाहते हैं कि दुनिया में जब तक शांति की शक्ति प्रकट नहीं होती तब तक ये अन्याय बंद नहीं होंगे। अन्याय और विषमताएँ मिटने पर शांति होगी ऐसी पुरुषार्थहीन आशा हमने कभी नहीं रखी। हमने ऐसी ही पुरुषार्थमय कल्पना कर आशा व्यक्त की है कि हम शांति की शक्ति प्रकट करेंगे और उससे सारे अन्याय और विषमताएँ मिटेंगी। यहाँ के ग्रामीणों ने उसी शांति शक्ति का शोध किया है। जब कभी नैतिक शक्ति का आविष्कार होता है, तब वह शांति-शक्ति क्षीण नहीं होती, बल्कि उसे अधिक-से-अधिक बल मिलता और वह सफल होती है।

विश्व के अन्याय हममें भी हैं

लोगों को भान नहीं है कि ऐसी कोई शक्ति है, जो दुनिया के अन्याय का मुकाबला कर सकती है। जब विषमताएँ और अन्याय चारों ओर देखते हैं, तो हम भूल जाते हैं कि वह हममें भी है। ऊपर से हम विश्वशान्ति की बात करते हैं, लेकिन अपना क्रोध द्वेष नहीं मिटाते। इस तरह विश्व शान्ति की शक्ति हमारे पास मौजूद है और जो विश्व में अन्याय चलते हैं, उनके बीज भी हममें हैं। जब हम श्रीमानों के जरिये अन्याय होने का जिक्र करते हैं, तब स्वयं श्रीमान् होने की इच्छा भी करते हैं, क्योंकि वैसा अन्याय करने के लिए हम समर्थ होना चाहते हैं। और हमारे बहुत से भक्ति मार्गी भी इसी तरह सोचते हैं। वे कहते हैं कि पापी लोग दुनिया में उत्कर्ष के शिखर पर बैठे हुए दीखते हैं और हम पुण्यवान् लोग विपत्ति में पड़े हैं। लेकिन इसका बदला स्वर्ग में मिलेगा और वहाँ हम उत्कर्ष के शिखर पर बैठेंगे और पापी विपत्ति में रहेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि लोग अपने को पापी नहीं समझते, लेकिन पापाभिलाषी होते हैं। वे पुण्य का फल दुनिया में यही समझते हैं कि खूब भोग भोगने को मिलना चाहिए। जो लोग आज खूब भोग भोगते और अन्याय करते हैं, वे पूर्वजन्म के पुण्यवान् हैं, ऐसा मानते हैं। इस तरह वे पुण्याचरणशील भी नहीं समझते कि पाप की जड़ उनमें पड़ी है। गरीबों की तरफ से लड़नेवालों की यही गलती हो रही है। वे श्रीमानों का मत्सर करते और चाहते हैं कि श्रीमान् लोग त्याग करें, भावपूर्वक छोड़ें। लेकिन वे नहीं समझते कि आसक्ति उनमें भी पड़ी है। वे अगर छोटी छोटी आसक्तियाँ छोड़ें तो उनमें ऐसी नैतिक ताकत प्रकट होगी जिससे दुनिया में चलनेवाले अन्याय और झगड़े मिट जायेंगे।

यहाँ जो विचार-धर्म चलेगा उसे इसी दृष्टि से देखिये। यह मत सोचिये कि यहाँ के लोगों का भौतिक स्तर कितना ऊपर उठेगा। अलबत्ता ही जितना भौतिक स्तर नीचे है, उतना ऊपर उठना चाहिए और वह होगा ही। पर मुख्य दृष्टि यह रखिये कि शान्ति की जो शक्ति प्रकट हो सकती है, उसका विकास कैसे हो—यहाँ के लोगों का नैतिक स्तर कितना ऊपर उठेगा! हमें उम्मीद है कि जिन

कार्यकर्ताओं पर कृपा करता रहा वह उसी तरह करे, परमेश्वर की कृपा मैं करती रहे और वे इसी तरह काम में लगे रहें।

ग्रामदान से सारे रचनात्मक कार्य फलेंगे

हमें इस यात्रा में कोई तकलीफ हुई हो तो याद नहीं है। पर यहाँ हमें चिन्तन का बहुत मौका मिला और हमने महसूस किया कि उससे हमारी बहुत शक्ति बढ़ी है। इस तरह यह हमारी 'शक्ति-यात्रा' हुई, ऐसा हम कहते हैं। इसके आधार पर दुनिया के मसले हल करने की शक्ति भारत के हाथ में आ सकती है। हमारा यह विश्वास है कि यह छोटी-छोटी समस्याएँ सामने खड़ी रहती हैं, पर यह गुरु-कुंजी अगर हाथ में आ जाय तो सभी हल हो जायेंगी। इसीलिए हम भूदान पर एकाग्र हुए हैं, इसलिए नहीं कि हमारी वृत्ति ही एकाग्रता की है। लेकिन हम समझते हैं कि यदि हम इसमें एकाग्र होकर दूसरे-तीसरे कामों को फिलहाल दूर रखें तो हम कुछ खोयेंगे नहीं। हमारे कुछ मित्र, जो कि रचनात्मक काम में प्रेम रखते हैं, हमें कहते हैं कि आप इसमें इतनी एकाग्रता मत रखिये, ताकि दूसरे कामों पर आपका ध्यान बिलकुल ही न जा सके। उनका जो रचनात्मक काम के लिए प्रेम है, वह देखकर हमें खुशी होती है। आप देखेंगे कि हमारे जाने के बाद यहाँ रचनात्मक काम जोरों से चलेगा। उसका इन्तजाम हमने कर दिया है। पर हम कहना चाहते हैं कि जब किसान अपने खेत में कुँआ खोदने में ध्यान देता है तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि वह खेत की ओर ध्यान ही नहीं देता है; बल्कि उसीके लिए वह कूप खोदने में समय देता है। इसी तरह यह ग्रामदान का कूप है जिसके पानी से हिन्दुस्तान भर में रचनात्मक काम फलेगा फूलेगा।

जगन्नाथपुर (कोरापुट)
१०-१-५५

●

उतकल मे
विनोबा-क्रांतिपथ
सकेत

उप-शीर्षकों का अनुक्रम

भूदान-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

भूदान-यज्ञ (हिन्दी : साप्ताहिक)

संपादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या १२ वार्षिक शुल्क ५)

इस साप्ताहिक में सर्वोदय, भूदान, खादी-ग्रामोद्योग, ग्राम-जीवन, अर्थ-स्वावलम्बन-संबंधी विविध सामग्री का सुरुचिपूर्ण चयन रहता है।

भूदान-तहरीक (उर्दू : पाक्षिक)

संपादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क २)

इसमें भूदान-संबंधी विचारों को उर्दूभाषी जनता के लिए उनकी भाषा में दिया जाता है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी

भूदान (अंग्रेजी : साप्ताहिक)

संपादक : धीरेन्द्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क ६)

भूदान-सम्बन्धी यह अंग्रेजी साप्ताहिक पूना से प्रकाशित होता है, जिसमें भूदान-यज्ञ की विविध प्रवृत्तियों का विवरण और विवेचन रहता है।

पता—भूदान कार्यालय,
१७४ शनिवार पेठ, पूना-२

भूदान-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

भूदान-यज्ञ (हिन्दी : साप्ताहिक)

सम्पादक : धीरेंद्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या १२ वार्षिक शुल्क ६)

इस साप्ताहिक में सर्वोदय भूदान खादी-ग्रामोद्योग ग्राम-जीवन अर्थ-आन्दोलन-संबंधी विविध सामग्री का रुचिपूर्ण चयन रहता है।

भूदान-तहरीक (उर्दू : पाक्षिक)

सम्पादक : धीरेंद्र मजूमदार

पृष्ठ-संख्या ८ वार्षिक शुल्क ४)

इसमें भूदान-संबंधी विचारों को उर्दूभाषी जनता के लिए सरल भाषा में दिया जाता है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन राजघाट काशी

भूदान (अंग्रेजी : साप्ताहिक)

सम्पादक धीरेंद्र मजूमदार

पृष्ठ संख्या ८ वार्षिक शुल्क ६)

भूदान-सम्बन्धी यह अंग्रेजी साप्ताहिक पूना से प्रकाशित होता है, जिसमें भूदान-यज्ञ की विविध प्रवृत्तियों का विवरण और विवेचन रहता है।

पता—भूदान कार्यालय,
१७४ शनिवार पेठ, पूना-२

[OUR ENGLISH BOOKS]

Title	Price
Swaraj-Shastra	1—0
Bhoodan-Yajna (Navajivan)	1—8
Revolutionary Bhoodan-yajna	0—6
Principles and Philosophy of the Bhoodan	0—5
Voice of Vinoba	0—4
The Call of Puri-Sarvodaya-Sammelan	0—2
A Picture of Sarvodaya Social Order	0—6
Jeevan-Dan	0—2
Bhoodan as seen by the west	0—6
Bhoodan to Gramdan	0—6
Demand of the Times	0-12
Bhoodan-Y jna—the great Challenge of the age	0—4
Progress of a Pilgrimage	3—8
M K. Gandhi	2—0
Why th Village Movement ?	3—8
Non-Violent Economy and World Peace	1—0
Lessons from Europe	0—8
Sarvodaya & World Peace	0—2
Banishing War	0—8
Currency Inflation—Its Cause and Cure	0-12
Economy of Permanence	3—0
G ndhian Economy and Other Essay	2—0
Our Food Problem	1—8
Overall Plan for Rural Development	1—8
Organisation and Accounts of Relief work	1—0
Philosophy of Work and Other Essay	0-12
Peace and Prosper ty	1—0
Present Economic Situation	2—0
Peoples China What I Saw nd Learnt ther ?	0-12
Science and Progres	1—0
Stonewalls nd Iron Bars	0—8
Unitary Basis for a Non-Violent Democracy	0-10
Women and Village Industries	0—4
Economics of Peac the Cause and th Men	10-0
Peep Behind the Iron Curta	1—8

———

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

(विनोबा)

गीता प्रवचन	१)
शिक्षण-विचार	१॥)
कार्यकर्ता-पाथेय	॥)
त्रिवेणी	॥)
विनोबा-प्रवचन (उत्कल)	।॥)
भगवान् के दरबार में	=)
साहित्यिकों से	॥)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
पाटलिपुत्र में	।-)
सर्वोदय के आधार	।)
एक बनो और नेक बनो	=)
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	=)
भूदान-गंगा (भाग पहला)	१॥)
भूदान-गंगा (भाग दूसरा)	१॥)
भूदान-गंगा (भाग तीसरा)	१॥)
जन-क्रांति की दिशा में	।)
हिंसा का मुकाबला	=)
व्यापारियों का आवाहन	=)
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	॥)
चुनाव	=)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासन-मुक्त समाज की ओर	।=)
नयी तालीम	॥)
ग्रामराज	।)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

सम्पत्तिदान-यज्ञ	॥)
व्यवहार-शुद्धि	।=)

(दादा धर्माधिकारी)

मानवीय क्रान्ति	।)
साम्ययोग की राह पर	।)
क्रान्ति का अगला कदम	।)

(अन्य प्रकाशक)

सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
श्रमदान	।)
विनोबा के साथ	१)
पावन प्रसंग	॥)
भूदान आरोहण	॥)
राज्यव्यवस्था : सर्वोदय-दृष्टि से	१॥)
गोसेवा की विचारधारा	॥)
गाँव का गोकुल	।)
भूदान-दीपिका	=)
साम्ययोग का रेखाचित्र	=)
धरती के गीत	-)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१)
[illegible] के बीच	।)
सामाजिक क्रांति और भूदान	।-)
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन	॥)
राजनीति से लोकनीति की ओर	॥)
सर्वोदय पद-यात्रा	१)
क्रांति की राह पर	१)
क्रांति की ओर	१)
सर्वोदय भजनावली	०)
भूमि-क्रांति की महानदी	।॥)
[illegible]	॥)
सुन्दरपुर की पाठशाला	।॥)
[illegible]	।)
पावन-प्रकाश (नाटक)	।)
नगरी की कथा में	१॥)
आठवें सर्वोदय-सम्मेलन	१)
ग्रामसभा : प्रस्थान	१)
क्रांति की पुकार	=)
पूर्व बुनियादी	॥)
भूदान लहरी	-)
मजदूरों से	=)